आत्म जागृति–माला पु०५

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

[भाग १]

समकित श्रेष्ठ स्वभाव, अनुपम रस का सिंधु है।
नाशक मिथ्या भाव, मूर्छित जन हित अमृत सम ॥

प्रकाशक—

सोभागमल अमोलकचन्द लोढा तथा मगनमल कोचेटा } मानद मंत्री

आत्म जागृति कार्यालय,

बगड़ी (मारवाड़), वाया सोजतरोड.

महावीर जयन्ती
सं० १९८४

वी०सं० २४५४

बाबू मथुराप्रशाद शिवहरे के प्रबन्ध से
वैदिक यंत्रालय, अजमेर में मुद्रित.

समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर

इस पुस्तक का दूसरा भाग तैयार होरहा है। दोनों भागों की पुस्तक जिन महाशयों को प्रभावना के लिए थोक मंगाना हो वे कार्यालय से मंगावें। जल्दी के कारण भूलों के लिए क्षमा करें।

जयनारायण व्यास
व्यवस्थापक

भूमिका.

चारित्ररूपी शरीर में चैतन्यरूप समकित गुण है। इसका वर्णन करने की शक्ति इस अल्पज्ञ लेखक में नहीं है। तथापि बालभाव से समकित प्रश्नोत्तर लिखने का साहस किया गया है। इसमें अगणित भूलें दृष्टि-गोचर होवेंगी। सुज्ञ पाठक प्रत्येक भूल को नोट करके व्यवस्थापक के पास भेज देवें जिससे पुनः सुधार करने का प्रयत्न किया जावेगा और लेखक के ऊपर भी उपकार होगा।

समकित का विषय इतना आवश्यक व विशाल है कि इसके ऊपर अनेक समर्थ विद्वान् प्रकाश डालें तब कुछ बोध हो सकता है।

आज इसकी प्राप्ति की स्वतन्त्र पुस्तकें भाषामें थोड़ी मिलती हैं जिससे यह मंद प्रयत्न किया गया है। यदि अन्य विद्वान् लोग कृपाकर इस विषय को हाथ में लेंगे तो बहुत उपकार होगा।

यदि यह पुस्तक समाज को हितकारी मालूम पड़ेगी तो आगे विशेष प्रयत्न करने का यथाशक्ति यथासंयोग सद्-भाग्य समझा जायगा ।

इस समकित प्रश्नोत्तर में जो उत्तमता है वह महापुरुषों की प्रसादी लेकर धरी है और कोई स्थान नें त्रुटि मालूम पड़े तो यह लेखक का प्रमाद जान सुधारने का अनुग्रह करें ।

यह प्रयत्न स्व-पर हित बुद्धि से किया गया है । प्रथम निज आत्मा को ही अनेक शास्त्र व ग्रन्थ से समकित स्वरूप शोधने का उत्तम लाभ हुआ है तथा समकित का विषय पुष्ट करते स्व-आत्मा में इस गुण की शुद्धि की आशा है पश्चात् जिज्ञासु आत्मा-ओं को भी लाभ होने की आशा है ।

संग्रहकर्त्ता—

एक समकित प्रेमी.

समकित की महिमा।

१—यह सम्यग्दर्शन महारत्न समस्त लोक का आभूषण है और मोक्ष होने पर्यन्त आत्मा को कल्याण देने वालों में चतुर है।

२—इस सम्यग्दर्शन को सत्पुरुषों ने चारित्र और ज्ञान का बीज अर्थात् उत्पन्न करने का कारण माना है, क्योंकि इसके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता ही नहीं, तथा यम (महाव्रतादि) और प्रशम (विशुद्ध भाव) का यह जीवनस्वरूप है। इस सम्यग्दर्शन के विना यम व प्रशम निर्जीव के समान हैं। इसी प्रकार तप और स्वाध्याय का आश्रय है। इसके विना ये निराश्रय हैं। इस प्रकार जितने शम-दम-बोध-व्रत-तपादि कहे हैं उनको यह सफल करता है। इसके विना वे मोक्ष फल के दाता नहीं हो सकते हैं।

३—यह सम्यग्दर्शन चारित्रज्ञान के न होने पर भी प्रशंसनीय कहलाता है और इसके विना संयम (चारित्र) और ज्ञान मिथ्यात्व रूपी विष से दूषित होते हैं अर्थात्

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र कुचारित्र कहाता है।

४—सम्यग्दर्शन सहित यम नियम तपादिक थोड़े भी हों, तो इन्हें सूत्रके ज्ञाता आचार्यों ने संसार से उत्पन्न हुए क्लेशदुःखों के लिये रामबाण औषधि के समान कहा है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन के होते हुए व्रतादिक अल्प होवें, तो भी वे संसारजनित दुःखरूपी रोगों को नष्ट करने के लिये दिव्य औषध के समान हैं।

५—आचार्य महाराज कहते हैं कि—जिसको निर्मल अतीचार रहित सम्यग्दर्शन है वही पुण्यात्मा वा महा भाग्य-युक्त है, ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का मुख्य अंग कहागया है। मोक्ष मार्ग के प्रकरण में सम्यग्दर्शन ही मुख्य कहा गया है।

६—इस जगत् में जो जीव चारित्र और ज्ञान के कारण सदा जगत् में प्रसिद्ध हैं, वे भी सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष को नहीं पाते।

७—आचार्य महाराज कहते हैं कि, हे भव्य जीवो! तुम सम्यग्दर्शन नामक अमृत का पान करो। क्योंकि यह

सम्यग्दर्शन अतुल्य सुख का निधान (खजाना) है। समस्त कल्याणों का वीज अर्थात् कारण है। संसार रूपी समुद्र से तारने के लिये जहाज़ है। तथा इसको धारण करने वाले एक-मात्र पात्र भव्य जीव ही हैं। अभव्य जीव इसके पात्र कदापि नहीं हो सकते। और यह सम्यग्दर्शन पापरूपी वृक्ष को काटने के लिये कुठार (कुल्हाड़े) के समान है, तथा पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है अर्थात् मुख्य है। और जीत लिया है अपने विपक्ष अर्थात् मिथ्यात्वरूपी शत्रु को जिसने ऐसा यह सम्यग्दर्शन है. अतः भव्य जीवों को सबसे पहिले इसे ही अंगीकार करना चाहिये।

छप्पय

सप्त तत्व षट् द्रव्य, पदारथ नव मुनि भाखे।
अस्तिज्ञान सम्यकृत्व, विषय नीके मन राखे॥
तिनको सांचे जान, आप पर-भेद पिछानहु।
उपादेय है आप, आन सब हेय बखानहु॥
यह सरधा साँची धारकै, मिथ्या भाव निवारिये।
तब सम्यग्दर्शन पायकै, थिर ह्वै मोक्ष पधारिये॥

दोहा

सुख अनंत की नींव है, सम्यग्दर्शन जान,
याही ते शिव पद मिले, भैया लेहु पिछान।

सम्यग्दर्शन अंक है, और क्रिया सब शून्य,
अंक जतन करि राखिये, शून्य शून्य दश गुण ।

कवित्त

दर्शन विशुद्ध न होवत ज्यों लग,
त्यों लग जीव मिथ्यात्व कहावे ।
काल अनंत फिरे भव में,
महा दुःखन को कहिं पार न पावे ॥
दोष पचीस रहित गुणानुभव बुद्धि,
सम्यक् दर्शन शुद्ध ठहरावे ।
ज्ञान कहे नर सो ही वड़ो,
मिथ्यात्व तजी शिव मारग ध्यावे ॥

संग्रहकर्त्ता
समकित प्रेमी.

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

(भाग—१)
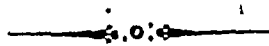
मङ्गलाचरण

सिद्धाण नमो किच्चा संजायणं च भावओ।
अत्थ धम्मगइं तच्च, अणु सट्ठिं सुणे हमे॥

आदि नाथ आदि दइ, वंदू श्री वधमान।
स्याद्वाद वंदू सदा, प्रकटे अतिशय ज्ञान॥१॥

श्री आदिनाथ—ऋषभदेव प्रभु से लगाकर श्री वर्धमान स्वामी तक सकल सर्वज्ञ वीतराग देवों को व स्याद्वाद (अनेकांतस्वरूप) जिन-वाणी को भावपूर्वक नमस्कार करता हूं।

स्याद्वाद अनेकांत धर्म कैसा है ? जो उत्कृष्ट आगम और सत्यासिद्धांत का जीव (प्राण) स्वरूप है अर्थात् स्याद्वाद के विना सकल शास्त्र जीव विना के शरीर तुल्य होते हैं।

पुनः स्याद्वाद कैसा है ? जन्म से अंधे पुरुषों द्वारा कहे गये हाथी के स्वरूप रूप कथन (एकांतवाद) को निषेध करनेवाला व्यवहार व निश्चय दोनों पाँखों से सत्यज्ञान-रूपी आकाश में निर्भय गति करानेवाला है। ऐसे स्याद्वाद (अनेकांतधर्म) को भाव-नमस्कार करने से अतिशय ज्ञान प्रगट होता है।

सकल अज्ञान अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य समान तीन लोक के समस्त पदार्थों को दिखाने के लिये अद्वितीय नेत्रस्वरूप उत्कृष्ट आगम जैन सिद्धान्त का परिश्रमपूर्वक मनन करके यह "समकित प्रश्नोत्तर" स्व-पर कल्याण हेतु गुरु-कृपा से संग्रह करता हूं।

(१) प्रश्न—मोक्ष मार्ग किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिसके द्वारा सब प्रकार के दुःखों से सदा के लिये छूट जायँ उसे मोक्ष मार्ग कहते हैं। यह चार प्रकार का है (१) सम्यग् (सत्य) ज्ञान (२) सम्यक

(सत्य) दर्शन (३) सम्यग् (सत्य) चारित्र (४) सम्यक् (सत्य) तप ।

(२) प्रश्न—चारों में मुख्य कौन है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन अर्थात् समकित सब में प्रधान है । कारण कि समकित प्रगट होने पर ही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र होता है । समकित के विना दोनों ही मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र कहे गये हैं ।

समकित अर्थात् सच्ची समझ, सद्विवेक, सुश्रद्धा के विना भाषा-ज्ञान या दूसरी पढ़ाई खूब होने पर भी मिथ्या-ज्ञान ही कहा गया है । हज़ारों शास्त्र, विद्या, कला पढ़ा होवे तो भी यदि सद्विवेक न होवे वह उन्मार्ग (कुचारित्र) गामी हो सकता है और सच्ची समझपूर्वक थोड़ा भी ज्ञान व चारित्र हो वह सुमार्गगामी बन सकता है । इसलिये समकित ही सब गुणों में प्रधान गुण है ।

(३) प्रश्न—समकिती जीव के क्या गुण हैं?

उत्तर—(१) शरीर, इन्द्रिय, भोग, विषय, कषाय प्रति अरुचि, त्यागबुद्धि हो, इन पर ममत्व न होवे ।

(२) अतींद्रिय—(इन्द्रियरहित, विषयसुख के त्यागरूप) आत्मिक सुख का स्वाद आवे ।

(३) स्वानुभूति—आत्मा के सत्य स्वरूप का अनुभव होवे।

(४) शत्रु के भी गुण देखे, सदा समभाव रक्खे।

(५) विवेक बुद्धि होवे, क्या आत्मा को हितकारी है, क्या अहितकारी है, उसका ज्ञान करके सदा हितमार्ग में ही प्रवृत्ति करे, कभी अहित मार्ग में प्रवृत्ति न करे।

(६) दुःखों के मूलकारण अज्ञान, मिथ्यात्व (अंधता) विषय कषाय जान इनसे स्वयं बचे व औरों को बचावे। यह भाव अनुकंपा है।

(७) श्रद्धा—आत्मा के सत्यस्वरूप को नय, प्रमाण व व्यवहार निश्चय से समझकर सब बाह्य वस्तुओं से भिन्न मैं एक अनंत ज्ञान सुखादिपूर्ण आत्मा हूँ, ऐसी दृढ श्रद्धा होवे और हमेशा आत्मगुण घातक तत्वों (धन, भोग, विषय, क्रोधादि कषाय) को छोड़कर ही आनंद माने।

(४) प्रश्न—समकित कैसा है ?

उत्तर—संसार समुद्र तरने के लिये चारित्र रूपी जहाज़ है, ज्ञान रूपी मार्ग दर्शक दिव्य दीपक है, समकित

रूपी खेवटिया (नाविक) है। समकित रूपी खेवटिया न हो तो सब साधन शून्य रूप हैं। जैसे विना बीज के वृक्षकी उत्पत्ति, वृद्धि व फल नहीं होते, इसी प्रकार समकित (सच्ची समझ, सद् विवेक) रूपी बीज के विना सम्यक् ज्ञान, चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि भी नहीं हो सकती तथा उसका फल सत्य सुख (मोक्ष) नहीं मिलता। तथा समकित नींव के समान है। जैसे विना नींव के मकान नहीं ठहर सकता उसी प्रकार विना समकित के ज्ञान चारित्र नहीं ठहर सकते।

(५) प्रश्न—समकित गुणको रोकने वाला अंतरंग कारण क्या है ?

उत्तर—मिथ्यात्व मोहनीय है। मिथ्या अर्थात् खोटा मोहनीय अर्थात् राँचना, ममत्व करना। जो बात खोटी है उसमें राँचे, ममता करे सो मिथ्यात्व मोहनीय है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने का कारण मिथ्यात्व मोहनीय के कर्म-दल हैं। और पुनः ऐसी बुद्धि से मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध होता है।

(६) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय से कैसी बुद्धि होती है ?

उत्तर—मिथ्या—अर्थात् विपरीत बुद्धि होना । जो अपनी चीज़ नहीं हैं उन्हें अपनी माने । जैसेः—शरीर, इन्द्रियों, भोग, धन, परिवार, निंदा, स्तुति, सुख दुःख के सकल प्रसंग में ममता (अपनात) सो मिथ्यात्व है । ऐसे भावों से पुनः मिथ्यात्व का बंध होता है, इसलिये ऐसी बुद्धि छोड़ना चाहिये ।

(७) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय से जीवकी उल्टी बुद्धि क्यों होती है ?

उत्तर—जैसे नसीली चीज़ खाने से सयाना मनुष्य कुछ का कुछ बोलने लगता है, धतूरा का दूध पीने से सब पीला पीला दीखता है । यह वस्तु का स्वभाव है । उसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय कर्म प्रकृति का स्वभाव जीवकी विपरीत बुद्धि करने का है ।

(८) प्रश्न—वस्तु का स्वभाव ऐसा क्यों ?

उत्तर—यह अनिवार्य है, स्वयं सिद्ध है, अग्नि उष्ण क्यों ? जल शीतल क्यों ? सूर्य उष्ण, प्रकाशमय क्यों ? चन्द्रमा शीतल प्रकाश-मय क्यों ?

इसका उत्तर क्या देवेंगे ? उत्तर यही आवेगा कि वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है, इसमें प्रमाण व तर्क का

स्थान नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यात्व कर्म प्रकृति का फल भी स्वभाव से ही ऐसा है कि जीव की विपरीत बुद्धि हो जाती है।

(९) प्रश्न—कर्म क्यों माने ?

उत्तर—इस जगत् में कोई मनुष्य, कोई पशु, कोई पक्षी, कोई जलचर, कोई आकाशगामी जीव दीखते हैं, कोई कीड़े, मकोड़े, टीड़ी, पतंग आदि छोटे जीव हैं, कोई बुद्धिमान्, कोई मूर्ख, कोई बली, कोई दुर्बल, कोई सदा निरोगी, कोई सदा रोगी, कोई जन्म से धनवान्, कोई जन्म से निर्धन, कोई रूपवान्, कोई कुरूपवान्, कोई सुखी और कोई दुखी क्यों है ? उत्तर यही आता है कि जैसे कर्म-भूत पुरुषार्थ–गतकाल में काम किये, बीज बोये हैं, वैसे ही फल मिले हैं। विना कर्म सिद्धान्त माने जीवों की विचित्र दशाओं की सिद्धि ही नहीं होती।

(१०) प्रश्न—इन कर्मों को विना भोगे ही क्या छुटकारा हो सकता है ?

उत्तर—हां, कर्मों का छुटकारा दो तरह से होता है। जो कर्म-फल भोगे जाते हैं वे सविपाक निर्जरा कहाते हैं और जो कर्म-फल मिलने के पूर्व ही शुद्ध भाव से दान,

शील, तप, संयम व ध्यान से नाश होते हैं वे अविपाक निर्जरा कहाते हैं।

(११) प्रश्न—निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर—जॄ-अर्थात् जीर्ण होना। विशेष प्रकार से कर्मों का नाश होना सो निर्जरा है।

(१२) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय कैसे नाश हो सकती है?

उत्तर—यथार्थ रूप से नवतत्व व छः द्रव्यों का सात नय, चार प्रमाण, सामान्य, विशेष, द्रव्य, गुण, पर्याय, बाह्य, आभ्यन्तर, निश्चय, व्यवहार से, ज्ञान करके अपने आत्मस्वरूप को पहिचाने, निज आत्मा और अपने ज्ञान चारित्र आदि गुणों को ही अपने आदरने योग्य श्रद्धेय (माने) ऐसी समकित भावना से मिथ्यात्व (विपरीत बुद्धि) का नाश होता है।

(विशेष प्रकार से समकित भावना चिंतवन करना हो तो "आत्मजागृति भावना" और समकित "स्वरूप भावना" की पुस्तकें देखें)

(१३) प्रश्न—सच्चा जानना या झूठा जानना क्या ज्ञानावरण कर्म का उदय है कि अन्य का?

उत्तर—सचापन या झूठापन ज्ञानावरण का उदय नहीं परन्तु मिथ्यात्व का उदय है। कारण ज्ञानावरण के तीव्र उदय से ज्ञान थोड़ा होवे तथा ज्ञानावरण के क्षयोपशम से ज्ञान ज्यादा होवे। उसमें सत्यपन या असत्यपन पैदा करने की शक्ति नहीं है, कारण ज्ञानावरण कर्म की सम्यग् ज्ञानावरण या मिथ्या ज्ञानावरण—ऐसी प्रकृति नहीं है। ज्ञानावरण अर्थात् ज्ञान को आवरण करे, ढांके उसे ही ज्ञानावरण कहते हैं। मिथ्यात्व का अर्थ उलटापन अर्थात् जो विपरीतपन उत्पन्न करे सो मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व जीव के ज्ञान, चारित्र, वीर्य आदि अनन्त गुणों को विपरीत करता है। मिथ्यात्व होवे वहां तक ज्ञान मिथ्याज्ञान, चारित्र मिथ्याचारित्र, सुख बाह्य (पुद्‌गलीक) सुख, वीर्य कुपुरुषार्थ (बालवीर्य) रहता है। जब मिथ्यात्व नाश होजावे तब मिथ्याज्ञान आदि अनन्त गुण सम्यक्—सुलटे होजाते हैं।

(१४) प्रश्न—बहुत शास्त्र कंठस्थ होने पर भी समकित के बिना मिथ्या ज्ञान होता है तो वह पदार्थ को किस प्रकार जानता है ?

उत्तर—मिथ्या ज्ञान का अर्थ ऐसा न करें कि मकान को मकान न जाने, जीव को जीव न जाने। समकित

विना अनेक शास्त्र के अर्थ भावार्थ तथा नय प्रमाण निक्षेप के विस्तृत ज्ञान से पदार्थस्वरूप खूब बारीकी से समझे, बंध मोक्ष के स्वरूप को समझे, जगत् के पदार्थ और भावों को बराबर जाने। यह सब जानना जहां तक आत्मानुभव शुद्ध आत्मस्वरूप का निश्चय स्वानुभूति (स्वानुभव) न हो वहां तक मिथ्या माना गया है, कारण जो आत्मस्वरूप का अनुभव न होवे तो खीर की कढ़ाई की चुड़छी तुल्य शुष्क ज्ञान है। सब ज्ञान का सार एक आत्मस्वरूप का अनुभव करना ही है। अपना जीव अनंत-बार हजारों शास्त्र पढ़ चुका, केवल एक शुद्ध निज आत्म-स्वरूप का अनुभव नहीं करने से अज्ञानी रहा है। जो राग, द्वेष, मोह (दर्शन मोहनीय) को त्याग करे तो थोड़ा ज्ञान होते हुए भी आत्मानुभव कर लेता है। जगत् के सर्व जड़ चेतन पदार्थों को अपनी आत्मा से जुदे अनु-भव करे, अपनी निज आत्मा में आपको ही अनुभवे। इन्द्रियजन्य विषय सुख जिन्हें अंतर से रोगरूप कटुए मालूम होते हैं, जो अविकारी अतीन्द्रिय निर्विकल्प आ-त्मिक सुख को भोगते हैं। जिस ज्ञान में आत्मा का निज स्वरूप प्रतिभासित होता है वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। ऐसा सम्यक् ज्ञान होने पर दान देना, शील पालना, संयम पालना, तप करना कष्ट रूप नहीं मालूम होता।

दान देना मल-त्याग रूप सुख देता है। संयम पालना सच्चा सुख रूप प्रतीत होता है। तप अपूर्व आनन्द होता है। शील खुजली के निरोगी को खुजालने की इच्छा ही न हो वैसे अपना स्वभाव समझ पालता है।

(१५) प्रश्न—समकित का लक्षण व स्वरूप क्या है?

उत्तर—(१) जीव अजीव आदि तत्वों का विपरीत मान्यता रहित जैसा स्वरूप है वैसा माने (श्रद्धा करे, निश्चय करे) व अनुभवे सो समकित अर्थात् आत्मदर्शन, आत्मानुभव है।

(२) स्वानुभूति आत्मा के स्वरूप को अनुभवे वह समकित है।

(१६) प्रश्न—समकित के लक्षण कई स्थान में भिन्न भिन्न बताये गए हैं तो कौनसा लक्षण ठीक है?

उत्तर—कोई स्थान में व्यवहार समकित के लक्षण बताये गए हैं और कोई स्थान में निश्चय समकित के लक्षण बताये गए हैं। इसलिये शास्त्र में कहा है कि जो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों के स्वरूप को बराबर

समझता है वही सत्य समझ सकता है तथा सत्य उपदेश दे सकता है अन्यथा कईवार हानि होजाती है।

(१७) प्रश्न—व्यवहार समकित का क्या लक्षण है?

उत्तर—व्यवहार समकित का लक्षण देव अरिहंत गुरु निर्ग्रंथ, संवर, निर्जरा में धर्म व स्याद्वाद युक्त शास्त्र को मानें, सम् (समभाव), संवेग (धर्म भक्ति) निर्वेग (वैराग्य—भोग अरुचि), अनुकंपा व जीवादि नवतत्व की यथार्थ श्रद्धा—आस्ता, ये पांच लक्षण तथा व्यवहार समकित के ६७ बोल के गुण व्यवहार लक्षण हैं।

(१८) प्रश्न—निश्चय समकित का लक्षण क्या है?

उत्तर—अन्तरंग में अनंतानुबंधी (पर वस्तु को अपनी मानकर क्रोधादि करना) क्रोध, मान, कपट, लोभ, मिथ्यात्व मोहनीय (खोटे में आनन्द ममत्व), मिश्र मोहनीय (कुछ सत्य, कुछ असत्य में आनन्द), समकित मोहनीय (सत्य न किंचित् शंकादि दोष सेवन)। इन सात प्रकृति का अभाव करे और बाह्य में शुद्ध आत्मस्वरूप का अनुभव करे यह (स्वानुभूति) निश्चय समकित का लक्षण है।

(१९) प्रश्न—स्वानुभूति क्या चीज है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरणी के पेटे की एक विशेष प्रकृति (स्वानुभूति आवरण) नाम की प्रकृति है । वह हटने से स्वानुभूति, आत्मानुभव होता है । यह ज्ञान का गुण है, तथापि निश्चय समकित होवे तब ही होता है । जिससे समकित के लक्षण में भी बताया जाता है । जो शुद्ध आत्म अनुभव होवे वहां निश्चयात्मक गुण है । वह समकित है ।

(२०) प्रश्न—कर्म प्रकृति तो १४८ या १५८ कही गई है जिसमें यह प्रकृति क्यों नहीं कही गई ?

उत्तर—आत्मा के असंख्य लेश्या, भाव, परिणाम होते हैं, उनमें जुदी २ कर्म प्रकृति का बंध होता है, कर्म की असंख्य प्रकृति (जातियां) हैं परन्तु मुख्य आठ हैं, जिन्हें आठ कर्म कहते हैं व उत्तर प्रकृति १४८ या १५८ कही गई हैं, कारण समझाने के लिये आवश्यक ही लेना पड़ता है । जैसा जीव के कर्म उदयानुसार अनन्त भेद हो सकते हैं तथापि ५६३ भेद ही कहे गये हैं, कारण समझाने के लिये कुछ मर्यादा व वर्ग करना ही पड़ता है । पुनः अनंत भेद जीव कह दिया है ।

(२१) प्रश्न—शास्त्र में किसी स्थान में आत्मा को जानना समकित है, ऐसा कथन है ?

उत्तर—हां अनेक स्थान में ये भाव निकलते हैं। तथा श्री पन्नवणा सूत्र, आवश्यक सूत्र व उत्तराध्ययन मोक्ष-मार्ग अध्ययन में दर्शन—समकित का विवेचन करते चार लक्षण में पहला "परमत्थसंथवो वा" परम मानी प्रधान, अर्थ मानी तत्त्व। सर्व तत्त्व में एक निज आत्मा ही प्रधान तत्त्व है। उसका संस्तव करे, परिचय करे, अनुभव करे, ऐसा कहा गया है फिर भी श्री आचारांग सूत्र में फरमाया गया है कि "जो आत्मानुभव करते हैं वे अन्य स्थान में नहीं रांचते, नहीं रमण करते"। जो अन्य स्थान में नहीं रांचते वे ही एक आत्मा में रांचते-रमण करते हैं। इसी न्याय से समकिती जीव को धाई माता समान भिन्न अनुभव करने वाला कहा है। वह संसार में अपनापन नहीं करता तथा और भी श्री आचारांग सूत्र में फरमाया गया है कि "जो मूल कर्म—अग्र कर्म अर्थात् मिथ्यात्व का नाश करता है वह आत्म-दर्शन करता है और उसे मरण—भय नहीं रहता।

(२२) प्रश्न—तत्वार्थ श्रद्धान् समकित का क्या अर्थ है?

उत्तर—तत्व कहे तो भाव (धर्म-स्वभाव सार वस्तु स्वरूप), अर्थ कहे तो पदार्थ। जिस पदार्थ का जो

सच्चा स्वभाव (धर्म) है, उसका श्रद्धान् समकित है। कारण खाली अर्थ करे तो पदार्थ श्रद्धा में समकित माने तो यथार्थता सत्यता का विशेषण नहीं होने से विपरीत पदार्थ को मानने में भी समकित हो जावे। इसलिये यथार्थ वस्तु स्वरूप पदार्थ के निश्चय को ही समकित कहा है, सो बहुत ठीक है।

(२३) प्रश्न—जगत् में मुख्य तत्त्व कितने हैं ?

उत्तर—दो। एक जीव और दूसरा अजीव।

(२४) प्रश्न—इन जीव अजीव के विशेष प्रकार से कितने प्रकार होते हैं ?

उत्तर—एक अपेक्षा से छः भेद हैं, जिन्हें छः द्रव्य कहते हैं तथा दूसरी अपेक्षा से नव भेद हैं जिन्हें नव तत्त्व कहते हैं। ये सब प्रकार जीव अजीव की अवस्था (पर्याय) हैं।

(२५) प्रश्न—छः द्रव्य के नाम व गुण कहो ?

उत्तर—(१) धर्मास्तिकाय का चलन सहायक गुण है। जैसे जल मछली को चलने में सहायक है, चलने की प्रेरणा नहीं करता, इसी प्रकार

जीव पुद्गल को गति करने में धर्मास्ति-
काय सहायक है, परंतु प्रेरक नहीं है ।

(२) अधर्मास्तिकाय का स्थिर सहायक गुण
है । जैसे ग्रीष्म ऋतु में थके हुए मनुष्य
को वृक्ष की छाया बैठने में सहायक है,
प्रेरक नहीं ।

(३) आकाशास्तिकाय का जगह देना (अव-
काश देना) गुण है । जैसे दूधमें शक्कर
भींत में कीली को जगह होती है । ऐसे
यह सब पदार्थों को रहने की जगह देता
है । एक आकाश प्रदेश पर जीव पुद्गल
के अनंत प्रदेश रखने की शक्ति विशेष
है । यह खास स्वभाव है । जैसे छोटा
भी जलचर जीव पानी में जीता है जब कि
हाथी, सिंह, वगैरे डूब मरते हैं व बड़ा
मच्छ भी पानी के बाहर मरजाता है । यह
एक स्वभाव की विशेषता है ।

(४) कालद्रव्य का वर्तना गुण है जिसके
निमित्त से नये पदार्थ जूने होते हैं, जूने
पदार्थ नये होते हैं ।

(५) जीवद्रव्य के चार गुण अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आत्मिक सुख, अनंत आत्मशक्ति।

(६) पुद्गल द्रव्य—पुद् कहे तो मिलना, गल कहे तो गलना—बिखरना। जिसका गुण

मिलना व बिखरना है जो सदा एकसा नहीं रहता इसके मुख्य गुण चार हैं, (१) वर्ण, (२) गंध, (३) रस, (४) स्पर्श।

(२६) प्रश्न—कोई लोक, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु; इनको अलग अलग स्वतंत्र (खास जुदे जुदे) तत्त्व मानते हैं सो कैसा है ?

उत्तर—यह ठीक नहीं, कारण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु अलग अलग स्वतंत्र तत्त्व नहीं हैं। एक का दूसरा रूप बन जाता है। जैसे मिट्टी व जल के योग से वनस्पति बनती है वह अग्नि रूप हो जाता है। फिर पीछी वह अग्नि राख होकर मिट्टी बन जाती है। पानी उबलने पर भाफ बनकर वायु रूप हो जाता है। दो जाति की वायु (हाइड्रोजन व आक्सिजन) मिलाने से जल हो जाता है। एक परमाणु दूसरा रूप बनता है परन्तु कभी उसका

अस्तित्व सर्वथा नष्ट नहीं होता। यह जैन सिद्धांत आज सायन्स से सिद्ध हो चुका है और इसलिये सायन्स का मूल सूत्र यह हुआ कि किसी पदार्थ का सर्वथा नाश नहीं होता। सदा नित्य रहना, ऐसा कहा गया है। हर चीज की अवस्थाएं बदलती है। इसे पर्याय कहते हैं, जिस अपेक्षा से सब पदार्थ को अनित्य भी माने हैं। सारांश द्रव्य की अपेक्षा से पदार्थ नित्य हैं। अवस्था (पर्याय) की अपेक्षा से अनित्य हैं।

(२७) प्रश्न—ज्ञान से क्या लाभ होता है?

उत्तर—वस्तु को बराबर समझने से राग, द्वेष हर्ष, शोक नहीं होता। कोई वस्तु में ममत्व (मेरापन) की बुद्धि नहीं होती। सदा समभाव रहता है। तथा पुद्गल में शरीर, धन, भोग, अन्न, वस्त्र, गहने, मकान, दुकाने, निंदा सब आजाते हैं; इनको निनसे बिखरने का स्वभाव वाले जानने वाला विवेकी मनुष्य इनमें मोह नहीं करता, कारण इन चीज़ों को नाशवान् बराबर जानता है और वह खूब दान देता है। कभी उसे लोभ नहीं होता, शुद्ध शील पालता है। कारण वह एक गटरखाने से दूसरे गटरखाने के संयोगरूप भोग निंदनीय व दुःख-भंडार मानता है। तपस्या खूब करता है, कारण शरीर व भोजने को जीवकों

साधन मानता है । शुद्ध भाव रखता है, कारण उसे रागद्वेष नहीं आता। इस प्रकार छः द्रव्य के बराबर ज्ञान होने से वीतराग भाव प्रकट होकर अनंत सुख (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ।

(२८) प्रश्न—धर्म शब्द के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—धर्म शब्द के अभिप्राय से अनेक अर्थ हैं । एक वस्तु का स्वभाव सो धर्म (वत्थु सहावो धम्मो) अर्थात् जो वस्तु को वस्तुपने में कायम रक्खे सो धर्म । जैसे जीवका धर्म उसके चार गुण अनंत ज्ञानादि है । इन गुणों से ही जीव सर्व काल में जीवपने में कायम रहता है। दूसरा अर्थ-धर्म कहे तो जो जीव को दुःख में गिरते को बचाकर सुख में धारण कर रक्खे वह धर्म, अहिंसा, सत्य, दान, तप आदि जिनसे जीव सुख पाता है। यह धर्म जीव के परिणाम हैं अर्थात् चारित्र गुणकी पर्याय (हालत) है तीसरा अर्थ-धर्म अर्थात कर्त्तव्य-फरज़ भी है। इन सब अर्थों में धर्मको एक गुण माना है । अब जैनशास्त्र में पारिभाषिक धर्म शब्द एक अजीव अरूपी तत्त्व का नाम भी कहा है जो चलने में सहायक है । यह एक संज्ञा-विशेष है । यहां इतना भाव मिला सकते हैं कि दोनों में

चलने में मदद देना तुल्य है, कारण अहिंसा आदि भाव धर्म से जीव ऊँची गति में चला जाता है।

(२६) प्रश्न—अधर्म शब्द के कितने अर्थ हैं।

उत्तर—जुदी जुदी अपेक्षा से अधर्म शब्द के अनेक अर्थ हो सकते है।

(१) वस्तु का मूल स्वभाव दूषित होवे, विकारी होवे उसे अधर्म कहते हैं। जैसे जीव का स्वभाव मूल गुण चार दूषित होवें तव (१) अज्ञान।

(२) मिथ्यात्व (कुदर्शन, अंधता)

(३) इन्द्रियजन्य सुख दुःख, राग द्वेष (कुचारित्र)

(४) कुपुरुषार्थ (बालवीर्य), हिंसा, विषय, कषाय में प्रवृत्ति होना। इन चार कामों को अधर्म कहते हैं। धर्म से सुख शांति आनंद रहता है जब कि अधर्म से जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, चिंता आदि अनंत दुःख भोगने पड़ते हैं।

दूसरा अर्थ जो दुर्गति दुःख में गिरते हुए को नहीं बचावे सो अधर्म, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयसेवन, तृष्णा, निन्दा, क्रोध, मान, कपट, लोभ, कलह आदि अठारह पापस्थान हैं वे अधर्म हैं। तीसरा-जो अधर्म कहे तो कर्तव्य नहीं है। जो काम करने योग्य नहीं उसे करना सो अधर्म। चौथा अर्थ—जैन शास्त्र में पारिभाषिक अधर्म शब्द एक अजीव अरूपी तत्व का भी नाम है। यह संज्ञा विशेष है। स्थिर रहने में सहाय्य करे। यहां इतना भाव मिला सकते हैं कि स्थिर रहने में सहाय्य देना तुल्य है, कारण भाव अधर्म-हिंसादि कामों से दुःखपूर्ण संसार में ही जीव ठहरता है, ऊँचा नहीं जा सकता।

(३०) प्रश्न—नवतत्व क्या है ?

उत्तर—जीव और अजीव की हालत अवस्था अर्थात् पर्याय हैं। जीव का अजीव (कर्म) के साथ संबंध होने

से पुण्य पाप आश्रव व बंध होता है तथा संबंध छूटने से संवर, निर्जरा, मोक्ष होती है। इस प्रकार सब मिलकर नवतत्व होते हैं।

(३१) प्रश्न—जीवकी शुद्ध हालत (पर्याय) व अशुद्ध हालत (पर्याय) कौनसी मानी गई हैं ?

उत्तर—पुण्य, पाप, आश्रव, बंध; यह जीवकी अशुद्ध हालत है व संवर, निर्जरा तथा मोक्ष; जीवकी शुद्ध हालत है। अशुद्ध हालत संसार का कारण है व शुद्ध हालत मोक्ष का कारण है।

(३२) प्रश्न—नवतत्व का सामान्य लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) जीवका लक्षण शुद्ध अवस्था में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आत्मिक सुख, अनंत आत्मिक शक्ति। अशुद्ध अवस्था में अल्पज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान। अल्पदर्शन शक्ति या मिथ्यादर्शन। इंद्रियजन्य सुख दुःख, रागद्वेष, बालवीर्य अर्थात् कुपुरुषार्थ।

(२) अजीव का लक्षण—जड़-अचेतन।

(३) पुण्य—भाव पुण्य–शुभ परिणाम (विचार)। द्रव्य पुण्य–शुभकाम, शुभ कर्म-दल व शाता के संयोग।

(४) पाप—भाव—अशुभपरिणाम (विचार)। द्रव्य पाप–अशुभ काम, अशुभ कर्मदल व अशातकारी संयोग।

(५) आश्रव—भाव–शुभाशुभ परिणाम (विचार)। द्रव्य–शुभाशुभ काम–मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग व शुभाशुभ कर्म दल का संचय होना।

(६) संवर—भाव संवर–शुद्धोपयोग, राग, द्वेष, मोह (मिथ्यात्व मोहनीय) रहित परिणाम। द्रव्य–मन, वचन, काया, पांच इंद्रिय पर संयम, अहिंसादि पांच व्रत, पांच समीति आदि।

(७) निर्जरा—भाव–शुद्धोपयोग (राग, द्वेष, मोह रहित परिणाम), धर्म ध्यान (शुक्ल ध्यान)। द्रव्य में--अनशन (उपवास), ऊणोदरी आदि बारह प्रकार की निर्जरा

के काम व देशथकी अमुक अंश से कर्म दल का आत्मा से दूर होना।

(८) बंध—भाव-राग द्वेष मोह के परिणाम। द्रव्य-मन, वचन, काया की प्रवृत्ति तथा कर्मदल का जीव के प्रदेशों के साथ एक मेक होना।

(९) मोक्ष—भाव-परम विशुद्ध वीतराग परिणाम अकषायी, अजोगी, अलेशी अवस्था। द्रव्य में-स्थूल शरीर उदारिक, सूक्ष्म शरीर तेजस, कार्माण शरीर व आठों ही कर्मों का सर्वथा क्षय होना।

(३३) प्रश्न—व्यवहार समकित के गुण क्या फ़ायदा करते हैं?

उत्तर—व्यवहार समकित निश्चय समकित का साधक है। व्यवहार समकित के गुण तत्त्वज्ञान, वांचन, मनन व सम् संवेग आदि गुणों के द्वारा उत्कृष्ट भावना व पुरुषार्थ से निश्चय समकित प्रकट न हो तो भी व्यवहार समकित से उच्च गति व आत्मा निर्मल तो अवश्य होती है। मिथ्यात्व में डूब कर अनन्त दुखी होने के स्थान व्यव-

हार समकित को सेवन कर भयङ्कर दुःखों से बचना हितकारी ही है।

(३४) प्रश्न—निश्चय समकित की पहिचान कैसे होती है ?

उत्तर—स्वानुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप के अनुभव से निश्चय समकित जाना जाता है। जो अतीं-द्रिय (इंद्रिय विषयक सुख रहित) आत्मिक अविकारी नि-र्विकल्प सुख का अनुभव है, वह निश्चय समकित का लक्षण है।

(३५) प्रश्न—प्रकृति की अपेक्षा से समकित के भेद कितने हैं ?

उत्तर—चार। १ क्षायिक समकित। २ उपशम स-मकित। ३ क्षयोपशम समकित। ४ वेदक समकित। चार अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, और समकित मोह-नीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, इन सात प्रकृति का सर्वथा क्षय (नाश) करना जले बीजवत्-जैसे बीज की राख होने के बाद अंकुर नहीं उगता उसी प्रकार सात प्रकृति अनंत संसार भ्रमण कराने वाली हैं। उसके नाश होने के बाद पुनः वह न तो उत्पन्न होती है, न संसार में

भटकना पड़ता है। इसको क्षायिक समकित कहते हैं। उपशम समकित में इन सातों प्रकृति का उपशम होता है (ढक जाती हैं, सत्ता के अंदर रहती हैं)। जैसे भारी अग्नि सात प्रकृति में से कुछ प्रकृति का क्षय करे और कुछ उपशम (ढांक) कर सत्ता में रक्खे। उसे क्षयोपशम समकित कहते हैं। कुछ प्रकृति को क्षय करे और कुछ का उदय होय (वेदे) सो वेदक समकित है।

(३६) प्रश्न—विशेष प्रकार से समकित के कितने भेद हैं ?

उत्तर—नव भेद हैं। क्षायिक और उपशम समकित, एक एक ही भेद ऊपर कहा उसी मुजब है। क्षयोपशम समकित के तीन भेद हैं।

(१) अनंतानुबंधी चार कषाय का क्षय करे और दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृति का उपशम करे।

(२) अनंतानुबंधी की चार और एक मिथ्यात्त्व-मोहनीय, इन पांच का क्षय करे और दो का उपशम करे।

(३) अनंतानुबंधी की चार और एक मिथ्यात्त्व-मोहनीय तथा मिश्र-मोहनीय इन छः का क्षय

करे तथा एक समकित-मोहनीय का उपशम करे।

वेदक समकित में केवल एक समकित-मोहनीय प्रकृति वेदे। उसकी छः प्रकृति का क्षय करे, उपशम करे या क्षयोपशम करे। इसके चार भेद हैं।

(१) अनंतानुबंधी की चार और मिथ्यात्त्व व मिश्र-मोहनीय इन छः का क्षय करे और एक समकित-मोहनीय को वेदे सो क्षायक वेदक।

(२) छः प्रकृति को उपशमावे और एक को वेदे सो उपशम समकित।

(३) चार अनंतानुबंधी को क्षय करे, मिथ्यात्त्व व मिश्र को उपशमावे और समकित-मोहनीय को वेदे सो पहिली क्षयोपशम वेदक।

(४) चार अनंतानुबंधी और मिथ्यात्त्व-मोहनीय की एक, इन पाँचों को क्षय करे, एक मिश्र-मोहनीय को उपशमावे और एक समकित-मोहनीय को वेदे सो दूसरी क्षयोपशम वेदक।

(३७) प्रश्न—चारों प्रकार के समकित में यथार्थ तत्त्व श्रद्धा व आत्मिक सुख में न्यूनाधिकता होती है कि समानता ?

उत्तर—चारों ही समकित में स्थिति की अपेक्षा से भेद हैं, परंतु निश्चय व अनुभव की अपेक्षा से कोई भेद नहीं है। स्थितिबंध कृत भेद होने से सम्यक्त्वों में स्थितियां भिन्न भिन्न हैं। अनुभाग-रसोदय कृत कोई भेद इन में नहीं है। सभी भेदों में आत्मा का निजस्वरूप के अनुभवसुख को देने वाला एक ही सम्यक्त्व गुण है। जैसे निर्मल जल में व कीचड़ जमे हुए जल में पड़ा हुआ रत्न बराबर प्रकाशता है। अंतर मात्र शुद्ध जल में का रत्न सदा प्रकाशता है जब कि जमे हुए कीचड़ के पानी का रत्न संयोगवशात् प्रकाश देता बंध भी हो सकता है, इसी प्रकार क्षायिक समकित शुद्ध जलवत् सादिअनंत (शुरू हुए वहां से सदा के लिये) कायम रहता है।

(३८) प्रश्न—चार प्रकार के बंध में फल देने वाला कौनसा बंध है ?

उत्तर—प्रकृति, स्थिति और प्रदेश तीनों बंध फल देने में व कोई गुणों का घात करने में समर्थ नहीं हैं। केवल

एक अनुभागबंध-रसबंध जो कषाय से ही उत्पन्न होता है, वह फल देने में समर्थ है।

(३९) प्रश्न—समकित प्रगट करने का अंतरंग कारण कर्म प्रकृति की अपेक्षा से सात प्रकृति का अभाव है तो सात प्रकृति जीव को क्या असर करती थीं?

उत्तर—अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ अनंतानुबंधी अनंत हैं। अनुबंध कहे तो रस, तीव्रता जिसमें। जो अनंत कर्म वर्गणा का बंध करता है, जो अनंत संसार का कारण है, जो अनंत ज्ञान सुख आदि गुणों का घात करता है उसे अनंतानुबंधी कहते हैं। पर वस्तु को अपनी मान कर उसमें रमण करना व अपने निज स्वरूप को भूलजाना इसका असर है। जैसे बहुत नसे से समझदार मनुष्य भी सार वस्तु को फेंककर असार संग्रह करने लगता है, पीत-ज्वर से उत्तम भोजन भी कडुआ लगता है, पीलिए के रोग से सुफेद मोती की माला भी पीली दीखती है, इसी तरह इसके उदय से आत्मिक सुख के स्थान इंद्रियजन्य सुखों में ममत्त्व भावना होती है। इसी के निमित्त से अनादि काल से अपना जीव संसारभ्रमण कर रहा है। अनंतानुबंधी चौकड़ी अनंतसुखदायी स्वरूपाचरण चारित्र गुण की घात करता है, मिथ्यात्व-

मोहनीय से परवस्तु में ममत्व होता है। विपरीत बुद्धि होकर शरीर भोगादिको अपनी वस्तु मानता है।

मिश्र-मोहनीय कुछ सत्य कुछ असत्य दोनों में ममत्व (अपनायत) पैदा करता है।

समकित-मोहनीय—शुद्ध सत्य (आत्मा) निश्चय में अस्थिरता (शंका, कंखादि) दोष उत्पन्न करता है।

(४०) प्रश्न—समकित उत्पत्ति में चारित्र मोह की अनंतानुबंधी चार प्रकृति का अभाव होने से कौनसा चारित्र गुण प्रगट होता है?

उत्तर—चारित्र का अर्थ रमण करना, विचरना, अनुभव करना है। अनादि से जो परद्रव्य में (विषय, कषाय में) रमण करता था वह अब देश से (कुछ अंश से) निज शुद्ध आत्मस्वरूप में रमण करता है। यह चौथा गुणस्थान से ही शुरू हो जाता है, इसीसे तीन लोक के विषय भोगों के सुख से समदृष्टि के आत्मरमणता का सुख अनंतगुणा बताया है।

(४१) प्रश्न—तीन दर्शन मोहनीय के अभाव से क्या होता है?

उत्तर—विपरीत निश्चय, मिश्रनिश्चय व सत्य में कुछ मलीनतायें, इन तीनों दोषों का नाश होकर यथार्थ शुद्ध निजरूप का निश्चय होता है।

(४२) प्रश्न—समकिती जीव अनुकूल प्रतिकूल संयोगों में अभय, अडिग कैसे रहता है?

उत्तर—समदृष्टि की आत्मा इतनी प्रबल, निर्भय हो-जाती है कि उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। वह इष्ट अनिष्ट सब संयोगों को पुद्गल (जड़) की दशा (हालात-पर्याय) जानकर अपने स्वरूप से नहीं डिगता। वह विचारता है कि मैं इन जड़ पदार्थों (पुद्गलों) से भिन्न हूं, अकेला अनंत ज्ञान, दर्शन आदि गुणस्वरूप हूं, विकाररहित हूं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं। ये सब विकार पुद्गल के हैं तथा शरीर, इंद्रिय भोग, परिवार, धन, यश, निंदा, सुख, दुःख के निमित्त सब अनित्य व नाशवान् हैं, मेरे गुण को न बढ़ा सकते हैं, न घटा सकते हैं, मैं खुद ही कायर बनकर हर्ष, शोक, राग, द्वेष करके अपने ज्ञान सुखादि गुणों को मलीन दूषित-विकारी करता हूं। पहिले अज्ञान था जिससे मैं स्वयं अपने आपको दुखी करता था। अब मैंने सच्चा स्वरूप समझ लिया है जिससे समभाव में ही रहूँगा। मरण तक भी शरीर का नाश है, चेतनरत्न तो

सदा उसी रूप में रहता; ऐसे विचार करके सदा अभय रहे।

(४३) प्रश्न—रोग तथा मरणभय उत्पन्न होवे तब समदृष्टि क्या विचार करे ?

उत्तर—यह शरीर जड़ है, अचेतन है, हाड़, मांस, लोहू, मल, मूत्र, कीड़े, नसा जाल से भरपूर है। रोग शरीर को नाश कर सकता है। मरण सर्वथा शरीर छूटने को मानते हैं। रोग व मरण चैतन्य का तो कुछ भी नहीं ले सकते हैं। मुझे वेदना होती, दुःख होता है। मेरे जीवका चारित्र गुण आत्मस्वरूप में रमण करने का था। वह शरीर ममत्व भोग आनंद आदि कुकामों से दूषित होकर शारीरिक वेदना का भोगी बन रहा है। यदि मैं इस समय ज्ञान, वैराग्य व आत्म-भावना से समभाव रखकर दुःख सहन कर लूँगा तो सदा के लिये इस प्रकार की शारीरिक वेदनाएँ व मरण दुःख छूट जायगा। जैसे लेनदार आया, राजी से कर्ज़ चुका दिया, नया झगड़ा व कर्ज़ न किया तो सदा के लिये छुटकारा पाते हैं, इसी प्रकार यह सब दुःख मेरे ही खुद के अज्ञान व विषय सेवन का फल हैं। अब नया बीज नहीं बोऊंगा तो फल कैसे लगेंगे।

दोहा—सुख दुख जाने जीव सब, सुख दुख रूप न जीव
सुख दुख पुद्गल पिंड हैं, जड़ता रूप सदीव ॥१॥

रोग पीड़ता देह को, नहीं जीव को खास ॥
घर जले अग्नि थकी, नहीं घर का आकाश ॥२॥

इत्यादिक सुविचारों से सदा आत्मिक अमृत सुख का पान करे।

(४४) प्रश्न—सब सुख दुःख में समताभाव धर सकें, ऐसी शक्ति कब आती है ?

उत्तर—जीव अजीवादि नव तत्त्वों का द्रव्य, गुण, पर्याय से ज्ञान करके परवस्तु से मैं भिन्न हूं, ऐसी वारंवार अंतर उपयोग पूर्वक भावना करने से भेदज्ञान समकित होता है। उससे सदा परम समतारसका ही पान होता है और रागद्वेष मोह फटकने नहीं पाते।

(४५) प्रश्न—द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान करने की शिक्षा कहां दीगई है ?

उत्तर—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के मोक्ष मार्ग अध्ययन में प्रथम ज्ञान किस बात का करना, ऐसा बताते हुए पांचवीं गाथा में कहा है कि "यह पांच प्रकार का ज्ञान (मति, श्रुति, अवधि, मन, पर्यय व केवल ज्ञान) द्रव्य गुण और पर्याय को जानने का ही है। इस ज्ञान को सब तीर्थंकर

देवों ने ज्ञान कहा है। जहां यह ज्ञान नहीं वहां सम्यग् ज्ञान नहीं हो सकता, कारण जो वस्तु को बराबर न समझे वह किस प्रकार सत्य स्वरूप जान सके। श्री अनुयोगद्वार सूत्र में फरमाया है कि आचार्य महाराज अपने शिष्यों को सब शास्त्रों का ज्ञान द्रव्य, गुण, पर्याय सहित देवें। चार अनुयोग में द्रव्यानुयोग का अंतर उपयोग सहित ज्ञान को निश्चय ज्ञान कहा है और धर्म कथानुयोग, चरणकरणानुयोग व गणितानुयोग; इन तीन योगों को व्यवहारज्ञान कहा है।

(४६) प्रश्न—द्रव्य किसको कहते हैं।

उत्तर–(१) गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

(२) जो गुण पर्याय संयुक्त होवे उसे द्रव्य कहते हैं।

(३) जो गुणों का भाजन हो उसे द्रव्य कहते हैं।

(४) जो उत्पन्न होना, विनाश होना (पर्याय अपेक्षा से) व कायम रहना (द्रव्य अपेक्षा से); तीन गुण धरे उसे द्रव्य कहते हैं। जैसे जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य।

(४७) प्रश्न—गुण किसे कहते हैं।

उत्तर-(१) जो हमेशा द्रव्यके पूरे हिस्से व सब हालत में रहे उसे गुण कहते हैं।

(२) जो द्रव्य को बतावे (ओलखावे) उसे गुण कहते हैं। जैसे जीवका गुण, ज्ञान। पुद्‌गल का गुण वर्ण, गंध, रस, स्पर्श

(४८) प्रश्न—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—हालत व अवस्था को पर्याय कहते हैं, जो रूपांतर होवे, पलटती रहे उसे पर्याय कहते हैं।

(४९) प्रश्न—पर्याय के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो। शुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्याय।

(५०) प्रश्न—शुद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो दूसरे द्रव्य के निमित्त से न हो वह शुद्ध पर्याय (शुद्ध हालत) है।

(२) जो विकार रहित हो सो शुद्ध पर्याय है।

(३) जो सर्वकाल में एक सरीखी परिणमन

करती रहे, शुद्धता का कभी विनाश न होवे सो शुद्ध पर्याय है। जैसे जीवकी शुद्ध पर्याय सिद्ध स्वरूप व केवल ज्ञान, केवल दर्शनादि।

(५१) प्रश्न—अशुद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो दूसरे द्रव्य के निमित्त से हो वह अशुद्ध पर्याय है।

(२) जो विकार सहित हो वह अशुद्ध पर्याय है।

(३) जो सर्व काल में एक सरीखी न रहे विनाशिक होवे वह अशुद्ध पर्याय है। जैसे जीवकी अशुद्ध पर्याय, मनुष्य तिर्यंच आदि व मति ज्ञानादि।

(५२) प्रश्न—शुद्ध पर्याय में जीवकी क्या हालत होती है ?

उत्तर—शुद्ध पर्याय में जीवके चारों ही भाव प्राण शुद्ध होते हैं।

(५३) प्रश्न—प्राण के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो। एक द्रव्य-प्राण, दूसरा भावप्राण। द्रव्य

प्राण के दश भेद हैं। पांच इंद्रिय, मन, वचन, काया, श्वासो-श्वास और आयुष्य; ये द्रव्यप्राण कर्म के निमित्त से जीव को पैदा होते हैं और भाव प्राण के चार भेद हैं। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत शक्ति, ये चार भाव-प्राण सदा कायम रहते हैं। इन्हीं से जीव तीनों काल में कायम रहता, जीवित रहता है, ऐसा कहा गया है। संसारी जीवों के ये भाव-प्राण राग, द्वेष, मोह से दूषित हो रहे हैं, परंतु इनका सर्वथा नाश कभी भी नहीं होता है। द्रव्यप्राण के नाश को व्यवहार में मृत्यु कहते हैं। समदृष्टि मृत्यु समय व हरेक उपसर्ग में भाव-प्राण से आपको अजर-अमर-अविनाशी मानता हुआ अभय (परमानंदी) रहता है। दूसरे के द्रव्य-प्राणों को पीड़ा करने से वह जीव दुःख पाता है। इसी को हिंसा का पाप कहते हैं। इसके फल में खुद को भी पीड़ा दुःख भोगना पड़ता है। द्रव्यशरीर, मनादि को कष्ट देने से स्व तथा पर का राग, द्वेष, क्लेश, क्रोध, शोकादि होते हैं। इससे ज्ञानादि भावप्राण भी मलीन होते हैं, सो स्व-पर की भाव-हिंसा होती है, इसलिये किसी को दुःख न देना चाहिये।

(५४) प्रश्न—दुःख कैसे पैदा होता है?

उत्तर—भय से दुःख पैदा होता है।

(५५) प्रश्न—भय कैसे होता है?

उत्तर—प्रमाद से भय होता है।

(५६) प्रश्न—प्रमाद किसे कहते हैं

उत्तर—"प्र"=अर्थात् विशेष प्रकार से। "माद" =अर्थात् मूढ़ हो जाना, मूर्छित हो जाना, आत्मस्वरूपको भूलकर इंद्रिय सुख व बाह्य जड़ पदार्थों में ममत्त्व करना, सुख दुःख मानना, वह "प्रमाद" है।

(५७) प्रश्न—प्रमाद के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—पांच प्रकार हैं (१) मद (गर्व) (२) विषय (३) कषाय (क्रोधादि) (४) निद्रा (५) विकथा (स्व पर हित सिवाय की बातें)।

(५८) प्रश्न—प्रमाद को कौन उत्पन्न करता है ?

उत्तर—अज्ञान व मिथ्यात्व (विपरीत समझ अर्थात् अंधता)।

(५९) प्रश्न—दुःखों को नाश करने का क्या उपाय है ?

उत्तर—सम्यग् ज्ञान व सच्ची समझ से (समकितसे) प्रमाद को छोड़ना चाहिये। प्रमाद त्यागनेसे भयका नाश होवेगा और भय का नाश होने से सकल दुःखों का भी

नाश होवेगा और अक्षय सुख (सदा अभय अवस्था) रहेगा।

(६०) प्रश्न—समदृष्टि संसार के काम किस तरह करता है ?

उत्तर—(१) जैसे किसी चोर को कोतवालने काला मुंह करके गधेपर बिठाया। वह मनुष्य यह काम हर्ष से नहीं करता किंतु बिना इच्छा के परवश होने से करता है, उसी प्रकार समदृष्टि जीव कर्मरूप कोतवाल की परतंत्रता से संसार के काम उदासीन (राग द्वेपरहित) भावों से करता है। जैसे धाई माता पुत्र को दूध पावे, रक्षा करे परंतु मनमें उसे अपना निजी पुत्र नहीं मानती, आपको उससे भिन्न भर्ती सेविका मानती है, इसी प्रकार समदृष्टि संसार में विरक्त रहे, आसक्त न हो।

(२) किसी विकट प्रसंग में तपाये हुए लोहे के पतरों की भूमि पर से किसी मनुष्य को खुले पैर दौड़ना पड़े तो वह उसमें आनंद नहीं मानता, वहां विश्राम नहीं

लेता, इसी प्रकार समदृष्टि जीव विषय कषाय रूपी भावअग्नि से तपायमान संसार प्रवृत्ति को करते समय उनमें आनंद न मानता। वहां विश्राम न लेता। शीघ्र उल्लंघकर सुख-स्थान (संयम) में विश्राम लेता है।

(६१) प्रश्न—समदृष्टि को संसार के काम करते हुए भी कर्मों का बंधन क्यों थोड़ा और लूखा होता है?

उत्तर—(१) समदृष्टि हरेक काम करने में हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, सत्यासत्य का भी विचार रखता है और अहित, अलाभ, अन्याय और असत्य को छोड़ता है।

(२) संसार के कामों में शरीर, धन, भोग व सब पदार्थों में स्वामीपने की (मेरी मालकी है ऐसी) बुद्धि नहीं रखता परंतु जीव की अशुद्ध दशा में रोग की चेष्टा तुल्य प्रवृत्ति करता हूं, ऐसा मानता है।

(३) अंतररुचि-अभिलाषा पूर्वक भोग सेवन नहीं करता।

(४) प्रत्येक काम में विरक्ति की भावना करता है हरेक

काम करते समय विचारता है, हे चेतन! यह हिंसा, विषय, कषाय तेरे को भयंकर दुःख देवेंगे। तूँ इन्हें छोड, न छूटे तो घटा। तेरा धर्म (स्वभाव) तो हिंसा, विषय, कषाय को सर्वथा छोड़कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में लीन होने का है।

(५) समदृष्टि संसार के काम उदासीन (राग-द्वेष रहित) भावों से करता है, जिससे कर्मों का बंधन बहुत मंद होता है, कारण राग द्वेष के निमित्त से ही रसबंध (अनुभागबंध) होता है।

(६) समझूं संके पापसे, अणसमझूं हरखंत।
वे लूखां वे चाकणां, इण विध कर्म बधंत॥१॥

संसारी प्रवृत्ति करते समय समदृष्टि जीव बड़ा दुःख माने, भय पावे, उसे घटाने का प्रयत्न करे जिससे लूखे कर्म बधते हैं कि जब अज्ञानी जीव संसारी कामों में हर्ष शोक धरके चिकने कर्मबंध करता है।

सुपुरुषार्थ[1], सत्य, अहिंसा, प्रमाणिकता (ईमानदारी), समभाव, गुणानुराग, उदासीनता, क्षमा, निरभिमानता, निष्कपटता व निर्लोभता, इन गुणों का पालन करके व्यापार-काम, घरकाम व शरीर-रक्षा करता है जिससे समदृष्टि जीव को कर्मों का बंधन लूखा (शिथिल) व थोड़ा होता है।

१—उत्तम कामों मे निरन्तर उद्योगी रहना।

शिक्षा—आज अपन लोग समदृष्टि श्रावक व साधु नाम धराते हैं, परंतु ऊपर के गुणों की प्राप्ति अल्प है। ऐसा जानकर यदि ऐसे लोक और परलोक के दुःखों से छूटना होवे तो ऊपर कहे हुए गुण प्रकट करना चाहिये।

(६२) प्रश्न—जीव के चेतनागुण के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—दो हैं (१) ज्ञानचेतना (२) अज्ञानचेतना।

(६३) प्रश्न—ज्ञानचेतना किसे कहते हैं?

उत्तर—राग-द्वेष-मोह रहित शुद्ध आत्मज्ञान (आत्मानुभव) को ज्ञान-चेतना कहते हैं।

(६४) प्रश्न—ज्ञानचेतना कब प्रगट होती है?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार कर्मों का सर्वथा नाश करने से केवलज्ञान प्रगट होता है। उसे प्रतिपूर्ण ज्ञानचेतना कहते हैं।

(६५) प्रश्न—ज्ञानचेतना की शुरुआत कब से होती है?

उत्तर—अनन्तानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ और तीन दर्शन-मोहनीय—(मिथ्यात्व-मोहनीय, मिश्रमोहनीय, समकित-मोहनीय)। इन सात प्रकृति के त्याग से समकित गुण (आत्मबोध) प्रगट होता है। तब से दूज के चन्द्रवत् ज्ञानचेतना शुरू होती है। वहां से कुछ अंश से (देश थकी) अतींद्रिय आत्मिक सुख का अनुभव प्रगट होता है।

(६६) प्रश्न—ज्ञानचेतना को प्रगट करने का क्या उपाय है ?

उत्तर—अज्ञान, राग, द्वेष, मोह को घटाकर आत्म-भावना चिन्वन करने से ज्ञानचेतना प्रगट होती है।

(६७) प्रश्न—अज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो यथार्थ आत्मस्वरूप को न समझे, शरीर-इंद्रिय व भोगों में ममत्व कर सुख-दुःख व राग-द्वेष के भाव उत्पन्न करे, वह अज्ञानचेतना है।

(६८) प्रश्न—अज्ञानचेतना के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो प्रकार हैं। एक कर्मचेतना, दूसरी कर्म-फलचेतना।

(६९) प्रश्न—कर्मचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीव्रमोह के उदय से व वीर्यांतराय के क्षयो-पशम से राग, द्वेष, मोह में प्रवृत्ति होना सो कर्मचेतना है। इसे कर्म-बंध का परिणाम कहते हैं। यह भाव कर्म है अर्थात् इसी से अनन्त द्रव्यकर्म (कर्मदल) आत्मा को चिपकते हैं।

(७०) प्रश्न—राग, द्वेष, मोह के कितने भेद हैं ?

उत्तर—आत्मा के सुख (चारित्र) गुण की घातक तेरह प्रकृति (चार कषाय व नव नोकषाय) हैं। उसमें सात प्रकृति रागकी हैं (१) माया (कपट), (२) लोभ, (३) हास्य, (४) रति, हर्ष, (५) पुरुषवेद (पुरुष

संबंधी विकार स्त्रीवांछादि), (६) स्त्रीवेद—स्त्री-संबंधी विकार (पुरुष वांछादि), (७) नपुंसक वेद (अतिविकार-हस्तदोष, सृष्टिविरुद्ध कर्म), स्त्रीके विषय उत्पादक शब्द, रूप, स्पर्श का निमित्त मिलते या भोगकी बात सुनते ही वीर्य-स्खलन होना व स्त्री पुरुष दोनों के भोगकी वांछा करना इत्यादि नपुंसक वेदके चिह्न हैं)

शिक्षा—आज विकार बढ़गया है, इसीसे नपुंसकत्व के चिह्न ज्यादा दिखाई देते हैं। जो पुरुषत्त्व है वह विरलों में है। पुरुष भी इन दोषों से नपुंसक हो जाता है। इस हालत को देखकर विकारों को जीतना व ब्रह्मचर्य गुण बढ़ाकर तामसी खुराक त्याग, व्यायाम, आसन, सत्संग, उत्तम वाचन, सद्भावना और सुरिवाजों से पीछा पुरुषत्व संपादन करना जरूरी है। दवाइयों के धोखे में कभी नहीं आना, पौष्टिक दवाई क्षणभर ताकत देवेगी, आखिर दुगुना विकार जागकर ज्यादा बुरी हालत होवेगी। कुदरती व कायमी पुरुषार्थ सात्त्विक उपायों से मिलता है।

द्वेषकी छः प्रकृति हैं—(१) क्रोध, (२) मान (गर्व), (३) अरति (दुःखित होना), (४) भय (डर), (५) शोक (चिन्ता), (६) दुगंच्छा (अरुचि, निंदा, अभाव)।

मोह की तीन प्रकृति हैं—मिथ्यात्त्वमोह, मिश्रमोह, समकितमोह।

(७१) प्रश्न—कर्मफलचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सुख दुःख का भोगना सो कर्मफलचेतना है। कर्म उदय के परिणाम को कर्मफल चेतना कहते हैं।

(७२) प्रश्न—चेतना के ज्ञान करने का सार क्या ?

उत्तर—कर्मचेतना अर्थात् राग, द्वेष, मोह से सब दुःख होते हैं, कारण संसार (जन्म-जरा-मरण) का बीज राग-द्वेष है और कर्मफल अर्थात् सुख दुःख बुद्धि से राग द्वेष होते हैं. ऐसा जान इन दोनों अज्ञानचेतना का त्याग करना चाहिये और ज्ञानचेतना समभाव प्रगट करने से सत्य अविनाशी सुख इस लोक तथा परलोक में सदा प्राप्त होता है।

(७३) प्रश्न—समदृष्टि की क्या विशेषता है ?

उत्तर—वह निर्मोही रहता है। संसार के किसी पदार्थ में ममत्व. मोह या स्वामीपन (अपनापन) नहीं धरता, केवल उदासीन (राग, द्वेष रहित) प्रवृत्ति करता है। सदा विषयजन्य प्रवृत्ति घटाता है, परवशता से न छूटे तो अंतःकरण से इसका पश्चात्ताप करता है।

(७४) प्रश्न—कर्ता, भोक्ता और ज्ञाता का क्या अर्थ है?

उत्तर—राग, द्वेष, मोह के परिणाम को कर्मचेतना (कर्मबंधक परिणाम) कहते हैं; यही कर्त्तापन है अर्थात् इससे जीव कर्म का कर्ता होता है।

इष्ट अनिष्ट संयोग में सुख दुःख बुद्धि होने को कर्म-फलचेतना (कर्म उदय परिणाम) कहते हैं । यही भोक्तापन है ।

राग, द्वेष, मोह व सुखदुःख बुद्धि रहित उदासीन भाव—समभाव—आत्मानुभव को ज्ञानचेतना कहते हैं। यही ज्ञातापन है ।

कर्त्ता, भोक्ता बनने से बहुत नवीन कर्मबंध होता है । ज्ञातापन से कर्मक्षय होते हैं ।

(७५) प्रश्न—चारित्रमोह के उदय से समदृष्टि को क्या होता है ?

उत्तर—अल्प इष्ट, अनिष्ट बुद्धि होवे, परंतु ममत्त्व-भाव—स्वामीपन नहीं होने से तथा भेदज्ञान होने से तुरत पश्चात्ताप कर विरक्त बन जावे, इससे चिकने कर्मों का बंध समदृष्टि को नहीं हो सकता ।

(७६) प्रश्न—मिथ्यात्त्वमोह व चारित्रमोह का जीव पर क्या असर होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्वमोह के निमित्त से जीव शरीर, इंद्रिय भोगादि में मेरेपने की बुद्धि करता है और चारित्र-मोह के उदय से इष्ट अनिष्टबुद्धि (हर्षशोक-रागद्वेष) करता है, दोनों के अभाव से वीतराग बन जाता है ।

(७७) प्रश्न—भेदज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्यादवाद सहित द्रव्यानुयोग का व्यवहार निश्चय रूप जानकर अपनी निज आत्मा को सकल जीव अजीवादि अन्य द्रव्यों से भिन्न जाने तथा अनुभवे और द्रव्यकर्म (आठ कर्मवर्गणा), भाव कर्म (राग द्वेष, मोह), नोकर्म (शरीरभोगादि) में मैं और मेरापने की बुद्धि थी, उस विपरीत बुद्धि (मिथ्यात्त्व) को छोड़े और अनंत ज्ञान, दर्शन सहित मैं हूँ, ऐसा शुद्ध आत्मस्वरूप संशय-विपरीत, अनध्यवसाय दोपरहित अनुभवे सो भेदज्ञान है। इसको सम्यक्-ज्ञान कहते हैं।

दोहा—भेदज्ञान सो मुक्ति है, जुगति करो किस कोय ॥
वस्तु भेद जाने नहीं, मुगति कहा से होय ॥१॥
भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर ॥
धोबी अंतर आतमा, धोवे निजगुण चीर ॥२॥

चौपाई—

भेद-ज्ञान संवर जिन पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो ॥
भेद-ज्ञान जिनके घट नाहीं, ते जड़ जीव बँधे जगमाहीं ॥३॥

दोहा—भेद-ज्ञान थी अलगो रहे, तेनी भवस्थिति दूर।
जनम मरण करसे घणां, रहे संसार भरपूर ॥
भेद-ज्ञान अभ्यास से, टले मिथ्यात्त्व दूर।
समकित सहज आवे सही, वरते आनंद पूर ॥

(७८) प्रश्न—स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद का क्या अर्थ है ?

उत्तर—स्याद् कहे तो कथंचित्—किसी अपेक्षा से। वाद कहे तो कथन करना। जो वचन किसी अपेक्षा से हो और जिसमें दूसरी अपेक्षाएं भी गौण स्वीकार की जावें, वह स्याद्वाद है।

(७९) प्रश्न—स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद का क्या लक्षण है ?

उत्तर—(१) जो व्यवहार और निश्चय दोनों को उचित स्थान पर विधिपूर्वक माने, केवल एक ही पक्ष व्यवहार ही न माने या निश्चय ही न माने।

(२) जो "हां" और "ना" की मर्यादा विधिपूर्वक माने जैसे प्रवृत्ति छोड़ने योग्य है। यह निषेध-मर्यादा है, परन्तु जहां अशुभ प्रवृत्ति होती हो वहां शुभ प्रवृत्ति आदरने योग्य है। आहार, निद्रा छोड़ना चाहिये परन्तु शरीर नहीं चले, असमाधि होती दीखे तो विवेक पूर्वक मर्यादा से आहार, निद्रा आदि का सेवन करे। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहां "हां" और "ना" की मर्यादा जरूरी है। एकांत स्थापना या उत्थापना करने से गम्भीर नुकसान हो जाता है।

(३) जो "ऐसा ही" है यों न माने परन्तु "ऐसा

भी" है माने। जैसे जीव नित्य ही है ऐसा न माने परन्तु जीव नित्य भी द्रव्य की अपेक्षा से है और अनित्य भी मनुष्य तिर्यंच आदि पर्याय (हालत) की अपेक्षा से माने। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में अनंतधर्म, अनंतगुण, अनंतपर्याय हैं, उन सब को विधिपूर्वक स्वीकार करे। "ही" एकांतवचन है और "भी" अनेकांत है।

(४) जो एकान्त ज्ञान से ही या एकांत क्रिया से ही मोक्ष न माने परन्तु ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष होती है, ऐसा माने।

(५) जैसे सूर्य के प्रकाश में सब जाति के प्रकाशित दीपक रत्नादि पदार्थों का तेज समा जाता है, वैसे ही स्याद्वाद में सब नय, अपेक्षा, आशय संगृहीत हो जाते हैं।

(८०) प्रश्न—स्याद्वाद का ज्ञान करने से क्या लाभ होता है?

उत्तर—स्याद्वाद से सत्यस्वरूप प्राप्त होता है। स्याद्वाद से ही मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन का नाश होकर सम्यक् ज्ञान व सम्यक् दर्शन प्रकट होता है। सब अपेक्षाओं को बराबर समझने से अर्थात् स्याद्वाद का ज्ञान होने से समभाव प्रकट होता है और राग-द्वेष, मोह, वैर विरोध आदि का नाश होता है। जहां रागद्वेष खींचताण, मतपक्ष है वहां स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद (सत्य

स्वरूप) नहीं है, परन्तु एकांतवाद अर्थात मिथ्यात्व है। इसलिये हे चेतन, तू हमेशा अपेक्षावाद (स्याद्वाद) को समझकर राग, द्वेष, वैर, विरोध, कलह को छोड़कर प्रशांत भावी बन।

(८१) प्रश्न—समकित (आत्मबोध) रूपी बीज कैसी भूमि मे फूलता फलता है ?

उत्तर—जिन जीवों की जीवनभूमि (१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) तीव्र विषयवासना, (५) तृष्णा, (६) अतिक्रोध, (७) अहंकार, (८) कपट, (९) लोभ, (१०) कुसंप, (११) परनिंदा, (१२) स्वप्रशंसा, (१३) कदाग्रह और (१४) अविवेक, ये अनीति के दोष रूपी कंकर कांटे, खड्डे दूर करके समभूमि बनी है और जिसमें मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ, इन चार शुभ भावनाओं का पानी सिंचन हुआ है, ऐसी भूमि में समकित रूपी बीज फूलता फलता है।

(८२) प्रश्न—मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ भावना का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मोक्ष का बीज समकित है और समकित का बीज चार भावना है। मैत्री आदि चार गुण प्रगट होने के बाद समकित गुण प्रगट होता है, इसलिये इन चार भाव-

नाओं को हमेशा शुभ व शुद्ध साधन रूप चिंतवन करना परम आवश्यक है।

जीव हमेशा भावना अर्थात् विचार तो करता ही है, परन्तु अशुभ भावना ज़्यादा रहती है, इसलिये भावना का स्वरूप समझकर शुद्ध भावना का चिंतवन करना चाहिये। इन चार भावना के हरेक के चार चार भेद हैं।

१ मैत्री भावना-(१) मोहमैत्री--स्त्री, पुत्र, धन भोगादि की बाह्य आनन्द की अपेक्षा से प्रीति, (२) शुभमैत्री-उपकारी सज्जन आदि के प्रति प्रीति भक्ति तथा उत्तम काम में ऐक्य, (३) शुद्ध साधन मैत्री—देव, गुरु, धर्म व ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रति भक्ति व मैत्री, (४) शुभ मैत्री--अनंत ज्ञानादि निज गुणों से मैत्री--एकता का अनुभव। "हे चेतन! तू ही तेरा मित्र है, क्यों अन्य में राग द्वेष धरता है? (श्री आचारांग सूत्र)"

(२) प्रमोद भावना-(१) मोहजन्य हर्ष--स्वपर को भोगोपभोग की प्राप्ति में आनन्द, (२) शुभ हर्ष--दान, पुण्य, सेवाभाव, नैतिक गुण व सुविद्या, स्व-परको प्राप्त होने में हर्ष, (३) शुद्धसाधन हर्ष—सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का स्व-परको प्राप्ति में आनन्द, (४) शुद्धानन्द--आत्मिक सुख, अविकारी, अतींद्रिय, निर्विकल्प निज-सुख में लीन होना।

(३) करुणा भावना—(१) मोहजन्य करुणा—स्व-परको भोगोपभोग, धन, वैभव, प्रशंसा आदि प्राप्ति न होने से दुखी होना, (२) शुभ करुणा—शारीरिक व मानसिक पीड़ा से दुखी देख कर करुणा भावना, (३) शुद्ध साधन करुणा—अज्ञान, मिथ्यात्व, विराग, कषाय से स्व-परको सदा अनन्त-दुखी होना जान ये दोष त्याग करके सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र विषयसंयम व समभाव गुण प्रकट करना तथा प्रकट करवाना, (४) शुद्ध करुणा—स्व स्वभाव (आत्मस्वरूप) में लीन रहना । ज्ञानादि निजगुण की मलीनता ही दुःखहेतु जान आत्मगुणों की शुद्धि करना ।

(४) माध्यस्थ भावना—(१) मोहजन्य सम-भाव—लज्जा, भय, लोभ, स्वार्थ या अज्ञानवश शांति धरना, (२) शुभ समभाव—ऐक्य, सहन-शीलता, गुणानुराग, गंभीरता के गुण तथा कलह, कुसंप, वैमनस्य विरोध के नुकसान विचार कर समभाव धरना, (३) शुद्ध साधन समभाव—रागद्वेष करने से भाव हिंसा होती है । मैं शब्द, रूप, गंध रस, स्पर्श, मन, वचन, काया, कषाय, कर्म रहित हूँ । मैं अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्तिस्वरूप हूं । ऐसी भावना विचार कर समभाव धरना । (४) शुद्ध समभाव—परम समरसी भाव ही मेरा निज

गुण है। मैं क्यों विकार पाऊँ? क्यों राग द्वेष लाऊँ? ऐसा विचार करके निज स्वरूप में लीन होवे।

चारों भावना में मोहजन्य पहिला भेद इस लोक तथा परलोक में दुःखदायी है व पाप बंध हेतु है और दूसरा शुभभेद इस लोक तथा परलोक में बाह्य सुखदायी व पुण्य प्राप्ति का कारण है। तीसरा शुद्ध साधन नामक भेद इस लोक तथा परलोक में बाह्य तथा अभ्यंतर दोनों मे सुखदाई व बहुत कर्म क्षय का कारण है। और शुद्ध नामक चौथा भेद इस लोक तथा परलोक में परम सुखदाई व मोक्षप्राप्ति का प्रधान कारण है।

(८३) प्रश्न—समकित (आत्मबोध) गुण सर्वोत्कृष्ट क्यों कहाता है?

उत्तर—जैसे रोगी बहुत काल से दुखी है, जगत् में रोग से मुक्त होने के उपाय हैं, परंतु क्या रोग है, कौनसा उपाय अकसीर है; ऐसे बोध के बिना वह सदा दुखी रहता है, इसी प्रकार यह आत्मा, जड़संगी (पुद्गलसंगी) बन अनादि काल से दुखी होरहा है, इन दुःखों से छूटने का मार्ग बताना ज्ञान का काम है। मार्ग का निश्चय करना समकित गुण का काम है और मार्ग पर चलना चारित्र का काम है। मार्ग बता भी दिया परंतु निश्चय नहीं है तो उस पर बराबर अंततक नहीं चल सकते।

चलना भी शुरू किया परंतु निश्चय किये बिना रास्ते में उलटे मार्ग में जा सकते हैं। इसलिये सुमार्ग निश्चय अर्थात् समकित गुण सर्वोत्कृष्ट है और इसे प्रगट करने का उत्कृष्ट पुरुषार्थ करना चाहिये।

काव्य विभाग

अब सम्यक्त्व-उत्पत्ति का अंतरंग कारण आत्मा का शुद्ध परिणाम है सो कहते हैः—

दोहा—अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय।
मिथ्या गंठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय ॥१॥

अधःकरण (आत्मा के शुद्ध परिणाम), अपूर्व-करण (पूर्व न हुए ऐसे शद्ध-परिणाम शुद्धस्वरूप का अनुभव) और अनिवृत्तिकरण (नहीं पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम), इन तीन करण रूप जो कोई परिणाम करे उसकी मिथ्यात्वरूप गांठ छिन्नभिन्न होकर समकित (आत्मानुभव) गुण प्रगट होता है।

२. अब सम्यक्त्व के जो आठ स्वरूप हैं उनके नाम कहते हैं—

दोहा—समकित उत्पति चिह्न गुण, भूषण दोष विनाश।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणें विवरण तास॥२॥

अर्थ—आठ प्रकार से समकित का विवेचन शास्त्रकारों ने किया है सो आठ द्वार के नाम कहते हैं—

१—समकित, २—उत्पत्ति, ३—चिह्न, ४—गुण, ५—भूषण, ६—दोष, ७—नाश और ८ अतिचार।

३. अब सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं:—

चौपाई—सत्य प्रतीति अवस्था जाकी।
दिन दिन रीति गहे समता की।
छिन छिन करे सत्य को साको।
समकित नाम कहावे ताको॥३॥

अर्थ—जिसको आत्मा के सत्य स्वरूप की प्रतीति उपजती है और प्रति दिन समता गुण बढ़ता जाता है और प्रतिक्षण सत्य कहे तो शुद्ध सत्यानुभव का प्रकाश रहता है अर्थात् सहानुभूति कायम रहती है, उसे समकित कहते हैं।

४. अब सम्यक्त्व की उत्पत्ति कहते हैं:—

दोहा—कै तो सहज स्वभाव के, उपदेशे गुरु कोय।
चहुंगति सैनी जीव को, सम्यक् दर्शन होय॥४॥

अर्थ—किसी को तो सहज स्वभाव ही से सम्यक्त्व उपजता है और किसी को गुरु उपदेश से सम्यक्त्व उपजता है। ऐसे चारों गति में के मन है जिसको ऐसे (संज्ञी) जीव को सम्यग्दर्शन होता है।

५. अब सम्यक्त्व के चिह्न कहते हैं:—

दोहा—आपा परिचै निज विषै, उपजै नहि संदेह ।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥ ५ ॥

अर्थ—अपने में आत्म अनुभव करने में संशय (अस्थिरता) नहीं उपजती और स्वाभाविक कपट से रहित (सरल) वैराग्य अवस्था हो, ये समकित के चिह्न हैं ।

६. अब सम्यक्त्व के गुण कहते हैं:—

दोहा—करुणा वत्सल सुजनता, आतमनिंदा पाठ ।
समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥ ६ ॥

अर्थ—करुणा, वात्सल्य, सज्जनता, स्वलघुता, साम्य भाव, भक्ति, उदासीनता और धर्म प्रेम ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं ।

७. अब सम्यक्त्व के पांच भूषण कहते हैं:—

दोहा—चित्त प्रभावना, भावयुत, हेय उपादेय वाणि ।
धीरज हर्ष प्रवीणता, भूषण पंच वखाणि ॥ ७ ॥

अर्थ—ज्ञान की वृद्धि करना, ज्ञानवान होकर हेय और उपादेय उपदेश देना, धीरज धरना, संतोषी रहना और तत्त्व में प्रवीण होना; ये सम्यक्त्व के पांच भूषण हैं ।

आत्मजागृति पुस्तक-माला पुष्प ७

समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

भाग २

प्रकाशक—

आत्म-जागृति कार्य्यालय

बगड़ी (मारवाड़)

वाया सोजतरोड

मुद्रक—

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर.

कृतज्ञता ज्ञापन

"समकित प्रश्नोत्तर" के इस संग्रह में श्री आचारांग सूत्र, श्री उत्तराध्ययन सूत्र, श्री भगवती सूत्र, श्री ठाणांग सूत्र आदि सूत्रों के अनुवाद व पुरुषार्थसिद्ध उपाय, समयसार, पंचास्तिकाय, ब्रह्मविलास, प्रवचनसार पुस्तकों से सहायता ली गई है। इसके लिए ग्रन्थ रचयिता, अनुवादक और इसके प्रचार में सहायता देने वाले सभी महानुभावों के प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इसमें कोई अशुद्धि हो उसके लिए क्षमा करें और प्रकाशक को सूचना करने की कृपा करें।

प्रकाशक,

श्री विमलनाथाय नमः

सम्यक्त्व-(समदर्शन) *

[ले०—समकित प्रेमी संशोधक उपाध्यायजी श्री आत्मारामजी महाराज]

आत्मा में अनन्त गुण हैं। उन सब में समकित (आत्म-दर्शन) गुण श्रेष्ठ है, क्योंकि इस गुण के प्रकट होने पर अन्य सभी गुण विशुद्ध होते हैं। इसके प्रकट हुवे विना सब गुण मलीन रहते हैं।

दर्शन—यह जीवन की अनुभव भूमिका है। इस विषय के द्वारा रस लिया जाता है। दर्शन का सामान्य अर्थ आंख से देखना है। यहां पर सामान्य अर्थ नहीं लेना चाहिये। यहां तो इसका अर्थ अनुभव या साक्षात्कार लगाना चाहिये। दर्शन-शास्त्र शाक्षात्कार का शास्त्र है। जितने अंश से अनुभव सत्य का अर्थात् शुद्ध आत्मा का होता है उतने अंश से दर्शन शुद्ध हो सक्ता है। शास्त्र में—"परमथ्थ संथवोवा"—परम अर्थात् प्रधान, अर्थ अर्थात् तत्व। प्रधान तत्व जो आत्मा है उसका संस्तव-अनुभव करना समकित का चिह्न बताया है।

दर्शन का फल त्याग है। जैसे गेहूं में कंकर देखकर

---

* पं० सुखलालजी का दर्शन संबन्धी लेख त्यागभूमि में का व श्रीमद् रायचन्दजी के पारमार्थिक वचनामृतों में से कुछ विभाग लिया है इसलिये उक्त दोनों महानुभावों के ऋणी हैं।

शीघ्र निकाल देते हैं, मकान में विषैला प्राणी पाकर उसे शीघ्र दूर करते हैं वैसे ही जहां सत्य दर्शन (समकित) प्रकट होता है वहां सब दोष दूर करने की तीव्र रुचि होती है और यहां जीव थोड़े ही समय में पूर्ण शुद्ध (सिद्ध) होजाता है।

ज्ञानपूर्वक शान्त-रस की प्राप्ति दर्शन-शुद्धि से होती है। जो मनुष्य बंधन को यथार्थ-रूप में जानता है और उसे दूर करना ही स्वतन्त्रता (सुख) का मूल है ऐसी मान्यता रखता है तथा पुरुषार्थ के द्वारा बंधन से मुक्त होता है वह सुखी होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति शरीरादि स्थूल बंधन और काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सूक्ष्म बंधन से बंधी हुई आत्मा का निश्चय नय (सत्य-स्वरूप विचार) सब बंधनों से भिन्न, ज्ञान-स्वरूप जानता है, अनुभव करता है, निश्चय करता है और मोक्ष मार्ग का आचरण करता है वही मुक्त हो सकता है। यानी मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र सभी परम आवश्यक है।

"श्रद्धा परम दुल्लहा"—श्रद्धा (सत्य-निश्चय-समकित) परम दुर्लभ है, ऐसा जो शास्त्र वचन है वह सत्य है। कारण यह है कि अनादि काल से इस जीव को विषय (भोग), कषाय (क्रोधादि) से गाढ़ परिचय होने से यह अपने निज गुणों को भूल गया है। जैसे कोई राजपुत्र बचपन ही से भीलों के पुत्रों में रहने से अपने आपको भीलपुत्र समझता है और जब कोई सत्पुरुष उसे अपना आपा सुझाता है तब अपने राज्यकार्य को सम्पादन करने के लिए तत्पर होजाता है, ठीक यही हालत जीव की है। और इस जीव ने कभी धर्म पालन किया भी हो तो भी आत्म-धर्म की आराधना न होने

से तत्व-रुचि बहुत कम होती है। विशेषतः इस समय समकित के आराधक जीवों का जन्म प्रायः न्यून है, इसलिये आजकल यथार्थ तत्व के प्रति जीवों की रुचि ही मंद हो रही है।

अपितु—इस काल में समकित धर्म का आराधन हो सकता है परंतु यह उदय-भाव नहीं है कि जिससे आपसे आप प्रेरणा हो। भोगादि क्रिया उदय कर्म से होती है। बालक जन्म से ही दूध पीने लग जाता है, नवयुवक विना शिक्षा दिये भी विषयों के प्रति उत्तेजित होता है। ये क्रियाएँ उदय-जनित पूर्व-संस्कार से होती हैं। आत्म-ज्ञान, तत्व-ज्ञान, समकित-धर्म क्षयोपशम जनित गुण है। जो पुरुषार्थ करे, सद्-गुरु उपदेश या सत्शास्त्र वाञ्चन का रहस्य समझे उसे ही परम सत्य प्राप्त हो सक्ता है। आज अनेक जीव असद्गुरु आदि में सत्यपने की बुद्धि करके वहीं रुक जाते हैं। इसका कारण सद्विवेक बुद्धि का कम होना है। कई वार सत्समागम होता है तो वल वीर्य आदि की इतनी शिथिलता होती है कि चिन्तामणि रत्न के सन्मुख आने पर भी उसे नहीं लेसकते। कई जीव शुष्क ज्ञान प्रधान है तो कई जीव शुष्क क्रिया प्रधान। जहां ज्ञान और क्रिया दोनों का योग होता है वहीं सत्य की प्राप्ति होती है।

शुष्क-ज्ञान—शास्त्र में ज्ञान और क्रिया—विचार और आचार—से सुख की प्राप्ति बताई गई है। जिस स्थान में केवल क्रिया का मोह होता है वहां ज्ञान प्रकट करने की शिक्षा देने का कहा गया है क्योंकि ज्ञान प्राप्त नहीं करोगे तो सब क्रिया व्यर्थ जावेगी। इन शब्दों को ग्रहण करके शुष्क-ज्ञानी जीव क्रियारहित होकर अपने आपको चारित्रहीन कर देते

हैं। वे ज्ञानी नहीं किन्तु अज्ञानी ही हैं। ज्ञान का फल ही चारित्र है। जहां शुद्ध ज्ञान है वहां शुद्ध चारित्र अवश्य होता है।

शुष्क-क्रिया—कई जीव क्रिया तो करते हैं परंतु तत्वबोध में पिछड़े हुए रहते हैं। वे शास्त्र में शुष्क ज्ञान को सुधारने के लिये दी हुई शिक्षा 'बिना क्रिया के ज्ञान, चंदन के भार को उठाने वाले गधे के समान है' इत्यादि वचन पढ़कर अपने आपको ज्ञानवृद्धि में आलसी कर देते हैं। वे भी सत्य को नहीं पहुंच सके। उत्तम जीवों को ज्ञान और क्रिया दोनो गुणों का धारण करके परम सत्य-शुद्ध आत्मस्वरूप प्रकट करना चाहिये।

जो जीव शुष्क क्रिया प्रधानपने में मोक्ष मार्ग की कल्पना करते हैं उन जीवों को तथा रूप के उपदेश का पोषण भी रहता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये चार प्रकार के मोक्षमार्ग कहे गये हैं तथापि पहिले के दो पद (ज्ञान और दर्शन) तो उन्हें प्रायः विस्मरण से होते हैं। चारित्र शब्द का अर्थ वे वेष और बाह्य वृत्तिमात्र ही को समझते हैं। 'तप' का अर्थ केवल उपवासादि व्रत को करना, वह बाह्य संज्ञा से समझने तुल्य होता है। और कभी ज्ञान, दर्शन का कुछ कथन करना पड़े तो स्थूल विषय के विवेचन को ज्ञान, उसकी प्रतीति को दर्शन और कहनेवाले के वचन की प्रतीति में समकित समझते हैं। लकीर के फ़कीर बननेवाले नय, प्रमाण, तर्क, न्याय, तुलना और विवेक बुद्धि से आशय को नहीं समझने के कारण शुष्क क्रियावान् जीव हैं। जो जीव शुष्क अध्यात्मी अर्थात् शुष्क ज्ञानी हैं वे बाह्य क्रिया (पांच समिति आदि) और शुद्ध व्यवहार (ध्यानादि) के उठाने (उत्थापन) में मोक्ष मार्ग समझते हैं। वे जीव शास्त्रों के वचन को पूरा

नहीं समझते हैं और हृदय में विपरीत अर्थ जमा लेते हैं। शास्त्र में क्रिया का निषेध उच्च गुण-स्थान-वर्ती जीवों के लिये कहा गया है। (अर्थात् वे स्वाभाविकता से ही पूर्ण क्रियावान् होजाते हैं, अतः उनको कल्पातीत कहा गया है) वह प्रमाद दशा के लिए नहीं है। वह है अप्रमत्त दशा के लिए, जब क्रिया की ज़रूरत ही नहीं रहती। इन भावों को यदि प्रमाद दशा में पालन किया जावे तो क्रिया-राहित की क्या दशा हो? पक्के तैराके को अवलंबन (सहारे) की ज़रूरत नहीं है परंतु अल्प अनुभव वाला यदि समुद्र में कूदे तो विना साधन के प्राण नाश करता है। इसी प्रकार प्रमाद दशा में आत्मरक्षा के लिए जो अवलंवन वताए गए हैं उन्हें स्वीकार नहीं करने वाला पतित होजाता है।

व्यवहार के तीन भेद हैं। एक शुद्ध व्यवहार, दूसरा शुभ व्यवहार और तीसरा साधन व्यवहार।

जो व्यवहार शुद्धता की पूर्णता को प्रकट करता है वह श्रेष्ठ है। उसे शुद्ध व्यवहार कहते हैं। वह आदर करने योग्य है। इसका अवश्य आदर करना चाहिये, यह निश्चय रत्नत्रय है।

दूसरा शुभ व्यवहार वह है जो यथार्थ वस्तु स्वरूप के बोध और निश्चय से रहित है वहांतक पुण्य प्राप्ति का कारण है। जव शुभ में उच्च भावना प्रकट होती है तव वह शुद्ध का साधक होजाता है, यह व्यवहार रत्नत्रय है।

तीसरा व्यवहार साधन व्यवहार है। जैसे-भेष, उपकरण, वाह्य समाचारी आदि जिस देश काल में जो हितकर हो उसका उपदेश प्रधान आचार्यादि देते हैं। यही साधन व्यवहार है। यह व्यवहार जहांतक इष्ट की सिद्धिशुद्ध और शुभ

की भावना करें, वहाँ तक हितकारी है। देश काल के पलटने पर तीसरा साधन व्यवहार पलटना पड़ता है। बालजीव साधन व्यवहार में सर्वस्व की बुद्धि कर बैठते हैं। धर्मक्रिया की विधि एक ध्येय होने से सदा एकसी रहती है किन्तु वेश उपकरण आदि सदा एक से नहीं होते। अपितु, उद्देश्य-साध्य नहीं पलटता परंतु साधन पलटते रहते हैं। जैसे पहिले और अन्तिम भगवान् के काल में मुनि लोग सफेद वस्त्र ही काम में ले सके हैं जब कि अन्य बा(ईस) भगवान् के समय में किसी भी रंग की मनाई नहीं। इस बात से यह सिद्ध होता है कि राग, द्वेष, विषय, कषाय पर विजय करना (साध्य) सब प्रभुओं के काल में समान है परन्तु बाह्य साधन पलटते रहते हैं।

भिन्न २ सम्प्रदायों के आचार्यों ने उपकार बुद्धि से ऐसी कुछ नवीनताएँ की हैं। वनंद्ध परस्पर शिष्य उन साधनों में सर्वस्व की बुद्धि करके कदाग्रह करते हैं तथा समकित और मिथ्यात्व की कल्पना इन्हीं साधनों से करते हैं। यह भ्रान की बातें हैं। शास्त्रकारों ने साधन में ममत्व न करने की व शुभ में ही शुद्ध की बुद्धि न करने की शिक्षा देते हुये इन दोषों को छुड़ाने को और शुद्ध व्यवहार काम में लाने के लिये फरमाया है कि मेरु पर्वत के तुल्य धर्मोपकरण व्यवहार में आये तो भी कुछ नहीं हुआ। इस वचन को ग्रहण करके शुष्क-ज्ञानी क्रिया का उच्छेद करते हैं। यह उचित नहीं है। इसी प्रकार क्रिया में रुचि रखनेवालों का ऐसे साधनों में आग्रह और कलह करना अनुचित है। दोनों ही दृष्टि वाले वस्तु स्वरूप को बराबर समझकर यथार्थ विचार (ज्ञान) और आचार (क्रिया) वाले बनें तो सत्य (समकित) प्रकट हो सकता है।

(वर्तलिखितम्)

समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर
अर्थात्
मोक्ष की कुञ्जी

भाग २

विषयानुक्रम

विषयों के नाम प्रश्न—पृष्ठ

विषयों के नाम प्रश्न—पृष्ठ

विषयों के नाम | प्रश्न—पृष्ठ

संग्रहकर्त्ता के दो बोल

श्री समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर अर्थात् मोक्ष की कुंजी भाग पहिला तय्यार करने में प्रधान सहाय्य 'श्री पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' ज्ञानार्णव और समयसार छन्द की लीगई है। और भाग दूसरा तय्यार करने में 'श्री आचारांग सूत्र' 'दर्शन पाहुड़', 'समयसार छन्द' 'ब्रह्मविलास' व 'प्रकीर्ण लेख' आदि की प्रधान सहाय्य ली है। और गौण सहाय्य तो अनेक शास्त्र व ग्रन्थों की है। मैं उन सब के मूलकर्ता, अर्थकर्ता, व प्रकाशकों का पूर्ण आभारी हूं। और इन छोटीसी पुस्तकों में जो कोई उत्तमता हो वह सुयश इन्हीं उपकारकों को देता हूं। अपूर्णता संग्रहकर्ता की अल्पज्ञता का कारण है। उसके लिये पश्चात्ताप व मिथ्या दुष्कृत लेता हूं। और पूर्णता प्रकट होने की भावना करता हूं।

यह पुस्तक जैन व जैनेतर सब को उपयोगी होवेगी ऐसी पूर्ण आशा है। कारण इस में केवल सत्य के प्रति दृष्टि रक्खी गई है। पक्षपात छोड़कर माध्यस्थ दृष्टि से मन्द प्रयत्न किया है। तथापि सदोषता हो वह प्रकाशक को सूचित करें। संग्रहकर्ता की मातृभाषा गुजराती है इसलिये भाषा की त्रुटि के प्रति दृष्टि नहीं देते, कृपया भावों प्रति दृष्टि देने की नम्र प्रार्थना है।

सर्व सज्जनों को यह पुस्तक हमेशां स्वाध्याय में (नित्य-नियम में, प्रार्थना में) रखने योग्य है। ऐसा इसको पढ़कर आत्मार्थी महात्माओं ने फरमाया है, विषयानुक्रमणिका ही सारी पुस्तक का साररूप है उसे हमेशा अवश्य वांचन मनन करें।

संग्रहकर्ता—

समकित प्रेमी,

निवेदन
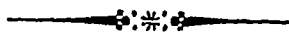
जहां सूर्य है वहां प्रकाश है, जहां साहित्य है वहां अज्ञानान्धकार का नाश है। आज संसार में जो काम हवाई-जहाजें, मशीनगनें, कलें और कारखाने नहीं करते वह छापेखाने में छपे हुए कागज़ के टुकड़े कर सकते हैं। सब चीज़ों का सदुपयोग और दुरुपयोग है। यह नियम साहित्य पर भी लागू है। अगर साहित्य सात्विक है तो लोगों के विचारों में आदर्श परिवर्तन ला सकता है। अगर विकारी है तो जनता को पतन के गहरे खड्डे में गिरा सकता है। कार्यालय ने भी निश्चय किया है कि देश में सात्विक साहित्य का खूब प्रचार हो और लोकोपयोगी एवं तात्विक साहित्य कम क़ीमत में जनता के हाथ में पहुंचे। निश्चय ही नहीं किया है, कार्यारम्भ भी कर दिया है। देखिये कार्यालय की प्रकाशित पुस्तकें:—

(१) समकित प्रश्नोत्तर भाग १—२ पृष्टसंख्या लगभग १५० मूल्य ।)

अलग अलग भाग मूल्य दो दो आना।

(२) आत्मजागृति भावना पृष्ठ लगभग १०० मूल्य =)
(३) समकितस्वरूप भावना ,, ,, ४० ,, -)
(४) विद्यार्थी व युवक की भावना ,, ४० ,, -)
(५) बालगीत ,, १६ ,,)॥
(६) भाव अनुपूर्वी ,, ३२ ,, -)

आत्मबोध, काव्यविलास प्रेस में हैं, शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

आशा है भावुक सज्जन इन पुस्तकों को क्रय करके तथा इनकी प्रभावना करके लाभ उठावेंगे।

वीतरागाय नम.

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

भाग २

दोहा

परम निरञ्जन परम गुरु, परम पुरुष परधान ।
वन्दूँ परम समाधिगत, भयभंजन भगवान ॥
जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु सीख मन आन ।
कछु सम्यक्त्व स्वरूप को, निर्णय कहौं बखान ॥
मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वंदे तद्गुणलब्धये ॥१॥

अर्थ—मोक्षमार्ग के बताने वाले, कर्म-दल रूपी पहाड़ों शुद्ध ध्यान रूपी वज्र से चूर्ण करने वाले, जगत् के सकल

तत्वों को यथार्थ पूर्णरूप से जानने वाले महापुरुष को वैसे ही गुण प्रकट करने के लिये वंदन करता हूँ ।

पूर्व के प्रथम भाग में समकित (आत्म-बोध) सम्बन्धी ८३ प्रश्नोत्तर का संग्रह किया गया है । बाक़ी प्रश्नों का इस दूसरे भाग में संग्रह कर रहे हैं ।

(८४) प्रश्न—भगवान ने पहिले क्या उपदेश दिया कि जिस वाणी से चार तीर्थ की स्थापना हुई ? ऐसा एक गुण कौनसा प्रकट करना कि संसार-भ्रमण मिट जावे ?

उत्तर—आत्म-पदार्थ-विचार । मैं कौन हूँ ? मेरा शुद्ध स्वरूप क्या है ? मैं कहां से आया हूँ ? कहां जाऊंगा ? ये सब वस्तु और लोग दीखते हैं सो कौन हैं ? मेरा क्या कर्तव्य है ? और मैं क्या कर रहा हूँ, इत्यादि स्वभाव विभाव आदि का विचार करना पहिला उपदेश है । इसी विचार से मनुष्य आत्म-वादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी होता है । ऐसे पुरुषों को चार तीर्थों में प्रवेश की छाप—पात्रता—मिलती है ।

इस प्रकार के विचार से हीन आत्मा का कोई

अभ्युदय नहीं हो सकता । वह अपने जीवन को प्रगतिवान नहीं बना सकता । ऐसा मुनि या मनुष्य मनुष्य-स्वरूप होकर भी पशु ही की कोटि में गिना जाता है । पशु के जीवन में और ऐसे सम्यक्-ज्ञान-हीन मनुष्य के जीवन में कोई अन्तर नहीं होता; ऐसा आचार्य महाराज ने कहा है ।

(८५) प्रश्न—आत्मा का उद्धार कौनसा पुरुष कर सकता है ?

उत्तर—जो शुद्ध श्रद्धान समकित की खोज करने वाला है या आत्मा के शुद्ध स्वरूप का जिज्ञासु है, अपने आंतरिक गमनागमन भावों का विचार करता है, आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए भगीरथ प्रयत्न करता है वही अपना उद्धार कर सकता है, यह बात निःसन्देह सच्ची जानो । ऐसे ही विचारवान् मनुष्य को सत्य मोक्षमार्ग मिल सकता है और उसके द्वारा वह इच्छित स्थान को प्राप्त कर सकता है । वह जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध बन सकता है । निर्ग्रन्थ तीर्थंकर ऐसे आत्मिक विचार करने वाले पुरुष को ही आत्मवादी-आत्मज्ञ कहते हैं ।

(८६) प्रश्न—चार-वाद का क्रम किस अपेक्षा से नियत किया गया है ?

उत्तर—प्रथम आत्मवादी है। कारण आत्मा ही सबसे श्रेष्ठ तत्व है और वह स्वयं होने से उसका जानना परम आवश्यक है। यदि आत्मा हो तो अन्य तीनों वाद की सफलता है। यदि आत्मा ही नहीं है तो अन्य पदार्थ निष्फल होते हैं। आत्मा को मानने वाला आस्तिक है। जो जीव को ही नहीं मानते उन्हें नास्तिक कहते हैं। वे पुण्य, पाप, क्रिया, कर्म कुछ नहीं मानते हैं। मूल मानने पर शाखा, डाली, पत्ते, फूल, फल सब माने जा सकते हैं। इसलिए पहिले आत्मा को जानना जरूरी है।

दूसरा लोकवाद है, कारण निर्ग्रंथ मत से जो आत्मा (आत्मवादी) अपने स्वरूप को जान सकते हैं वेही लोकवादी अर्थात् जगत् के सत्य स्वरूप को जानने वाले होते हैं क्योंकि जो अपने आन्तरिक स्वरूप को नहीं जान सकता वह बाह्य स्वरूप को भी यथार्थ नहीं जान सकता। यह अन्तर बाह्य ज्ञान परस्पर सापेक्ष है। जिसने आत्मा को जान लिया उसने सब को जानलिया।

" जे एगं जाणई। ते सव्वं जाणई। "

इस प्रकार सम्यक् ज्ञानवान् ही लोकवादी होता है। वही कर्मवादी होता है अर्थात् कर्मों का—जगत् के कारण कार्य-भाव का ज्ञाता हो सकता है। इसी तरह कर्म-वादी बन कर फिर क्रिया-वादी अर्थात् सम्यक् और असम्यक् प्रवृत्ति (कर्तव्याकर्तव्य) का स्वरूप और रहस्य समझने वाला बन सकता है। क्रिया-वादी आत्मा आत्महित प्रवृत्ति का आचरण कर अंत में कर्म से मुक्त होकर अमरत्व प्राप्त कर सकता है। प्रभु महावीर उपदिष्ट मोक्षमार्ग का यही यथार्थ क्रम है।

(८७) प्रश्न—श्री आचारंग सूत्र का पहिला अध्ययन "शस्त्रपरिज्ञा" नाम का है। और उसका पहिला उद्देश "आत्मतत्त्व विचार" नाम का है। उसमें कहा गया है कि "मैं कौन हूं? कहां से आया? मेरा क्या स्वरूप है?" जो इनको समझे उसे आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी, क्रियावादी कहते हैं और चारवाद के ज्ञाता ही समकित प्राप्त कर सकते हैं। तो चारवाद का क्या स्वरूप है?

उत्तर—चारवाद का स्वरूप, १ आत्मवाद। वाद यानि स्वरूप-कथन करना। आत्मा के यथार्थ स्वरूप के कथन करने को वाद कहते हैं। द्रव्य, गुण, पर्याय,

व्यवहार, निश्चय, नय, प्रमाण द्वारा आत्मा के सामान्य और विशेष धर्मों का यथार्थ स्वरूप जानकर आत्मा के निश्चय करने वाले को आत्मवादी कहते हैं।

२ लोकवादी—द्रव्यलोक, षट्द्रव्य, क्षेत्रलोक, चौदराजु-लोक, काल, लोक, अगुरु लघु पर्याय जो हर समय कम ज्यादा होवे; भावलोक, गुणपर्याय, अपनी आत्मा के गुण; अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत अतीन्द्रिय निराकुल आत्मिक सुख और अनंत आत्मवीर्य है। इन गुणों का शुद्ध परिणमन शुद्ध पर्याय है और इन गुणों को मलीन कर के परिणमन होना अशुद्ध पर्याय है, जैसे—मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, इन्द्रियजन्य सुख दुःख, बालवीर्य (कुपुरुषार्थ)। अशुद्धपर्याय अशुद्ध लोक है। शुद्धपर्याय शुद्ध लोक है।

दोहा—यह जग वासी यह जगत, या में तोहिन काज।
तेरे घट में जो वसे, ता में तेरो राज॥

३ कर्मवाद। कर्म का स्वरूप–द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म के स्वरूप को जानना। द्रव्यकर्म-आठ कर्मों का समूह जो आत्म प्रदेश को चिपका हुआ है। भावकर्म-वह जिसके द्वारा आठ कर्मों की वर्गणाएँ बँधती हैं सो राग द्वेष मोह के परिणाम हैं।

नौ कर्म—कर्म के फल, शरीर, इन्द्रियें, इन्द्रियों के भोग, खान पान, वस्त्र, पात्र, उपाधि, धन, वैभव, स्त्री, पुत्र, परिवार (चेला, चेली, भक्त लोग) निंदा, स्तुति, दुःख और सुख के संयोगमात्र नौ कर्म हैं।

जो कर्म का स्वरूप पूरा समझ कर कर्मों से मुक्त होना ही अपना शुद्ध धर्म माने वह कर्मवादी है।

४ क्रियावादी—कर्मों का बंधन अशुद्ध क्रिया से होता है और कर्मों की मुक्ति—कर्मों का क्षय—शुद्ध क्रिया से; ऐसा क्रिया का विस्तार-पूर्वक ज्ञान बराबर करना। क्रिया अर्थात् पुरुषार्थ—वीर्य। जहां तक कुपुरुषार्थ है आत्म-धर्म छोड़ कर परद्रव्य में शुभ या अशुभ पुरुषार्थ करने से शुभ और अशुभ बंधन होते हैं जिन्हें पुण्यप्रकृति तथा पापप्रकृति कहते हैं। परद्रव्य का त्याग कर स्वद्रव्य में स्थिर होना सुपुरुषार्थ। पंडितवीर्य (उत्तम पुरुषार्थ) शुद्ध क्रिया है। वह निर्जरा का प्रधान कारण है। क्रिया-कर्मबंधन २७ प्रकार से होता है॥ वर्तमान, भूत और भविष्य काल की अपेक्षा से मन, वचन, काया से करना, कराना, अनुमोदन करना, इस प्रकार क्रिया के स्वरूप का ज्ञाता होता है।

जो आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानता है वह लोक

के भी स्वरूप को जान सकता है अन्यथा स्वलोक परलोक के ज्ञान के अभाव से परलोक में स्वपना मान बैठता है, इसलिये आत्मस्वरूप का ज्ञाता ही परलोक का ज्ञाता कहा गया है। छः काया के लोक को भी षट्काय लोक कहते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय से चतुर्गति में परिभ्रमण करना पड़ता है। इसलिये इसे भी कषाय लोक कहते हैं। इसलिये परलोक (कषायादि) छोड़ना चाहिये। जो लोक के स्वरूप का ज्ञाता है वही ऐसा समझता है कि आत्मलोक में भटकता है उसका मूल कारण कर्म है। ऐसा जान कर कर्मवादी बन सकता है। और कर्मों का बंधन अशुद्ध क्रिया से होता है। यह बोध कर्मवादी को ही होता है। इसलिये कर्मवादी ही क्रियावादी हो सकता है, ऐसा कहा गया है। कर्म का बंधन-मोक्ष का आधार क्रिया पर है। इसलिये अंत में क्रिया-वाद लिया गया है।

"जो एगं जाणई, सो सव्वं जाणई।
जो सव्वं जाणई, सो एगं जाणई" ॥

जो एक आत्मस्वरूप को जानता है वह सब को जानता है और जो सबको यथार्थ जानता है, निज आत्म-द्रव्य से सकल परद्रव्यों को भिन्न जानता है वही आत्म

स्वरूप को जानता है, इसलिये आत्म-स्वरूप का ज्ञान करना परम आवश्यक है और श्री आचारांग में आदि-वचन में आत्म-पदार्थ विचार, आत्मस्वरूप का कथन इसी लिये फरमाया गया है।

महावीर परमात्मा ने बारह अंग—द्वादशांगी की प्ररूपणा की है। उसमें पहिला श्री आचारांग है। उसमें आदि वचन 'आत्मस्वरूप को पहिचानो' ऐसा उपदेश दिया गया है, इसी से सिद्ध होता है कि द्वादशांगी का सार 'एक आत्म-स्वरूप' का यथार्थ बोध है। सब ज्ञान आत्मा की मोक्ष के लिये है। मोक्ष आत्मा की सत्य स्थिति जानने से हो सकती है। यदि आत्मा को न जाने तो मोक्ष किसकी करे? इसलिये यह बात पूर्वाचार्य महाराज स्पष्ट फरमाते हैं कि द्वादशांगी का ज्ञान दीपक है। उसके ज्ञान द्वारा आत्मस्वरूप रूपी रत्न का शोधन करना है। आत्मरत्न प्राप्त होने पर सब ज्ञान कृतार्थ होता है।

द्वादशांगी श्रुति सिंधु, मथन करि रतन निकास्यौं।
स्वपर-भेद विज्ञान, शुद्ध चारित्र प्रकास्यौं॥

जिनवाणी महिमा सवैया २३ सा।

राग विरोध कुदेव प्रतीति
विनाश सदा सब लोक प्रवानी,

अर्थ अनेक अभिधेय है एक
चहुं गति, वारण मोख निशानी,
आतम रूप अनूप की प्रापति
कारण रूप जिनेश बखानी,
यातैं नमैं औ बखान करैं मुनि,
सो समयातम थी जिन-वानी ।

भावार्थ—राग, द्वेष और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म में प्रतीति रूप दर्शन-मोह का सर्वथा विनाश करने वाली जिनवाणी है। इसका विस्तार बहुत है। इसमें अनेक विषय का स्वरूप है परन्तु कहने की मुख्य बात एक है। वह आत्म-स्वरूप जो अनुपम है उसकी प्राप्ति करना ही है। यह जिनवाणी चार गति के भ्रमण को रोक कर मोक्ष को प्राप्त कराने वाली है। आत्मस्वरूप की प्राप्ति का कारण (साधन) जिनवाणी है। जैसे दीपक साधन और मणि रत्न शोधना वह साध्य-लक्ष्य है। इसी प्रकार सकल शास्त्र साधन है और आत्म स्वरूप साध्य है इसलिये मुनि (आत्म कल्याणेच्छु) इस जिनवाणी को नमस्कार करते हैं। ऐसी स्वपर समय को कथन करने वाली जिनवाणी है।

चारवाद का ज्ञान सीखने की शिक्षा देते हुए आचार्य महाराज समकित छप्पनी में इस प्रकार फरमाते हैं।

दोहा—आत्म लोग, कर्म क्रिया, शुद्ध वाद के चार ।
चिंतवता समकित लहे, जीव जगत संभार ॥

यह आत्मज्ञान कितने ग्रंथ व शास्त्रों का सार है सो कहते हैं ।

सोरठा—लाख वात की बात, कोटि ग्रन्थ को सार है ।
जो सुख चाहो भ्रात, तो आतम अनुभव करो ॥

(८८) प्रश्न—जिनेश्वर भगवान ने समकित किस को कहा है ?

उत्तर—अंतर उपयोग पूर्वक "भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहीयम् ।" (उत्तराध्ययन २८मां मोक्षमार्ग) भावपूर्वक, भावसहित-द्रव्यभाव पूर्ण सभी अपेक्षा से नवतत्व का ज्ञान करना और श्रद्धा करना सम्यक्त्व है, ऐसा सर्वज्ञ प्रभु ने फरमाया है । आत्मा का अनुभव—स्वानुभूति ही सम्यक्त्व है ।

दोहा—जे दर्शन[1] दर्शन[2] विना, ते दर्शन[3] निरपेक्ष ।
जे दर्शन[4] दर्शन हुए ते दर्शन[5] सापेक्ष ॥

भावार्थ—जिस समकित[1] में आत्मदर्शन[2]—आत्मा का

अनुभव नहीं हुआ है वह मोक्ष की अपेक्षा रहित है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का कारण नहीं है, द्रव्य समकित या व्यवहार समकित है और जिस समकित में आत्मदर्शन-आत्मानुभव होता है वह समकित मोक्षप्राप्ति का कारणभूत है शुद्ध निश्चय समकित है।

(८६)प्रश्न—समकित कोई खास गच्छ, सम्प्रदाय, मन्दिर, स्थानक, मठ या गुरु की होती है या अन्य?

उत्तर—समकित आत्मा का गुण है। समकित की व्याख्या करते सकल शास्त्रकारों ने यथार्थ तत्व श्रद्धा को समकित कहा है।

गाथा—तहियाणंतु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेणं सद्दहन्तस्स, सम्मत्तं तं वियाहियम्॥ (उ० २४)

अर्थ—तथ्य (यथार्थ) स्वरूप जो तत्व हैं उनके स्वरूप को भावपूर्वक निश्चय करने को समकित कहते हैं वह स्वभाव से अथवा उपदेश से प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार समकित की प्राप्ति के दो कारण एक स्वक्षयोपशम (स्वाभाविक योग्यता) विशेष और दूसरा उपदेश है।

आज जा खास गच्छ, सम्प्रदाय या गुरुविशेष की समकित मानी जाती है वह शास्त्र देखते न्याय-सम्पन्न नहीं दीखती। किसी सम्प्रदाय या किसी गुरु ही की समकित नहीं हो सकती इसी कारण आज अन्दर अन्दर धर्मकलह होते हैं। उन्हें छोड़कर तत्वबोध करना चाहिये।

(९०) प्रश्न—आज इतनी गच्छ, सम्प्रदाय, फिरके क्यों होगये ?

उत्तर—प्रायः तत्व का अभ्यास छूट गया। स्याद्वाद अर्थात् व्यवहार, निश्चय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र का अभ्यास न होने से किसी खास देश, काल, संयोगवश थोड़ा क्रिया-भेद हुआ कि उस में आग्रह करके मतभेद कर दिये। फिर परस्पर में द्वेषवृद्धि हुई। पुनः यदि तत्व के अभ्यास की वृद्धि की जावे और व्यवहार निश्चय दोनों ठीक तरह समझे जावें तो सब सम्प्रदाय, गच्छ, मत मतांतरों के भेद दूर होकर परस्पर माध्यस्थ भाव-समभाव का अमृतरस बरसने लगजाय। फिर भी यदि कारणवश कुछ भेद रहें तो वे प्रमोद रूप-गुणानुराग रूप ही रह सकते हैं, द्वेष रूप नहीं।

पूर्व में प्रभु महावीर के ११ गणधर थे। उनके ९ गच्छ में शिष्य समूह अलग अलग बाँटगये। यह प्रमोद-भेद

था। आज अपने भेद प्रायः द्वेषमय हो रहे हैं। उनका सुधार तत्त्व (स्याद्वाद के यथार्थ ज्ञान) प्रचार के द्वारा हो सकता है।

(९१) प्रश्न—शुद्ध समकित धारी को कम से कम कितना ज्ञान होना चाहिये ?

उत्तर—छः द्रव्य, नव तत्व, का नय प्रमाण से हेय (छोड़ने योग्य) उपादेय (आदर करने योग्य) रूप में यथार्थ ज्ञान होना चाहिये।

(९२) प्रश्न—गंठी भेदे विना समकित नहीं होता तो गंठी किसकी है और किस ठिकाने में, किस कर्म में और कितनी दूर रहती है ? गंठी किस कर्म की है और किस उपाय से गंठी भेद होता है ?

उत्तर—गंठी-मिथ्यात्व कर्म के तीव्र बंधन को कहते हैं। यह मिथ्यात्व मोहिनी की उत्कृष्ट ७० (सत्तर) करोड़ा करोड़ सागर की स्थिति है और ६९ (उन्हत्तर) करोड़ा करोड़ से जब कुछ अधिक कर्म क्षय हो जावे और कुछ कम (देश उण) एक करोड़ा करोड़ सागर की स्थिति बाकी रह जावे यहां गंठी है। और यथाप्रवृत्ति करण वाला भवी तक भी यहां तक आसकता है परन्तु

यथाप्रवृत्ति करण (अनित्य और अशरण भावना) से गंठी का भेद नहीं कर सकता परन्तु अपूर्व करण अर्थात् आत्मभावना से गंठी का नाश हो सकता है और अनिवृत्ति करण (शुद्धोपयोग में स्थिरता) में समकित की प्राप्ति होती है।

आयुष्य कर्म छोड़कर बाकी के सातों कर्मों की स्थिति देश उण एक करोड़ा करोड़ सागरोपम रहती है, तब यथाप्रवृत्ति करण प्रकट होता है। यहां पर अनित्य, अशरण भावना से त्याग वैराग्य होता है परन्तु आत्मा के अतीन्द्रिय निराकुल शुद्ध सुख की श्रद्धा, निश्चय तथा अनुभव नहीं होने से जन्म मरण नहीं छूटता है। अब जो कोई उत्तम जीव हो वह अपने परिणाम की शुद्धि उत्तम भावना से करे। उनमें मुख्य भेदभावना, एकत्व भावना और आत्मभावना का वारंवार चिंतवन करे। इस से अपूर्व करण की प्राप्ति होती है। अपूर्व करण अर्थात् पूर्व में नहीं आये हों ऐसे शुद्ध परिणाम

गंठी अर्थात् जीव की अनादि विपरीत बुद्धि, पर-वस्तु (शरीरभोगादि) को स्व (अपनी) मानना। विभावपर्याय (जीव की अशुद्ध अवस्था-४ गतिस्वरूप) में स्वामीपना रखना ही विपरीत बुद्धि है। इसे मिथ्यात्व

रूपी गांठ कहते हैं इसका नाश अपूर्व करण (आत्मस्वरूप के विचार) से करना चाहिये। इन परिणामों की जब विशेष शुद्धि होती है तब अनिवृत्तिकरण प्रकट होता है। इसके द्वारा निश्चय समकित प्राप्त होता है। यही कार्य है। समकित होने से निश्चय ही शीघ्र मोक्ष होती है। जैसे पानी का घड़ा रस्सी सहित गहरे कूए में गिर जाय और रस्सी जब तक हाथ में नहीं आवे तब तक बहुत काल तक पानी नहीं मिल सकता और रस्सी हाथ में आजाने से घड़ा और जल सभी शीघ्र ही मिल सकते हैं वैसे ही एक समकित गुण प्रकट होने से निश्चय ही सब गुण प्रकट होते हैं। मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र भी समकित प्रकट होने से सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हो जाते हैं। आत्मा के सभी दूषित गुणों को शुद्ध करने वाला एक समकित गुण है। जैसे सूर्य के उदय होने से मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, फूल सब प्रकाश पाते हैं, सब अंधकार, भय नष्ट होजाता है वैसे ही समकित गुण प्रकट होने से सब दोष दूर होजाते हैं। जैसे जीव बिना का शरीर "अंधा आगल आरसी, बहरा आगल गावणो" और बिना अंक की बिन्दी व्यर्थ होती है वैसे ही बिना समकित के सारी क्रियाएँ व्यर्थ हैं। आत्मार्थियों को एक समकित प्राप्ति का उत्कृष्ट पुरुषार्थ करना अपना परम कर्तव्य सम-

झना चाहिये । समकित विना की उत्तम क्रियाओं से पुण्य प्राप्त हो सकता है परन्तु मोक्ष प्राप्त न हो सकने के कारण सर्व क्रियाएँ समकित विना व्यर्थ बताई ग हैं, कारण मोक्ष ही सर्वोत्कृष्ट ध्येय है ।

(९३) प्रश्न—समकित के आठ अंग प्रकट किए विना समकित हो सकता है कि नहीं ?

उत्तर—अनेक अंगों के समुदाय से ही वस्तु पूर्ण बनती है । जैसे हाथ, पैर, शिर, छाती आदि अंगों से शरीर बनता है वैसे ही आठ अंगों के गुणों के समूह से समकित वनता है । अंग में जितने अंशों में न्यूनता होती है उतने ही अंशों में उसे हीनांग या विकलांग कहते हैं । अंग का थोड़ा भी दोष ठीक नहीं है । ज्यादा कमी होना तो बड़ी खामी है ।

(९४) प्रश्न—समकित के कितने अंग होते हैं ?

उत्तर—समकित दो प्रकार के होते हैं । एक व्यवहार समकित दूसरा निश्चय समकित । दोनों के आठ आठ अंग हैं ।

(९५) प्रश्न—व्यवहार समकित के आठ अंगों का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—व्यवहार समकित के आठ अंगः—

(१) निःशंकिय—जिन वचन में शंका नहीं करना; भय का प्रसंग आने पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्न-त्रय से नहीं डिगना।

(२) निक्कंखिय—कुज्ञान, कुदर्शन, विषय, कषाय की वांछा नहीं करना। परमत की वांछा नहीं करना।

(३) निव्वितिगिच्छा—प्रतिकूल शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शादि दुःख के निमित्त मिलने पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में ग्लानि नहीं करना। धर्मकार्य में खेद नहीं करना। स्वगुरुता, परलघुता नहीं करना। तत्त्व की अरुचि नहीं करना। किसी की निंदा नहीं करना।

(४) अमूढ़ दिट्ठी—हरेक प्रवृत्ति तथा देव, गुरु, धर्म-शास्त्र में मूढ़ता (अज्ञान) न रखना। यथार्थ ज्ञान करके प्रवृत्ति करना।

(५) उववूह—ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुणों की वृद्धि करना उपवृहन है। किसी स्थान में इसका नाम उप-गूहन भी कहा है। उपगूह अर्थात् ढांकना। अपने गुण और दूसरों के दोषों को प्रकट नहीं करना।

(६) थिरीकरण—स्वपर को ज्ञान, दर्शन, चारित्र में स्थिर करना। उत्तम कार्यों को दृढ़ करना।

(७) वच्छलता—विशेष गुणी के प्रति अतिशय पूज्य भाव, समान गुणी के प्रति गाढ़ मैत्री, अल्पगुणी के प्रति अतिशय हितबुद्धि रख कर सर्व सम्पत्ति सेवा में अर्पण करने को सदा तैयार रहना जैसे गौ अपने बछड़े की रक्षा के लिए सिंह तक का भी सामना करलेती है।

(८) प्रभावना—स्व तथा पर में ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण प्रकट करना प्रभावना है।

व्यवहार समकित के आठ अंग प्रकट करने से बहुत पुण्य की प्राप्ति तथा कुछ निर्जरा होती है और यदि इस में भेद भावना व आत्मविचार का अभ्यास बढ़ाया जावे तो निश्चय समकित प्रकट हो सकता है।

(९६) प्रश्न—निश्चय समकित के आठ अंगों का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—निश्चय समकित के आठ अंग।

(१) निःशंकित—समदृष्टि अपने ज्ञान, श्रद्धा व चारित्र में निशंक हो, अभय हो, कभी किसी निमित्त से

नहीं डिगे । आत्मा के गुणों का स्वानुभव होने से कभी आत्मस्वरूप से चलित न होवे ।

२—निकंखिय—जो कर्म के फल की वांछा न करे और न अन्य वस्तु के धर्मों की ही वांछा करे, कारण वह अपने आत्म-ध्यान में लीन है, उसे दूसरी इच्छा वांछा होती नहीं ।

३—निव्वितिगिच्छा—जो सभी वस्तुओं के धर्मों में ग्लानि नहीं करता । कर्म उदय में खेद नहीं करता, सदा समभाव में रहता ।

४—अमूढ दिट्ठी—जो स्व तथा परद्रव्य के यथार्थ स्वरूप को जानने में मूढ न हो ।

५—उववूह—आत्मा को शुद्ध स्वरूप में लगावे, आत्मा की शक्ति बढ़ावे, अन्य द्रव्यों के सब धर्मों को गोपने वाला हो (गौण करे)

६—थिरीकरण—आत्मा को स्वरूप से डिगते हुए को स्थिर करे ।

७—वच्छलता—जो अपने स्वरूप में विशेष अनुराग रक्खे, ज्ञान, दर्शन व चारित्र को अभेद बुद्धि कर

देखता है जिससे ज्ञानादि की हानि में स्व की भाव-हिंसा जानता है, जिससे उसकी रक्षा में पूर्ण वात्सल्य भावयुक्त है।

८—प्रभावना—प्र=विशेष प्रकार से। भव=उत्पन्न होना। ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि निज गुणों का प्रकट करना प्रभावना है।

समकित के आठ गुणों के अभाव से समकित का अभाव और बहुत कर्मों का बंधन होता है तथा इहलोक परलोक में निरंतर दुःख भोगने पड़ते हैं। निश्चय समकित के आठ अंग प्रकट होने पर शीघ्र मोक्ष होती है, इसलिए इनको प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना परम हितकारी है।

(६७) प्रश्न—समकित भ्रष्ट सो मूल भ्रष्ट है कि उत्तर भ्रष्ट है?

उत्तर—समकित भ्रष्ट सो मूल भ्रष्ट है।

(६८) प्रश्न—समकित मूल मोक्षमार्ग है कि उत्तर

उत्तर—मूल मोक्षमार्ग है।

(६९) प्रश्न—क्या कल्याणकारी (हितकारी) है और क्या अकल्याणकारी (अहितकारी) है इसका निर्णय कराने वाला कौन है?

उत्तर—समकित ।

(१००) प्रश्न—समकित का वैरी कौन है ?

उत्तर—मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत बुद्धि ।

(१०१) प्रश्न-ज्ञान का वैरी कौन है ?

उत्तर—अज्ञान अर्थात् तत्व का अबोध ।

(१०२) प्रश्न—चारित्र का वैरी कौन है ?

उत्तर—कषाय अर्थात् रागद्वेष ।

(१०३) प्रश्न—शास्त्र में चार अनुयोग कहे गए हैं। उन में निश्चय अनुयोग कितने हैं और व्यवहार कितने हैं ?

उत्तर—निश्चय में एक द्रव्यानुयोग और व्यवहार में तीन अनुयोग (१) प्रथमानुयोग (धर्मकथानुयोग) (२) करण चरणानुयोग (क्रिया चारित्र की विधि) और (३) गणितानुयोग हैं।

(१०४) प्रश्न—मोक्ष का उपादान किसको कहते हैं और मोक्ष का उपादान कारण किसको कहते हैं ?

उत्तर—मोक्ष का उपादान जीवमात्र को है, कारण भव्य अभव्य जीव की सत्ता में केवल ज्ञान और

केवल दर्शन आदि अनन्त गुण भरे हैं। और उपादान कारण पुरुषार्थ द्वारा भव्य को ही प्राप्त होता है। कारक चक्र पलटे अर्थात् जो संसार-रुचि थी उसे पलट कर-आत्म सन्मुख तीव्र रुचि होने से कारक चक्र पलटता है। इसकी सिद्धि के लिए भगवान् ने फरमाया है कि, "उठाण कम्मबल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम" ही मोक्ष-मार्ग है।

(१०५) प्रश्न—आत्मस्वरूप का ज्ञान पढ़ना, बालना, लिखना सो किस कर्म का क्षयोपशम है?

उत्तर—ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है।

(१०६) प्रश्न—आत्मस्वरूप का अनुभव करना किस कर्म का क्षयोपशम है?

उत्तर—दर्शन-मोहनीय का क्षयोपशम है। दर्शन मोहनीय के अभाव में आत्मस्वरूप का अनुभव होता है।

(१०७) प्रश्न—समकित श्रद्धा, प्रतीति और रुचि किसको कहते हैं?

उत्तर—तत्त्वार्थ के सन्मुख होना श्रद्धा है। आत्म-स्वरूप का यथार्थ निश्चय करना प्रतीति है और आत्म-दर्शन अर्थात् आत्म अनुभव करना रुचि है।

(१०८) प्रश्न—रागद्वेष रूप विष वृक्षों का बीज, सकल दुःख दावानल का मुख्य कारण तथा समस्त दोषों की सेना का राजा कौन है ?

उत्तर—मिथ्यात्व अर्थात् दर्शन-मोह।

(१०९) प्रश्न—मोह रूपी अग्नि तीन लोक में फैल रही है वह कौन से जल से शान्त होती है ?

उत्तर—भेद भावना अर्थात् समकित भावना से शांत होती है।

(११०) प्रश्न—ज्ञानी और अज्ञानी कैसे जाने जाते हैं ?

उत्तर—पर-द्रव्य में रागद्वेष करे वह अज्ञानी है। पर द्रव्य को भिन्न जान कर रागद्वेष घटावे तथा समभाव में रहे वह ज्ञानी है। ऐसा जिनेश्वर भगवान् ने फरमाया है !

(१११) प्रश्न—आत्मा को प्रथम क्या छोड़ना चाहिये ?

उत्तर—पाँच मिथ्यात्व के स्वरूप को जान कर छोड़ना।

इसका विशेष स्वरूप समकित भावना या आत्म-जागृति भावना से देखलेना]

(११२) प्रश्न—समकित शुद्ध काहे से होता है ?

उत्तर—निरंतर तत्व अभ्यास से।

(११३) प्रश्न—समकित रूपी है कि अरूपी ?

उत्तर—समकित अरूपी है, कारण यह जीव का गुण है। जीव अरूपी है, इसलिए उसका गुण भी अरूपी होता है।

(११४) प्रश्न—समकित इन्द्रिय-सुख का आनंद देने वाला है कि अतीन्द्रिय (इन्द्रिय-रहित आत्मिक) आनन्द का देने वाला है।

उत्तर—समकित अतीन्द्रिय-आत्मिक आनन्द का देने वाला है। इन्द्रियों का आनन्द जीवके चारित्र गुण का विकार-अशुद्ध अवस्था है।

(११५) प्रश्न—चार तीर्थ में प्रवेश कब कर सकते हैं ?

उत्तर—समकित गुण प्राप्त करने से।

(११६) प्रश्न—समदृष्टि गुरु आदि की परीक्षा किस प्रकार करता है ?

उत्तर—दोहा—मध्यम क्रिया रत्न हुए, बालक देखे लिंग।
समदृष्टि की दृष्टि में, उत्तम तत्व सुरंग ॥

भावार्थ—बाल अज्ञानी जीव लिंग अर्थात् बाहिर के भेष, नाम, संप्रदाय आदि द्रव्य विचार से परीक्षा करता है, मध्यम कोटि का जीव क्रिया, आचार, वर्ताव देखकर परीक्षा करता है और समदृष्टि उत्तम तत्व से परीक्षा करता है और तत्व-शुद्धि में ही आनंद मानता है।

(११७) प्रश्न—जैन समाज में बहुत समय से लोग मुनि धर्म पालते, मुनियों की सेवा करते, व्याख्यान बांचते या सुनते, प्रश्नोत्तर करते और थोकड़ा आदि का ज्ञान रखते हुए देखने में आते हैं फिर भी उनमें से बहुतों में जीव और पुद्‌गल की भिन्नता का भेदविज्ञान नहीं झलकता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—द्रव्यनुयोग के यथार्थ ज्ञान और भेदभावना के अभाव से।

(११८) प्रश्न—श्री भगवती शास्त्र पढ़ने का सार क्या है ?

उत्तर—श्री भगवती शास्त्र में फरमाया गया है कि—

मन अन्य है और आत्मा अन्य है
वचन अन्य है और आत्मा अन्य है
काया अन्य है और आत्मा अन्य है

मन, वचन, काया नाम कर्म के उदय के फल हैं। ये आत्मा के गुण नहीं हैं। ये जुदे हैं, रूपी हैं, कर्म के विकार हैं। इन तीन प्रवृतियों से कर्म का बंधन होता है। इनको आत्मा से भिन्न जान कर इन मन, वचन, काया पर पूर्ण संयम प्राप्त करना ही कर्म-बंधन से छूटने का उपाय है समदृष्टि जीव हमेशा इनसे भेदभावना चिंतवन करे।

एक आचार्य महाराज (भगवती शास्त्र तथा सर्व जिनवाणी) पढ़ने का सार भेदज्ञान को बताते हैं।

सुणो भगवती दासजी, वात कहूँ हूँ साँची।
अने मने जाण्यो नहीं तो, काँई भगवती बाँची॥

अर्थ—भगवतीदास (जिनवाणी के सर्व भक्त), आपको सच्ची बात कहता हूं। यदि आपने आत्मा को मनसे अलग नहीं जाना तो भगवती वाँचने से लाभ ही क्या?

(११६) प्रश्न—सकाम निर्जरा कबसे शुरू होती है।

(उत्तर) समकित प्रकट होने पर सकाम निर्जरा होती है। समकित विना की सब अकाम निर्जरा मानी गई है, कारण उससे जीव पुनः कर्म–बंधन से बंधता है। अकाम निर्जरा से करोड़ों भवों में भी जितने कर्मों का

नाश नहीं होता उतने कर्मों का नाश सकाम निर्जरा में एक क्षण मात्र में होजाता है।

(१२०) प्रश्न—सत्य उपदेश कब दे सकते हैं?

उत्तर—व्यवहार निश्चय दोनों नय (अपेक्षा-अभिप्राय—आशय) का जिस को ठीक ज्ञान होवे वह समभावी आत्मा ही सत्य उपदेश देसकता है। आज इन दो गुणों के न होने पर भी उपदेश देने के कारण कलह होते दीखते हैं।

(१२१) प्रश्न—ये दो गुण क्यों ज़रूरी हैं?

उत्तर—इन से सत्य जाना जा सकता है। यदि ज्ञान नहीं है तो सत्य भी जाना नहीं जावे फिर उपदेश कैसे दिया जासकता है? सत्य जानने पर भी समभाव नहीं तो असत्य कहा जासकता है। इस लिये समभावी ज्ञानी ही सत्युपदेश कर सकता है। भगवान भी सर्वज्ञ और वीतराग दोनों गुणों के होने के कारण ही सत्य उपदेशक (आप्त) कहे गए हैं।

(१२२) प्रश्न—मूल पाठ के ज्ञान, अर्थ के ज्ञान और तत्व रहस्य के ज्ञान से क्या २ फल होते हैं?

(उत्तर) १ केवल पाठज्ञान से प्रायः सामान्य पुण्य प्रकृति की प्राप्ति होती है। २-अर्थ-ज्ञान से बहुत पुण्य तथा कुछ कर्मों का नाश होता है। ३-तत्त्व (रहस्य) ज्ञान से बहुत कर्मों का नाश होता है तथा सत्य सुख की प्राप्ति होती है। पाठज्ञान उत्तम वृक्ष के पत्ते के तुल्य है, अर्थज्ञान फूल के तुल्य और तत्त्व-(रहस्य) ज्ञान उत्तम फल के तुल्य है, ऐसा ठाणांग सूत्र में फरमाया गया है।

(१२३) प्रश्न-सर्व शास्त्रों का कथन कितने नय से किया गया है और उसकी शिक्षा का पालन कितने नय से करना चाहिये।

(१२४) उत्तर-शास्त्रकथन मुख्य दो नय से किया गया है। एक व्यवहार नय (पर्यायार्थिक नय) दूसरा निश्चय नय (द्रव्यार्थिक नय) और उसका पालन भी दोनों नयों से करना चाहिये। इन दोनों नयों के समूह को स्याद्वाद (सम्यक्त्व) कहते हैं। एक नय को एकान्तवाद (मिथ्यात्वी) कहते हैं।

(१२५) प्रश्न-कैसे सुख की चाह करने वाले को आत्म-दर्शन और आत्मज्ञान प्रकट होसकते हैं?

उत्तर—इन्द्रिय सुख को छोड़ आत्मिक सुख की चाह (ध्यान) करने वाले को आत्म दर्शन और आत्म-ज्ञान प्रकट हो सकता है।

(१२६) प्रश्न—कौनसा गुण प्रकट करने से जन्म मरण की जड़ (संसार संतति) नष्ट होती है ?

उत्तर—समकित गुण प्रकट करने से संसार संतति नष्ट होती है। जैसे जड़ नष्ट होने से कटा हुआ वृक्ष नीचे गिर जाता है और उसकी डालियां और पत्ते हरे रहते हुये भी वृद्धि को नहीं प्राप्त होते और सूख जाते हैं उसी प्रकार समदृष्टि के लिए संसार नहीं बढ़ता। वह सब कर्म क्षय करके मोक्ष में जाता है।

(१२७) प्रश्न—स्वभाव पर्याय (हालत) कौनसी है ?

उत्तर—शुद्ध गुण ही स्वभाव पर्याय है। सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही शुद्ध गुण हैं।

(१२८) प्रश्न—विभाव पर्याय कौनसी है ?

उत्तर—अशुद्ध गुण विभाव पर्याय है। अज्ञान मिथ्यात्व और विषय कषाय जीव की अशुद्ध हालत है।

(११६) प्रश्न—आत्मा की सिद्धि का परम अद्-भुत निमित्त कारण क्या है ?

उत्तर—शुद्ध भाव ही।

(१३०) प्रश्न—निश्चय हिंसा कौनसी है ?

उत्तर—अज्ञान मिथ्यात्व और विषय कषाय ही निश्चय हिंसा है। हिंसा ही सब दुखों का मूल कारण है।

(१३१) प्रश्न—निश्चय अहिंसा कौनसी है ?

उत्तर—अज्ञान मिथ्यात्व, विषय कषाय का त्याग ही निश्चय अहिंसा है। समभाव ही अहिंसा है। अहिंसा ही सुखों का मूल कारण है।

(१३२) प्रश्न—समकित की उत्पत्ति, रक्षा और वृद्धि कौन से ध्यान से होती है तथा वह समदृष्टि जीव को कितनी बार चिंतवन करना चाहिये ?

उत्तर—समकित की उत्पत्ति धर्म ध्यान (आत्म चिंतवन) में होती है और धर्म ध्यान से ही समकित गुण की रक्षा और वृद्धि होती है।

धर्मध्यान का चिंतवन निरन्तर करना चाहिये। कम से कम दिन रात में तीन वार तो अवश्य चिंतवन करना चाहिये शास्त्र में दो प्रहर ध्यान की खास आज्ञा है।

(१३३) प्रश्न—धर्मध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्म का अर्थ स्वभाव (वस्तुस्वभावो धर्मः) है। आत्मा का स्वभाव अर्थात् निज गुणों का चिंतवन करना ही धर्मध्यान है। धर्मध्यान (आत्मचिंतवन) के आज्ञा विचय (पदार्थ-स्वरूप-विचार) आदि सोलह प्रकार हैं उन को व्यवहार व निश्चय नय से समझ कर के चिंतवन करना चाहिये।

(१३४) प्रश्न—उपयोग के तीन प्रकार कौनसे हैं ?

उत्तर—शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग इस प्रकार उपयोग के तीन प्रकार हैं।

(१३५) प्रश्न—उपयोग के तीन प्रकार का क्या अर्थ है।

उत्तर—(१) क्रोध मान, कपट, लोभ, राग, द्वेष, विषयादि के विचार अशुभ उपयोग है। इस से इस लोक और परलोक में दुःख भोगने पड़ते हैं।

(२) विषय कषाय उपशांत कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, क्षमा, विनय, सरलता, दान, तप, भक्ति आदि के विचार शुभ उपयोग हैं । इस से इस लोक और परलोक में बहुत सुख मिलता है ।

(३) ऊपर के दोनों विचारों के अतिरिक्त आत्म-विचार आत्मरमण ही शुद्धोपयोग है । इस से सब दुःख का नाश होकर अविनाशी सत्य सुख प्रकट होता है ।

(१३६) प्रश्न—उपयोग का जो फल बताया गया है उसकी सिद्धि का प्रमाण बताओ ।

उत्तर—"पुण्ण पावेण पच्चयई जीवा"

अर्थ—पुण्य और पापसे जीव लोक में पीड़ा पारहे हैं ।

सुह परिणामो पुण्णं । असुहो पावत्ति भणिय मन्नेसु ॥
परिणामो णण्णगदो । दुःख खय कारणं समये ॥

अर्थ—शुभ परिणाम पुण्य का कारण है । अशुभ परिणाम पाप का कारण है और अन्य द्रव्य को छोड़कर स्वस्वरूप में स्थित परिणाम शुद्धोपयोग है । उसे शास्त्र में सर्व दुःख के क्षय का कारण कहा है ।

(१३७) प्रश्न—समदृष्टि जीव हरएक वस्तु को कौनसी नय (अपेक्षा) से देखे और जाने जिसके फल स्वरूप सदा समभाव रहे और कर्मों का क्षय हो जावे ?

उत्तर—पर्याय (विचित्र हालत) छोड़कर समदृष्टि जीव हरएक वस्तु को द्रव्य-दृष्टि से देखे जिससे कभी राग द्वेष नहीं हो, सदा सम-भाव रहे और बहुत से कर्म क्षय होवें, ऐसा आत्मा सदा सत्य सुख अनुभवता है और थोड़े ही समय में मोक्ष सुख प्राप्त करता है।

समकित का स्वरूप

(१) श्रीऋषभदेव स्वामी से वर्धमान स्वामी तक सब प्रभुओं को नमस्कार करके दर्शन स्वरूप को संक्षेप में कहता हूं।

(२) श्री जिनेश्वर देवने गणधरादि को धर्मोपदेश दिया है। उसका मूल दर्शन है। जहां दर्शन (समकित) नहीं है वहां धर्म भी नहीं है। मूल के बिना वृक्ष के स्कंध, शाखा, पुष्प, फलादि कहां से हों? जो दर्शन-भ्रष्ट है उसके लिए मोक्ष की प्राप्ति अति दुर्लभ है। वृक्ष का मूल कटने पर फल कैसे लगे? परन्तु जो चारित्र-भ्रष्ट है और उसका दर्शन शुद्ध है तो उसे पीछा चारित्र प्राप्त हो सकता है और मोक्ष मिल सकती है, जैसे कि स्कंध, शाखा आदि के कटने पर भी मूल बचे रहने से स्कंधादि बनकर फिर फल लग सकते हैं।

(३) जो दर्शन (आत्मानुभव) से रहित और बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं वे आराधना रहित होने से संसार में भ्रमण करते हैं।

(४) जो दर्शन से रहित हैं और भले प्रकार उग्र तप करते रहे हैं, वे अनेक हजार करोड़ वर्ष तप करने पर भी बोधि

अर्थात् सम्यग्-ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप स्व-स्वरूप का लाभ नहीं पाते हैं।

(५) इस पंचम काल में जड़ (मंद बुद्धि) वक्र (हरेक बात को उल्टी मानने वाले) जीव हैं तो भी पुरुषार्थ करें तो शुद्ध समकित गुण प्रकट करके ज्ञान, चारित्र, तप में बल पराक्रम लगाने से थोड़े ही काल में ज्ञानी होकर मोक्ष पाते हैं।

(६) जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्व रूपी जल का प्रवाह निरंतर बहता है, उस पुरुष को नया कर्म-रज रूपी आवरण नहीं लगता और उसके पूर्वकाल में बंधे हुए कर्म नष्ट होजाते हैं, क्योंकि क्रोधादि कषाय भाव से बंधे हुए कर्म क्रोधादि रहित शुद्ध परिणामों से नष्ट होते हैं।

(७) जो सम्यग्दर्शन रहित हो वह निश्चय ही सम्यग् ज्ञान व चारित्र रहित होता है। ऐसा जीव स्वात्मा का अहित करता है तथा मिथ्या उपदेश देकर अन्य जनों को भी कुमार्ग में लगाता है।

(८) मिथ्यात्व का फल निगोद है। अनंत जीवों के रहने का एक ही शरीर हो उसे निगोद कहते हैं। वहां सातवीं नारकी से भी अनंत गुणी वेदनाएं हैं। कारण कि क्षण क्षण में जन्म मरण का अनंत दुःख भोगना पड़ता है तथा स्थान का भी संकोच है। मिथ्यात्व का इतना कटु फल जान इसे दूर करने का खास उद्योग करना चाहिये।

(९) समकित से ज्ञान सम्यक् होता है। सम्यग् ज्ञान से सब पदार्थ यथार्थ जाने जाते हैं और यथार्थ ज्ञान होने से क्या हितकारी और क्या अहितकारी है? यह जाना जाता है। इसलिए सम्यक्त्व ही परम उपकारी है।

(१०) जिन-वचन भावऔपधि है। इन्द्रियजन्य भोगों में सुख बुद्धि को दूर करने वाला है।

(११) जीवादि नव पदार्थ की यथार्थ श्रद्धा करना व्यवहार समकित है और शुद्ध निज आत्मस्वरूप का निश्चय करना निश्चय समकित है।

(१२) सब गुण-रत्न-राशि में समकित सारभूत है और मोक्ष की प्रथम पेड़ी है। समकित प्रकट होते ही विषयभोग में सुख दुःख रूपी विकार और उसके फल जन्म, जरा, मरण का नाश होकर अविकारी आत्मिक सुख प्रकट होता है और उसका फल अविचल मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।

(१३) समदृष्टि परद्रव्य को हेय अर्थात् छोड़ने योग्य और निज रूप को उपादेय अर्थात् आदर करने योग्य जानता है, श्रद्धा करता है और जितना सामर्थ्य हो उतना परद्रव्य को छोड़ता है और चारित्र मोह के उदय से सम्पूर्ण न छूटे तो भी अंतरंग विरक्ति का अनुभव करता है और उदासीन (राग-द्वेष व उत्सुकता रहित) रहता है।

(१४) दूसरे गुणी पुरुषों को देखकर जो ईर्षा या मात्सर्य करता है वह मिथ्यात्वी है, कारण गुण की अप्रीति और दोष की प्रीति मिथ्यात्व का चिह्न है।

(१५) समकित से ज्ञान की शुद्धि होती है। ज्ञान से चारित्र की शुद्धि होती है और चारित्र से निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। निर्वाण से अनन्त सुख प्राप्त होता है। जितने सिद्ध हुए हैं वे सब ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्नत्रय की पूर्णता प्रकट करके हुए हैं। इन में से एक भी गुण अपूर्ण हो तो मुक्ति नहीं होती। इसलिए सब गुणों को प्रकट करने का पुरुषार्थ करना परम हितकारी है।

मोक्ष उपाय कह्यो जिनराजजु, सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा,
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य, भये निज बोध फले सुचरित्रा।
जे नर सम्यग् आगम जानि, करे पहिचानि यथावत मित्रा,
घाति खिपायरु केवल पाय, अघाति हने लहि मोक्ष पवित्रा ॥

(१६) समदृष्टि को ऐसी विवेक-शक्ति प्रकट होती है कि उसको सत् शास्त्र व असत् शास्त्र सत् रूप ही परिणमते हैं जब कि मिथ्या दृष्टि को विवेक-शक्ति का अभाव होने से सत् शास्त्र व असत् शास्त्र असत् रूप ही परिणमते हैं।

(१७) व्यवहार और निश्चय दोनों भेदों को बराबर समझनेवाला दोषों का नाशकर सुख को पाता है। जो व्यवहार निश्चय दोनों को यथार्थ जाने वही समदृष्टि हो सकता है। आरम्भ (हिंसादि काम), परिग्रह (धनभोगादि) से जिस को ज्ञान पूर्वक अरुचि होगई हो वही समकित गुण प्रकट होने का पात्र बन सकता है।

(१८) "दर्शन"—दर्शनावरण कर्म के अभाव से जो दर्शन गुण प्रकट होता है वह देखने रूपी शक्ति का धारक करने वाला गुण है। वहां दर्शन का अर्थ सामान्य बोध है। वस्तु का अस्तित्व (सत्तामात्र) जानना, "वस्तु है" इतना जानना दर्शन है और पदार्थ के विशेष गुण, पर्याय (हालत) जानना ज्ञान है। ज्ञानावरण कर्म के अभाव से ज्ञान गुण प्रकट होता है। ज्ञान का फल स्व-पर को विशेषरूप से जानना है। निश्चय नय अर्थात् सत्यस्वरूप में शुद्ध स्वरूप को अविचल रूप से जानना ज्ञान है और देखने से दर्शन है। इस पुस्तक में दर्शन गुण दर्शन-मोहनीय के अभाव से प्रकट होने वाले गुण को ग्रहण करने के अर्थ में लिया गया है।

(१९) आठों कर्म का राजा मोहनीय है और मोहनीय की २८ प्रकृति में मिथ्यात्व मोहनीय नामक प्रकृति सब से बड़ी है अर्थात् सब कर्म प्रकृति में "मिथ्यात्व" प्रकृति बड़ी है। उसकी स्थिति भी उत्कृष्ट सत्तर करोड़ाकरोड़ सागरोपम की है और जीव को सब से ज्यादा दुःख देने वाली यही प्रकृति है। इसीलिये जीव का सब से बड़ा अहित करने वाला मिथ्यात्व मोह के सिवाय अन्य कोई नहीं है, ऐसा शास्त्रकार फरमाते हैं। जब मिथ्या दर्शन मोहनीय की प्रकृति का अभाव होता है तब जो शुद्ध दर्शन गुण प्रकट होता है उसका दूसरा नाम समकित गुण है। इस दर्शन समकित गुण का काम है यथार्थ स्वरूप निश्चय। इसे श्रद्धा भी कहते हैं। सम्यग्दर्शन-समकित प्रकट होने से आत्मा स्वस्वरूप का यथार्थ निश्चय करता है, जिस से अनादिकाल की उसकी विपरीत मान्यता शरीर, इन्द्रिय-भोग, बाह्य पदार्थों मे मेरेपने की बुद्धि का नाश होकर वह अनन्त ज्ञान, सुखादि पूर्ण शुद्ध आत्म-तत्व को मानता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है।

(२०) विचार करने से यह ठीक मालूम होता है कि जहां तक मिथ्यात्व है, असत्यपन है, वहां तक सब गुणसमुदाय विपरीत ही रहेंगे। जैसे एक मनुष्य अपने गाँव जारहा है। गाँव शीघ्र पहुँचने के गाड़ी घोड़ा आदि साधन भी हैं, परन्तु यदि रास्ता उलटा है तो सब साधनों के होते हुए भी वह अपने घर नहीं पहुँच सकता। वैसे ही मोक्ष प्राप्त करने में दूसरे गुण भी साधन हैं परन्तु समकित (सत्यपन) उन सब में श्रेष्ठ है। जहां तक यह गुण प्रकट न हो वहां तक दूसरे गुण इष्ट फल-दाता नहीं होसकते। जैसे सच्चा मार्ग हाथ आजाने पर सभी अन्य साधन अपने घर को शीघ्र पहुँचाने में उपकारी होसकते

हैं वैसे ही समकित गुण प्रकट होने पर अन्य गुणों की सहायता से आत्मा निज घर-मोक्ष-को शीघ्र पहुँच सकता है।

(२१) समकित गुण प्रकट करने की पात्रता इन आठ गुणों को धारण करने से आती है:—

१—वात्सल्य भाव—जैसे गौ को अपने नवजात बछड़े की रक्षा का प्रेम होता है वैसे ही जीवमात्र के प्रति हितबुद्धि होना।

२—अधिक गुणी चाहे वह किसी भी जाति कुल व स्थान का हो उनका विनय करना। गर्व कभी नहीं करना।

३—अनुकम्पा—किसी भी दु:खी जीव को देखकर उसके दु:ख को दूर करने के लिए सदा सारी सम्पत्ति का त्याग कर देना, दान कर देना।

४—मोक्ष मार्ग का सदा प्रशंसक होना।

५—अपने गुणों को व पराये दोषों को गोपने वाला होना।

६—सत्य मार्ग से डिगने वाले को स्थिर करना।

७ सरलता—(ऋजुता) से युक्त होना। ऊपर के सब गुणों की प्राप्ति सरलता गुण से होती है।

८—सत्य—का ग्राहक होकर मन, वाणी और प्रवृत्ति में सत्य का ही पालन करना। इस गुण से सब गुणों की शुद्धि होती है।

(२२) परिग्रह भोगादि में उत्साह जिसे हो, जो उसकी प्रशंसा करे, उसमें सुख माने, वह जीव अज्ञानी है मोहमार्गी अर्थात् कुमार्गगामी है। वह सम्यक्त्व का नाश करता है।

(२३) जिसे सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप रूप सम्यग्मार्ग में उत्साह हो, उसकी प्रशंसा करे, उसमें सुख माने, वही ज्ञानी है सुमार्गगामी है। वह समकित गुण की रक्षा करता है।

(२४) षट् द्रव्य, नवतत्त्व को द्रव्य-गुण-पर्याय, सामान्य, विशेष, नय-प्रमाण-निक्षेप, व्यवहार, निश्चय द्वारा यथार्थ जानकर जो परद्रव्य से निज आत्मा के भिन्नपने का अनुभव करता है वही सम्यग्दर्शी जीव है। द्रव्यानुयोग अर्थात् तत्त्वविचार धर्मध्यान व शुक्लध्यान की प्राप्ति का कारण है। इसलिए समदृष्टि को हमेशा तत्वभावना भावी चाहिये। आत्मा को कर्मों का बंधन अशुद्धभाव–क्रोधादि युक्त कषायभाव से होता है और पुनः क्रोधादि रहित शुद्ध भाव–आत्मस्वरूप चिंतवन से बंधे हुए कर्मों का जय होता है; इसलिए निरंतर शुद्धभाव रखना परम हितकारी है।

(२५) समदृष्टि समकितभावना, आत्मभावना, एकत्व भावना, भिन्नभावना का चिंतवन करता है। वह देव, दानव किन्नर (गायकदेव), किंपुरुष, ज्योतिषी व विमानवासी देव और विद्याधर द्वारा स्वय बुद्धि शक्ति सम्पत्ति से बनाई (विक्रय की) हुई ऋद्धि भोगसामग्री देख कर उसे इन्द्र-जालवत् असार मानता है। जैसे मदारी युक्ति विशेष से कंकरी के जो रुपये दिखाता है उन रुपयों की चाह बुद्धिमान् मनुष्य नहीं करता क्योंकि वे टिकाऊ नहीं हैं वैसे ही समदृष्टि सब भोगसामग्री को विनाशी, अनित्य और दुःखवर्धक मानता है और उसे नहीं चाहता। जो शुद्धभाव से देवता के वैभव को भी नहीं चाहता है वह मनुष्य के मलिन और दुःखपूर्ण भोगों की इच्छा कैसे करेगा? अर्थात् नहीं करेगा?

(२६) बंध और मोक्ष का आधार भावों पर है। भावों की अशुद्धि और शुद्धि का आधार निमित्त-संयोग के ऊपर है। जो अशुभ निमित्त मिलजाय तो अशुद्ध भाव होकर जीव को बहुत दुःख भोगना पड़ता है। भावों की शुद्धि के लिए शास्त्र-

कारों ने उत्तम भावनाओं का अवलंबन लेने के लिए खास आज्ञा दी है। जहांतक मध्यम अवस्था है वहां तक अवलंबनपूर्वक भावों की शुद्धि हो सकती है। निरावलम्बी ध्यान-शुक्ल ध्यान को प्राप्त करने का साधन भी धर्मध्यान ही है। इसलिए मैत्री आदि चार भावना, अनित्यादि बारह भावना, जीवादि तत्त्वभावना व उत्तम वांचन, श्रवण, मनन, चिंतवन द्वारा भावों की शुद्धि करना चाहिये।

(२७) शास्त्र में तत्त्वभावना चिंतवन करने की खास शिक्षा दी गई है। वह इस प्रकार चिंतवन करनी चाहिये:—

१—मैं जीव हूं। अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, शक्तिस्वरूप हूं। मेरी शुद्ध अवस्था (पर्याय) सिद्धभगवान् के तुल्य है। देहधारी मनुष्यादि बनना, मेरी अशुद्ध हालत (पर्याय) है। अनन्त ज्ञान सुखादि मेरी शुद्ध गुण पर्याय है। अज्ञान, विषय, कषाय अशुद्ध गुणपर्याय है। जड़ पुद्गल में राग द्वेप करने से मेरी शुद्धता मलीन हो रही है। इसी से आश्रव और बंध होता है यदि राग, द्वेप, मोह छोड़ूंगा तो संवर निर्जरा धार के मोक्ष प्राप्त कर सकूंगा। इस प्रकार विस्तार से तत्व भावना चिंतवन करे।

(२८) तत्वभावना चिंतवन करने का उदाहरण—अनायास स्त्री आदि दृष्टिगोचर होजाय तो दृष्टि को तत्काल पीछे खींच कर जो रूपादि दिखगये उन विचारों को नाश करने के लिए ऐसा विचार करे:—"यह स्त्री जीव नामक तत्व की अशुद्ध द्रव्य पर्याय है। इस स्त्री का शरीर, रूप, वस्त्र, आभूषण आदि पुद्गल द्रव्य की पर्याय है। इसके हाव भाव करने से इस जीव का चारित्र गुण का विकार होकर विषय की जागृति हुई है। इससे यह जीव आश्रव व बंध कर रहा है। यदि मैं

इस में विकारी बनूंगा तो मेरा ज्ञान व चारित्र-गुण विकारी होकर मुझे भी आश्रव बंध होवेगा। यह रूप सदा विनाशी, दुःख गर्भित व जीव का अधःपतन करने वाला है। मैं रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित होकर इनमें मोहित क्यों होऊं, ऐसा विचार करने से संवर निर्जरा को पाकर मोक्ष प्राप्त करूंगा।" इस प्रकार हरएक स्थान पर अनित्यादि वैराग्य जीवादि सत्य-भावना का चिंतवन करना चाहिये।

(२६) चौथे गुणस्थान से ही समदृष्टि जीव को निम्न-लिखित प्रकृतियों का बंध नहीं होता:—

अनन्तानुबंधी का चौक, मिथ्यात्व मोहनीय, स्त्री वेद, नपुंसक वेद। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धनिद्रा। नरकायुष्य, नरकगति नर्कानुपूर्वि। तिर्यंच आयु, तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वि, नीचगोत्र, एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय व चतुरेन्द्रिय। प्रथम शिवाय के पांच संघयण, पांच संठाण। अशुभ विहायोगति, आताप नाम, उद्योत नाम। स्थावर, सूक्ष्म, साधारण. अपर्याप्त। दुर्भग. दुःस्वर, अनादेय। इन इकतालीस कर्म प्रकृतियों का बंध चौथे गुण स्थानक व उसके ऊपर नहीं होता, कारण समदृष्टि के तीव्र अशुभ परिणाम नहीं होते। इनमें की अनेक प्रकृति आज अपन को उदय में हैं, तथा अपने हाड़ों के बंधन व दृढ़ता देखते वे वज्र ऋषभ नाराच (वज्र की हड्डियां, वज्र के बंधन व वज्र की कीलि) नहीं हैं तो अपन ने पूर्व भव में समकित की आराधना नहीं की है यह निश्चय होता है, अब जो समकित (आत्मबोध-आत्मानुभव-आत्म-निश्चय) की आराधना करेंगे तो सब दुःखों से छूट जायेंगे।

(३०) मिथ्यात्व दशा में शुभ क्रिया करने से पुण्य बंध होता है। उसके फल में वैभव, सम्पत्ति, भोगादि मिलते हैं। उन में वह जीव गृद्ध-मोही होकर नर्क तिर्यंचादि कुगति में चला जाता है। देवता भी भोगगृद्ध होने से पृथिवी, जल, वनस्पति व तिर्यंच गति में उत्पन्न हो जाते हैं। जब समदृष्टि जीव को सकाम निर्जरा व निर्मल पुण्य (पुण्यानुबंधी पुण्य) की प्राप्ति होती है तब वह प्राप्त वैभव सम्पत्ति का सत् कार्य में उपयोग कर के त्यागी बन मोक्षमार्ग आराधन कर सकता है। समदृष्टि को सम्पत्ति हितकर होती है जब कि मिथ्यात्वी को अहितकर होती है। इससे यह स्पष्ट निकलता है कि यदि अपन लोग प्राप्त सम्पत्ति से सत्कार्य न कर सकें तो मिथ्यात्व भाव में बांधे हुए पुण्य का यह फल है और इससे भविष्य में भी कुगति में जाना पड़ेगा। ऐसा जान भोगोपभोग को छोड़ कर प्राप्त सम्पत्ति, बुद्धि, बल, आयु को सत्कर्म में लगाना चाहिये। पुण्य पाप प्रकृति के बंध के चार प्रकार हैं:-

* १-पुण्यानुबंधी पुण्य-जो विवेकपूर्वक समकित सहित शुभ प्रवृत्ति करते हैं, जहा मानादि वाञ्छा या कोई अभिलाषा नहीं है वहां पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध होता है। पुण्य अर्थात् सुख के अनुबंध यानि पीछे भी सुख, सम्पत्ति, बल बुद्धि मिलती है। उसका वह सदुपयोग कर सकता है व वैभव का शीघ्र त्याग कर सकता है, जैसे भरत चक्रवर्त्ती आदि—

२-पुण्यानुबंधी पाप-यह मिथ्यात्व दर्शन में शुभ प्रवृत्ति करने से प्राप्त होता है। इस से वैभव, सम्पत्ति, बल, बुद्धि आदि

* ये भेद प्रभेद धारणानुसार लिखते हैं, शुद्धि वृद्धि के लिये प्रकाशक को कृपया लिखें।

मिलते हैं। उनका पूरा सदुपयोग होना कठिन है। प्रायः उससे भोगगृद्ध होकर कुगति मिलती है। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। पुण्य अर्थात् सुख के पीछे (अनुबंध में) पाप अर्थात् दुःख मिलता है उसे पुण्यानुबंधी पाप कहते हैं।

३-पापानुबंधी पुण्य-यह समदृष्टि विवेकी मनुष्य पाप का अमुक काम लाचारी से करता है। जैसे शरीर निर्वाह हेतु भोजन आदि करना, व्यापार करना इत्यादि। उन कामों के करते समय उस जीव के हृदय में विरक्ति व पाप के लिये पश्चात्ताप होता है। जिससे वह जो हिंसा विषयादि क्रिया करता है उससे पापों का बंधन तो होता ही है परन्तु पश्चात्ताप युक्त होने से उसके फल में वह पीछा समभाव रख सकता है। इससे संसार वृद्धि नहीं होती। पाप अर्थात् दुःख के पीछे पुण्य अर्थात् सुख। पाप के फल में दुखकारी संयोग मिलते हैं परन्तु समभाव रहने से पीछा सुख मिलता है।

४-पापानुबंधी पाप-यह मिथ्यात्वी जीवहिंसा, विषयकषाय की प्रवृत्ति करते समय बांधता है। हिंसादि पाप हैं ही। इनके फल में दुःख मिलता है। उस दुःखमय हालत में पुनः पापकार्य व रुदन, चिंता, भय, शोकादि करके नया पाप का बंध करता है जिससे पाप (दुःख) के फल में (अनुबंध में) दुःख ही होता है। इसे पापानुबंधी पाप कहते हैं। इन चारों बंधनों में पुण्यानुबंधी पुण्य शुभ है। पापानुबंधी पुण्य मध्यम है और पुण्यानुबंधी पाप और पापानुबंधी पाप कनिष्ठ है। इसका यथार्थ ज्ञान सद्गुरु के पास करके जो हितकारी हो उसका आदर करना चाहिये।

(३१) निमित्त के वश से आत्मा के तीन प्रकार हैं:—
१—वहिरात्मा, २ अन्तरात्मा, ३ परमात्मा। शरीर, इंद्रिय व भोगादि में ममता रखने वाला जीव वहिरात्मा है अर्थात् मिथ्यात्वी है और शरीर इन्द्रिय भोगादि से भिन्न अपने आपको शुद्ध ज्ञान सुखादि स्वरूप अनुभवने वाला अंतरात्मा है अर्थात् समदृष्टि है। ऐसा समकिती जीव आत्मभावना पाकर परमात्म-पद लेता है।

वहिरातमा स्वभाव तज, अंतरातमा होय।
परमातम पद भजत हैं, परमातम ह्वे सोय॥
आतम सो परमातमा, और न दूजो कोय।
परमातम को ध्यावतें, यह परमातम होय॥
मैं ही सिद्ध परमातमा, मैं ही आतमराम।
मैं ही ज्ञाता ज्ञेय का, चेतन मेरा नाम॥
मैं अनंत सुख का धनी, सुखमय मोर सभाय।
अविनाशी आनंदमय, सो हूँ त्रिभुवन राय॥

काव्य विभाग

समकिती के गुण

सवैया—

स्वारथ के सांचे परमारथ के सांचे चित्त,
सांचे वैन कहे सांचे जैन मति है।
काहू के विरोधी नाहीं, परजाय बुद्धि नाहीं,
आतमगवेषी न गृहस्थ है न यति है।

ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दीसै घरमें प्रगट सदा,

अंतर की लछिसौं अजाची लक्षपति है।

दास भगवंत के उदास रहै जगत सौं,

सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है॥

भावार्थ—स्वार्थ अर्थात् आत्मपदार्थ में जिनको सत्य प्रतीति है। परमार्थ अर्थात् मोक्ष स्वरूप में यथार्थ श्रद्धा है जिन के चित्त में सदा सत्य के ही विचार आते हैं। जो सदा सत्य वचन ही बोलते हैं और सत्य का आचरण करते हैं वे जैन हैं। समस्त नय (अपेक्षा) के ज्ञाता होने से किसी के विरोधी नहीं हैं, जिनके पर्याय (शरीरादि) में आत्मबुद्धि नहीं है। गृहस्थीपन या यतिपन में आपा नहीं है परन्तु आत्मगुणगवेषक हैं, जिनको अपने हृदय में ज्ञानादि गुण रूप ऋद्धि और आत्मिक सुखरूप सिद्धि की सदा वृद्धि होती प्रकट दीखती अनुभव में आती है, ऐसी भावलक्ष्मी से जो सदा याचनारहित लक्षपति हैं। भगवान् (सद्गुणियों के) के सदा दास हैं। संसार (विषय कषाय) से सदा उदास (राग द्वेष) रहित हैं। ऐसे समदृष्टि जीव सदा आत्मिक सुख से महासुखी हैं। पहिले सत्य की प्राप्ति होवे, बाद तत्त्वबोध होकर सत्य सुख प्रकट होता है, इसलिये समदृष्टि बनने के लिये मन वाणी और काया मे सत्य का पालन करना चाहिये।

दोहा—समकितनुं मूल जाणीये, सत्य वचन साक्षात।

साचामां समकित वसे, मायामां मिथ्यात्व॥

मोक्ष की कुंजी भाग पहिले के अंत में समकित के पाच स्वरूप कहे हैं तीन यहां कहते हैं।

१—आठ मद कहते हैं.—

दोहा—जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।

इनको गर्व जु कीजिए, ये मद अष्ट प्रकार॥

अर्थ—जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार, इनका गर्व करना ये आठ मद हैं।

१०—आठ मल कहते हैं:—

चौपाई

आशंका अस्थिरता वंछा। ममता दृष्टि दशा दुरगंछा।
वत्सल रहित दोष पर भाषे। चित्त प्रभावना मांहि न राखे॥

अर्थ—यथार्थ तत्त्व निश्चय में शंका, धर्म (ज्ञान दर्शन चारित्र तप) में अस्थिरता, विषय की इच्छा, देहमें ममत्व, अशुभ की ग्लानि, मैत्री-भाव प्रेम करके रहित, पराई निंदा और ज्ञानवृद्धि में उत्साह नहीं रखना ये आठ मल हैं।

११—छः आयतन कहते हैं :—

दोहा—कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।
इनकी करे सराहना, इह षडायतन कर्म॥

अर्थ—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु, कुदेव और कुधर्म के भक्त की सराहना करना ये छ: आयतन हैं।

आयतन कहतां स्थान, दोष उत्पन्न होने का स्थान है।

१२—तीन मूढता कहते हैं। इन ८, ८, ६ और ३ के मेल से २५ दोष होते हैं।

दोहा—देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष॥
आठ आठ षट् तीन मिलि, ये पचीस सब दोष॥

अर्थ—सुदेव कैसा है और कुदेव कैसा है यह न जाननेवाला देव मूढ है, सुगुरु और कुगुरु को न पहिचानना गुरु मूढता है और धर्म और अधर्म न समझना धर्म मूढता है। ये आठ (मद), आठ (मल), छः (आयतन) और तीन (मूढता) मिलकर पच्चीस दोष होते हैं।

१३—अब सम्यक्त्व की नाशक पांच दशाएँ कहते हैं:—

दोहा—ज्ञानगर्व मतिमंदता, निष्ठुर वचन उदगार।
रुद्रभाव आलसदशा, नाश पंच परकार॥

अर्थ—ज्ञान का गर्व, मति की मंदता, निर्दय वचन, क्रोध भाव और आलस्य उत्तम काम में ढीलापन इन पाँच दशाओं से सम्यक्त्व का नाश होता है।

१४—अब सम्यक्त्व के पँच अतिचार कहते हैं :—

दोहा—लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव।
मिथ्या आगम की भगति, मृपा दर्शनि सेव॥

अर्थ—१ लोक हँसेंगे ऐसा भय पाय उत्तम काम न करना, २ इन्द्रिय के भोगों में रुचि, ३ आगे क्या होगा ऐसी चिन्ता, ४ मिथ्या शास्त्र में भक्ति (विषय कषाय बढ़ाने वाला कुज्ञान प्रिय होना) ५ और विपरीत समझवालों की संगति करना, ये पाँच अतिचार दोष हैं।

१५—अब अतिचार दोष का फल कहते हैं :—

चौपाई—अतीचार ये पंच प्रकारा।
समल करहि समकित की धारा॥

अर्थ—ये पाँच प्रकार के अतिचार दोष समकित की धारा को मलीन करते हैं।

अन्तिम शिक्षा

चौपाई—दूषण भूषण गति अनुसरणी।
दशा आठ समकित की वरणी॥

अर्थ—यह समकित की आठों दशाओं का वर्णन किया है।

ऊपर कहे हुए दूषणों को ग्रहण करने वाले इस लोक और परलोक सम्बंन्धी अनंत दुःखों को पाते हैं और गुणों को धारण करने वाले इह लोक और परलोक सम्बन्धी परम सुख पाते हैं।

* समयसार छंद में से साभार उद्धृत।

काव्य–विभाग

१–गुण-मंजरी
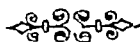
समकिती जीव को जो गुण व्यवहार में प्रकट होते हैं उनका वर्णन

[ब्रह्मविलास से साभार उद्धृत]

दोहा

परमपंच परमेष्ठि को, वंदौं शीस नवाय ।
जस प्रसाद गुण मंजरी, कहूं कथन गुण गाय ॥ १ ॥
ज्ञान रूप तरु ऊगियो, सम्यक् धरती मांहि ।
दर्शन दृढ़ शाखा सहित, चारित दल लहकांहि ॥ २ ॥
लगी ताहि गुण मंजरी, जस स्वभाव चहुँ ओर ।
प्रगटी महिमा ज्ञान में, फल है अनुक्रम जोर ॥ ३ ॥
जैसे वृक्ष रसाल के, पहिले मंजरी होय ।
तैसे ज्ञान तमाल के, गुण मंजरि का जोय ॥ ४ ॥
दया सुवत्सल सुजनता, आतम निंदा रीति ।
समता भक्ति विराग विधि, धर्म राग सों प्रीति ॥ ५ ॥
मन प्रभावना भाव अति, त्यागन ग्रहन विवेक ।
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी अनेक ॥ ६ ॥
तिनके लच्छन गुण कहूं, जिन आगम परमान ।
इक क्रम शिव फल लागि है, देख्यो श्री भगवान ॥ ७ ॥

चौपाई

दया कही द्वय भेद प्रकाश । निज पर लच्छन कहूं विकाश ।
प्रथम कहूं निज दया बखान । जिह में सब आतम रस जान ॥ ८ ॥
शुद्धस्वरूप विचारहिं चित्त । सिद्ध समान निहारहि नित्त ।
थिरता धरै आतमपद माहिं । विषय सुखन की वाञ्छा नाहिं ॥ ६ ॥
रहै सदा निज रस में लीन । सो चेतन निज दया प्रवीन ।
अब दूजों पर दया विचार । जो जानै सगरो संसार ॥ १० ॥
छहों काय की रच्छा होय । दया शिरोमणि कहिये सोय ।
पृथिवी अं[1]प तेऊं[2] अरु वाय । वनस्पति त्रिस भेद कहाय ॥ ११ ॥
मन वच काय विराधै नाहिं । सो पर दया जिनागम माहिं ।
अव्रत में भावनि तें टलै । यथाशक्ति कछु दर्वित पलै ॥ १२ ॥
ज्यों कषाय की मंदित ज्योत । त्यों त्यों दया अधिक तिहँ होत ।
त्रस की रच्छा निश्चय करै । देश विरत थावर कछु टरै ॥ १३ ॥
सर्व दया छट्ठे गुण थान । आगे ध्यान कह्यो भगवान ।
और कहूँ पर दया वखान । ताके लच्छण लेहु पिछान ॥ १४ ॥
कष्टित देख अन्य जिय कोय । जाके हिरदे करुणा होय ।
शक्ति समान करे उपकार । सो पर दया कही संसार ॥ १५ ॥

दोहा

कही दया द्वय भेद सों, थोरे में समुझाय ।
याके भेद अपार हैं, जाने श्री जिनराय ॥ १६ ॥
अब वत्सलता गुण कहूं, जो रुचिवंत सदीव ।
लग्यो रहै जिनधर्म में, सो समदृष्टी जीव ॥ १७ ॥

१—जल, २—अग्नि ।

चौपाई

जैसे वच्छा चूंखे गाय । तैसे जिन वृप याहि सुहाय ।
लग्या रहे निशदिन तिहं माहिं । और काज पर मनसा नाहिं ॥१८॥
सुनै जिनागम के विरतंत । त्यों त्यों सुख तिह होत महंत ।
जो देख्या केवल भगवान । सो निहचै याके परमान ॥ १६ ॥
द्वादश अग प्ररूपहि जोय । सो याके घट अविचल होय ।
रहै सदा जिन मत को ध्यान । सो वत्सलता गुण परमान ॥ २० ॥
अब तीजी सज्जनता कहूं । जाके भेद यथारथ लहूं ।
देखे जो जिन-धर्मी जीव । ताकी संगति करे सदीव ॥ २१ ॥
सव प्राणी पर सज्जन भाव । मित्र समान करे चित चाव ।
जहां सुने जिन-धर्मी कोय । तहं रोमांचित हुलसित होय ॥ २२ ॥
देखत ही मन लहै आनंद । सो सज्जनता है गुण वृंद ।
अब अपनी निंदा अधिकार । कहूं जिनागम के अनुसार ॥ २३ ॥
जव जिय करै विषय सुख भोग । निंदित ताहि रहै उपयोग ।
अघ कीरति करै जिय जहां । अप्रित रहै रैन दिन तहां ॥ २४ ॥
देह कुटुंबादिक से नेह । जव है तब निंदे निज देह ।
व्रत पचखान करै नहिं रंच । तव कहै रे मूरख तिरजंच ॥२५॥
जव कहुं जिय की हिंसा होय । तव धिक्कार करै निज सोय ।
जव परिणाम बहिर्मुख जाय । तव निज निंदा करै सुभाय ॥ २६ ॥
इह विधि निज निंदहि जे जीव । ते जिन धर्म कहै सदीव ।
धर्म विषे उद्यम नहिं होय । तव निज निंदहि धर्मी सोय ॥ २७ ॥

दोहा

आतम निंदा पाठ इम, करत भविक निश दीस ।
अब समता लक्षण कहूं, जो भाषित जगदीश ॥ २८ ॥

चौपाई

समता भाव धरहि उर मांहीं। वैर भाव काहू सो नाहीं।
निज समान जाने सब हंस। क्रोधादिक तब करै विध्वंस[1] ॥२९॥
उत्तम क्षमा धरहि उर आन। सुख दुःख दोहि में एकहि बान[2]।
जो कोउ क्रोध करै इह आय। तबहू याके समता भाय ॥ ३० ॥
उपजै क्रोध कषाय कदाच। तब तहँ रहैं आपसों राच।
सो समतादिक लच्छन जान। थोरे में कछु कह्यो बखान ॥३१॥
अब कहुं भगति भाव जो होय। सेवहि पंच पदहि नित सोय।
देव गुरु जिन आगम सार। इन की भक्ति रहै निरधार ॥ ३२ ॥
जामहिं गुण देखे अधिकाय। ताकी भक्ति करहि मन लाय।
भक्ति भावतैं नाहिं अघाय[3]। समदृष्टी को यहै स्वभाय ॥ ३३ ॥
अब कहुं गुण वैराग बखान। उदासीन[4] सबसो तिहँ जान।
जो पै रहै गृहस्थावास। ताहू मन तिह रहै उदास ॥ ३४ ॥
जानै कबहूं चारित लेउँ। परिग्रह सबै त्याग कर देउँ।
क्षणभंगुर देखहि संसार। तातैं राग तजै निरधार ॥ ३५ ॥
निज शरीर विषलेषण करै। अशुचि देख ममता परिहरै।
यह जड़मय हूँ चेतन सरबंग। कैसे राग करूं इहि संग ॥ ३६ ॥
मन लाग्यो आतम रस माहिं। ताते वैर वासना नाहिं।
इम वैराग्य धरहिं जे संत। ते समद्रष्टी कहे सिद्धंत ॥ ३७ ॥
अथ कहूं धर्म राग की बात। समद्रष्टी जिय सबै सुहात।
पंच परम परमेष्ठी जान। तिनमें राग धरहि उर आन ॥ ३८ ॥
जिन आगम जो कह्यो सिधंत। तिन पै राग धरत हैं संत।
ज्यों देखहि जिन धर्म उद्योत। त्यों तिहिं राग महा उर होत ॥३९॥

१—नाश। २—आदत। ३—थके नहीं। ४—राग द्वेष रहित।

जहां सुने जिनधर्मी कोय। तिहिं मिलवे की इच्छा होय।
धर्मराग है धर्मी जोय। सम्यक् लच्छन कहिये सोय॥ ४०॥

दोहा

कही आठ गुण मंजरी, सम्यक् लक्षण जान।
पंच भेद पुनि और हैं। तेहू कहूं बखान॥ ४१॥
मन प्रभावना भाव धर। हेय उपादेय वंत।
धीरज हर्ष प्रवीनता। इम मंजरी वृत्तंत॥ ४२॥

चौपाई

चित्त प्रभावना भावहिं धरै। किहि विधि जैनधर्म विस्तरै।
संघ चलावहि खरचै दाम। प्रगट करै जिन शासन नाम॥४३॥
साधु साध्वी श्रावक वर्ग। इन के दूर करहिं उपसर्ग।
पोषै संघ चतुर्विधि जान। सो जिन धर्मी कहैं बखान॥ ४४॥
इह विधि करै उद्योत अनेक। जाके हिरदे परम विवेक।
खरचहि द्रव्य देय बहु दान। सो प्रभावना अंग बखान॥ ४५॥
अब कहुं हेय उपादेय भेद। जाके लखे मिटे सब खेद।
प्रथमहिं हेय कहत हूं सोय। जामें त्याग कर्म को होय॥४६॥
पुद्गल त्याग योग्य सब तोहि। इनकी संगति मगन न होहि।
ऐसे जो वरनै परिणाम। हेय कहत है ताको नाम॥ ४७॥
अब कहूं उपादेय की बात। जामें ग्रहण अर्थ विख्यात।
निज स्वरूप जो आतमराम। चिदानंद है ताको नाम॥ ४८॥
ज्ञान दरश चारित भंडार। परमधर्म धन धारन हार।
निराकार निरभय निरूप। सो अविनाशी ब्रह्मस्वरूप॥ ४९॥
ताकी महिमा जानहिं संत। जाकी शक्ति अपार अनंत।
ताहि उपादेय जानहिं जोय। सम्यक् दृष्टी कहिये सोय॥५०॥

निज स्वरूप जो ग्रहण करेय। पर सत्ता सब त्यागे देय।
ऐसे भाव धरहिं जो कोय। हेय उपादेय कहिये सोय॥ ५१॥
अब धीरज गुण कहूं बखान। जिनके ते समदृष्टी जान।
धर्म विषे जो धीरज धरे। कष्ट देख सरधा नहिं टरे॥ ५२॥
सहे उपसर्ग अनेक प्रकार। सबहू धीरज है निरधार।
मिथ्या मत जो देखे कोय। चमत्कार तामें बहु होय॥ ५३॥
तबहूं ताहि लखहि अज्ञान। सो धीरज धर सम्यक्वान।
अब कहूं हरष गुणहिं समुझाय। समदृष्टी यह सहज सुभाय॥५४॥
निज स्वरूप निरखहिं जो कोय। ताके हर्ष महा उर होय।
सुख अनंत को पायो ईश। तिहँ निरखे हरषे निस दीस॥५५॥
छहों द्रव्य के गुण परजाय। जाने जिन आगम सुपसाय।
निज निरखे सुविनाशी नाहिं। याते हर्ष महा उर माहिं॥ ५६॥
तीर्थंकर देवन के देव। ताकि प्रभुता के सब भेव।
अनंत चतुष्टय आदि विचार। हर्षे ते निज मांहि निहार॥५७॥
जन्म जरादिक दु:ख बहु जान। तिहतें भिन्न अपनपो मान।
सिद्ध समान विचार हि चित्त। तातें हर्ष महा उर नित्त॥५८॥
अब गुण कहूं प्रवीन बखान। जिन के ते समदृष्टी मान।
स्वपर विवेकी परमसुजान। प्रगट्यो बोध महा परधान॥५९॥
जानन लाग्यो सब विरतंत। जैसो कछु देख्यो भगवंत।
जिन आगम के वचन प्रमान। तामहिं बुद्धि अहै परधान॥६०॥
धर्म महा गुण जाके होय। तातैं निपुण न दूजो कोय।
जाके हृदय भयो परकाश। ताकी कुमति गई सब नाश॥६१॥
चौदह विद्या में जो आदि। ब्रह्मज्ञान सो कह्यो मरजाद।
तातैं जो परवीन प्रधान। सो समदृष्टि बिन नहिं आन॥ ६२॥
मिथ्याती जीव भ्रम में रहे। सो प्रवीनता कैसे गहे!

तातैं कथा यहै परमान। है प्रवीन जिय सम्यक्वान ॥ ६३ ॥
इहिविधि मंजरी लगी अनेक। ज्ञानवंत धर देख विवेक।
जैसे द्रुम शोभै सहकार। तैसे ज्ञान गुणन के भार ॥ ६४ ॥
यातैं प्रथम मंजरिका कही। इहीं द्रुम शिवफल लागहि सही।
जाके घट समकित परकाश। ताके ये गुण होंहि निवास ॥६५॥
सम्यग्दर्शी लहै जो जीव। सो शिवरूपी कह्यो सदीव।
तातैं सम्यक्ज्ञान प्रमान। जातें शिवफल होय निदान ॥ ६६ ॥

दोहा

कही ज्ञान गुणमंजरी जिन मत के अनुसार।
जो समुझहिं औसर दई, ते पावहिं भवपार ॥ ६७ ॥
यामें निज आतमकथा, आतमगुण विस्तार।
तातैं याहि निहारिये, लहिये आतम सार ॥ ६८ ॥
जो गुण सिद्ध महंत के, ते गुण निज मांहि जान।
भैया निश्चय निरखतें, फेर रंच जिन मान ॥ ६९ ॥
सत्रहसौ चालीस के, उत्तम माघ हिमंत।
आदिपक्ष दशमी सुदिन, मंगल कह्यो सिद्धंत ॥७०॥

२—समदृष्टि को शिक्षा

समकित गुण प्रकट करने से परवस्तु (बाह्य पदार्थ) का त्याग होता है और हिंसा, विषय कषाय का त्याग करने से ध्यान की वृद्धि होकर गुणस्थान श्रेणी चढ़ी जाती है और मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसका वर्णन—

दोहा

सम्यक् आदि अनंत गुण, सहित सुआतम राम।
प्रगट भये जिहँ कर्म तज, ताहि करौं परणाम ॥ १ ॥

चौपाई

अप्रत्याख्यान[1] जाय नहिं जहां। व्रत पचखान पलै नहिं तहां।
सम्यक्दृष्टी परमसुजान। धरहिं शुद्ध अनुभव को ध्यान॥ २॥
अनुभव में आतम रस लसै। आतम रस में शिव सुख वसै।
आतम ध्यान धर्यो जिन देव। तातैं भये मुक्ति स्वयमेव॥ ३॥
मुक्ति होन को बीज निहार। आतम ध्यान धरैं अरिटार[2]।
ज्यों ज्यों कर्म विलय को जाहिं। त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहिं॥४॥
प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कर। चकचूर चढहिं गुण थान।
आगें महा ध्यान धर धीर। कर्मशत्रु जीते बलवीर॥ ५॥
प्रगट करै निज केवल ज्ञान। सुख अनंत विलसै निहं थान।
लोक अलोक सवहि झलकंत। तातैं सब भाखै भगवंत॥ ६॥
चारों कर्म अघाती हार। तब वे पहुंचे मुकति मंझार।
काल अनंतहि ध्रुव है रहै। तास चरन भविवंदन कहै॥ ७॥

दोहा

सुख अनंत की नींव यह, सम्यक् दर्शन जान।
याही तें शिवपद मिले, भैया लेहु पिछान॥ ८॥

३—वैराग्यपचीसी

वैराग्यवान् आत्मा ही समकिती होसकती है। समकित से स्थायी वैराग्य अर्थात् भोगों से भेद ज्ञानपूर्वक अंतरंग अरुचि होती है, सो बताते हैं:—

१—कुछ भी त्याग नहीं करना। (प्रत्याख्यान=कुछ त्याग करना)

२—शत्रु (राग द्वेष आदि भाव-शत्रु) का त्याग करके।

दोहा

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिन देव ।
मन वच सीस नवायकैं, कीजे तिन की सेव ॥ १ ॥
जगत् मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।
मूल दुहुन को यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥ २ ॥
क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ।
येही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतम राम ॥ ३ ॥
इनहीं चारों शत्रु को, जो जीते जग माहिं ।
सो पावहि पथ मोक्ष को, यामे धोखा नाहिं ॥ ४ ॥
जा लच्छी के काज तू, खोवत है निज धर्म ।
सो लच्छी संग ना चले, काहे भूलत भर्म ॥ ५ ॥
जा कुटुंबके हेत तू, करत अनेक उपाय ।
सो कुटुंब अग्नि लगा, तोको देत जराय ॥ ६ ॥
पोषत है जा देह को, जोग त्रिविधि के लाय ।
सो तोकों छिन एक में, दगा देय खिरजाय ॥ ७ ॥
लच्छी साथन अनुसरे, देह चले नहिं संग ।
काढ़ काढ़ सुजनहि करै, देख जगत् के रंग ॥ ८ ॥
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ।
विषय सुखन के कारने, सर्वस चले गमाय ॥ ९ ॥
जगहिं फिरत कई युग भये, सो कछु कियो विचार ।
चेतन अवतो चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥ १० ॥
ऐसे मति विभ्रम भई, विषय लागत धाय ।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ११ ॥
पीतो सुधा स्वभाव की, जी तो कहूं सुनाय ।
तूं रीतो क्यों जातु है, वीतो नर भव जाय ॥ १२ ॥

मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ।
भ्रष्ट करत है सिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट ॥ १३ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेष को संग ।
ज्यों प्रगटै परमातमा, शिव सुख होय अभंग ॥१४॥
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री हूं पुनि नाहिं ।
वैश्य शुद्र दोऊ नहीं, चिदानंद हूँ माहिं ॥ १५ ॥
जो देखै इहि नैनसों, सो सब विनस्यो जाय ।
तासों जो अपनो कहै, सो मूरख शिर राय ॥१६॥
पुद्गल को जो रूप है, उपजै विनसै सोय ।
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥१७॥
देख अवस्था गर्भ की, कौन कौन दुःख होंहि ।
बहुर मगन ससार में, सो लानत है तोहि ॥ १८ ॥
अधो शीश ऊरध चरन. कौन अशुचि आहार ।
थोरे दिन की बात यह, भूली जात संभार ॥ १९ ॥
अस्थि चर्म मल मूत्र में, रैन दिना को वास ।
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥ २० ॥
रोगादिक पीड़ित रहै, महा कष्ट जो होय ।
तबहू मूरख जीव यह. धर्म न चिन्ते कोय ॥ २१ ॥
मरन समय बिललात है, कोऊ लेउ बचाय ।
जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछू बसाय ॥ २२ ॥
फिर नरभव मिलिबो नहीं, कियेहु कोटि उपाय ।
तातैं बेगहि चेतहू. अहो जगत के राय ॥ २३ ॥
भैया की यह वीनती, चेतन चेतहिं विचार ।
ज्ञान दर्श चारित्र में, आपो लेहु निहार ॥ २४ ॥
एक सात पंचास को, संवत्सर सुखकार ।
पक्ष शुक्ल तिथि धर्म की, जै जै निशिपति वार ॥ २५ ॥

४—नाटक पचीसी

समदृष्टि जीव को स्व पर का यथार्थ ज्ञान होता है, जिससे वह संसार की सब प्रवृत्ति को नाटक के तुल्य समझता है, आप ज्ञाता अर्थात् समभावी रहता है, भोक्ता अर्थात् रागी द्वेषी नहीं बनता।

दोहा

कर्म नाटनृत तोर के भये जगत जिन देव।
नाम निरञ्जन पद लह्यो, करूं त्रिविधि तिहिं सेव ॥ १ ॥
कर्मन के नाटक नटत, जीव जगत् के माहिं।
तिनके कछु लच्छन कहू, जिन आगम की छांहि ॥ २ ॥
तीन लोक नाटक भवन मोह नचावन हार।
नाचत है जिय स्वांग धर, कर कर नृत्य अपार ॥ ३ ॥
नाचत है जिय जगत में, नाना स्वांग बनाय।
देवनर्क तिरजंच में, अरु मनुष्य गति आय ॥ ४ ॥
स्वांग धरै जब देव को, मानत है निजदेव।
वही स्वांग नाचत रहै, यह अज्ञान की टेव ॥ ५ ॥
औरन सों और हि कहै, आप कहे हम देव।
गहि के स्वांग शरीर को, नाचत है स्वयमेव ॥ ६ ॥
भये नरक में नारकी, लागे करन पुकार।
छेदन भेदन दु:ख सहै, यही नाच निरधार ॥ ७ ॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होय।
यह स्वांग निर्वाह है, भूल परो मति कोय ॥ ८ ॥
[1] नित्यनिगोद* के स्वांग की, आदि न जाने जीव।
नाचत है चिरकाल के, भव्य अभव्य सदीव ॥ ९ ॥

---

१ अव्यवहारराशि।

* अनन्त जीवों के रहने का एक शरीर (कंद, मूल आदि जिनमें अनन्त जीव हैं) को निगोद कहते हैं।

इतर नाम गिगोद है, तहां वसत जे [2]हंस ।
ते सव स्वांग हि खेल के, वहुर धर्यो यह वंस ॥ १० ॥
उछरि उछरि के गिर परै, ते आवे इहि ठौर ।
मिथ्या दृष्टि स्वभाव धर, यह स्वांग शिरमौर ॥ ११ ॥
कबहू पृथ्वी काय में, कबहू अग्नि स्वरूप ।
कबहू पानी [3]पौन है, नाचत स्वांग अनूप ॥ १२ ॥
वनस्पती के भेद वहु, स्वांस अठारह वार ।
तामें नाच्या जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥ १३ ॥
विकलत्रय के स्वांग में, नाचे चेतनराय ।
उसी रूप है परणये, वरनें कैसें जाय ॥ १४ ॥
उपजे आय मनुष्य में, धरै पंचेंद्री स्वांग ।
[1]अष्टमदनी मातो रहै, मातो खाई भांग ॥ १५ ॥
पुण्ययोग भूपति भये, पाप योग भये रंक ।
सुख दुःख आप हि मान के, नाचत फिरे निशंक ॥ १६ ॥
नारी नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाहिं ।
चेतन सों परिचय नहीं, नाच नाच खिरजाहिं ॥ १७ ॥
ऐसे काल अनन्त हुवे, चेतन नाचत तोहि ।
अजहूं आप संभारिये, सावधान किन होई ॥ १८ ॥
सावधान जे जिय भये, ते पहुंचे शिवलोक ।
नाच भाव सव त्याग के, विलसत सुख के थोक ॥ १९ ॥
नाचत है जग जीवजे, नाना स्वांग रमन्त ।
देखत है तिई नृत्य को, सुख अनन्त विलसंत ॥ २० ॥
जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहिं ।
नाचन में सव दुःख है, सुख निज देखन माहिं ॥ २१ ॥

१—व्यवहारराशि । २—जीव । ३—पवन ।

नाटक में सब नृत्य है, सार वस्तु कछु नाहि ।
ताहि विलोका कौन है, नाचन हारे माहिं ॥ २२ ॥
देखे ताको देखिये, जाने ताको जान ।
जो ताको शिव चाहिये, तो ताको पहिचान ॥ २३ ॥
प्रकट होत परमात्मा, ज्ञान दृष्टि के देत ।
लोकालोक प्रमाण सब, छिन इक में लख लेत ॥ २४ ॥
भैया नाटक कर्म तें, नाचत सब संसार ।
नाटक तज़ न्यारे भये, ते पहुंचे भवपार ॥ २५ ॥

५. आतमस्वरूप के दोहे । (परमात्म छत्तीसी)

सब ज्ञान का सार एक आत्मस्वरूप को पहिचानना और अनुभव करना है । समकित का अर्थ ही आत्मानुभव है । आत्मा की हालत समझने से सत्यासत्य का ज्ञान होता है ।

दोहा

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीश ।
परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि सीस ॥ १ ॥
एक जु चेतन द्रव्य है, तिन में तीन प्रकार ।
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम[1] पदसार ॥ २ ॥
बहिरातम ताको कहै, लखै न ब्रह्म स्वरूप ।
मग्न रहै पर द्रव्य में, मिथ्यावंत अनूप ॥ ३ ॥
अंतर आतम जीवसो सम्यग्दृष्टी होय ।
चौथे अरु पुनि बारवें, गुण थानकलों सोय[2] ॥ ४ ॥
परमातम पद ब्रह्म को, प्रगट्यो शुद्ध स्वभाय ।
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिन में आय ॥ ५ ॥

१—आत्मा का स्वरूप । २—स्वभाव ।

बहिरातमा स्वभाव तज, अंतरातमा होय।
परमातमपद भजत है, परमातम है सोय ॥ ६ ॥
परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय।
परमातम को ध्यावतें, यह परमातम होय ॥ ७ ॥
परमातम यह[1] ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश।
परसों भिन्न निहारिये, जोई अलख[2] सोई ईश[3] ॥ ८ ॥
जो परमातम सिद्ध में सो ही या तन माहिं।
मोह मैल दृग[4] लागि रह्यो, तातैं सूझै नाहिं ॥ ९ ॥
मोह[5] मैल रागादि को जा छिन[6] कीजै नाश।
ता छिन यह परमातमा, आपहिं लहै प्रकाश ॥ १० ॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध।
बीच की दुविधा[7] मिट गई, प्रगट भई निज रिद्ध ॥ ११ ॥
मैंही सिद्ध[8] परमातमा, मैं ही आतमराम।
मैं ही ज्ञाता[9] ज्ञेय[10] को, चेतन मेरो नाम ॥ १२ ॥
मैं अनंत सुख को धनी, सुखमय मोर[11] स्वभाव[12]।
अविनाशी आनंदमय, सो हौं त्रिभुवन राय ॥ १३ ॥
शुद्ध हमारो रूप है शोभित सिद्ध समान।
गुन अनंतकर संजुगत[13], चिदानंद भगवान ॥ १४ ॥

१—देखें। २—अरूपी वर्ण गंध रस स्पर्श रहित ज्ञानस्वरूप। ३—श्रेष्ठ तत्व आत्मा। ४ दर्शनशक्ति देखने की ताकत को। ५—विपरीत बुद्धि–मित्यात्व मोहनीय। ६—क्षण, समय। ७—जड़ और चेतन मिलकर चौरासी लख जीवायोनी में अशुद्ध अवस्था होती है वह। ८—अनंत ज्ञान दर्शन। सुख शक्तिरूप चार गुण। ९—जानने वाला। १०—जाना जाय सो सर्व जड़ चेतन। ११—मेरा। १२—स्वभाव। १३—सहित।

जैसो शिव[1] खेतहि वसै, तैसो या तन माहिं।
निश्चय दृष्टि निहारतें, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ १५ ॥
कर्मनके संयोगतें, भये तीन प्रकार।
एक आतमा द्रव्य को, कर्म नचावनहार ॥ १६ ॥
कर्म संघाती आदिके, जोर न कछू बसाय।
पाई कला विवेक[2] की, राग द्वेष विन जाय ॥ १७ ॥
कर्मन की जर[3] राग है, राग जरे[4] जर जाय।
प्रगट होत परमातमा, 'भैया' सुगम उपाय ॥ १८ ॥
काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होनके काज।
राग द्वेष को त्याग दे, 'भैया' सुगम इलाज ॥ १९ ॥
परमातम पद को धनी, रंक भयो विलकाय।
राग द्वेष की प्रीति सों, जनम अकारथ[5] जाय ॥ २० ॥
राग द्वेष की प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच।
परमातम पद ढांकके, तुमहि किये तिरजंच[6] ॥ २१ ॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं।
राग द्वेष के जागतें[7], ये सब सोये जाहिं ॥ २२ ॥
राग द्वेष के नासतें, परमातम परकाश।
राग द्वेष के भासतें, परमातम पद नाश ॥ २३ ॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार।
देख सयोगी स्वामि को, अपने हिये विचार ॥ २४ ॥
लाख बात की बात यह, तोकों देह बताय।
जो परमातम पद चहै, राग द्वेष तज भाय ॥ २५ ॥

१—मोष में सिद्ध जीव। २—भेद ज्ञान। समकित। आत्मदर्शन। स्वानुभूति। ३—जड़ मूल। ४—नाश होने से। ५—जीव। ६—देव मनुष्य से अनंत गुना काल तिर्यंच मे रहना पड़ता है जिससे। ७—जागे तो।

रागद्वेष के त्यागविन, परमातम पद नाहिं।
कोटि कोटि जप तप करो, सबहि अकारथ जाहिं ॥२६॥
दोष आतमा को यह है, रागद्वेष के संग।
जैसे पास मजीठ के, वस्त्र और ही रंग ॥ २७ ॥
तैसें आतम द्रव्य को, रागद्वेष के पास।
कर्म रंग लागत रहे, कैसें लहे प्रकाश[1] ॥ २८ ॥
इन कर्मन को जीतिवो, कठिन बात है मीत।
जड़ खोदे विन नहिं मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥ २९ ॥
[2]लल्लोपत्तो के किये, ये मिटवे के नाहिं।
ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं ॥३०॥
ज्यों दारू के गंज को, नर नहिं सकै उठाय।
तनक आग संयोगतैं, छिन इक में उड़िजाय ॥ ३१ ॥
देह सहित परमातमा, यह अचरज की बात।
राग द्वेष के त्याग तैं, कर्मशक्ति जरजात ॥ ३२ ॥
परमातम के भेद द्वय, निकल[3] सकल[4] परमान।
सुख अनंत में एक से, कहि वेको द्वय थान ॥ ३३ ॥
'भैया' वह परमातमा, सोही[5] तुममें आहि।
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो[6] वेग ही ताहि ॥३४॥
रागद्वेष को त्याग के, धर परमातम ध्यान।
ज्यों पावे सुख संपदा, 'भैया' इम कल्यान ॥ ३५ ॥
संवत् विक्रम भूप को, सत्रह से पंचास।
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुतिजास * ॥३६॥

१—निग्र। २—टालटूल, सामान्य उपाय।
३—सिद्ध। ४—अरिहंत। ५—वही। ६—देखो।
* "ब्रह्म-विलास" में से साभार उद्धृत

सफल-जीवन।

(ले० पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ)

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की पहिली गाथा का भावार्थ

एक तरह से जीवन मिलना महँगा नहीं है। प्राणी को मरने के बाद बिना किसी टके पैसे के जीवन मिल ही जाता है। इस प्रकार का जीवन जितना सस्ता है सफल-जीवन उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक महँगा है। लाखों मनुष्यों में एकाध ही अपने जीवन को सफल बना पाता है। जीवन मिलना सरल है परन्तु जीवन की सफलता के साधन मिलना मुश्किल है। उत्तराध्ययन में चार बातें दुर्लभ बतलाई गई हैं जो कि जीवन की सफलता के लिये आवश्यक कही जा सकती हैं।

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मिय वीरयं।

प्राणी को चार कारणों का मिलना बहुत मुश्किल है। मनुष्यत्व, शास्त्रज्ञान, श्रद्धा और संयम पालन करने की शक्ति।

मनुष्यपर्याय के विषय में जब हम विचार करते हैं तब इसकी दुर्लभता को देखकर हमें चकित होजाना पड़ता है। मुट्ठीभर मनुष्यों के सिवाय संसार में अनन्त जीवराशि पड़ी हुई है। आज वैज्ञानिक लोग भी इस बात को मानते हैं कि पानी की ज़रासी बूंद में भी करोड़ों जीव पाये जाते हैं। इन सब पर्यायों को छोड़ कर कीड़े मकोड़े पशुपक्षी आदि के शरीरों से बचकर मनुष्य होजाना कितना मुश्किल है।

लेकिन यहां पर सिर्फ मनुष्यपर्याय की ही दुर्लभता नहीं

बतलाई गई है। किन्तु मनुष्यत्व की दुर्लभता बतलाई गई है। मनुष्यभव पाजाना एक बात है और मनुष्यत्व प्राप्त करलेना दूसरी बात है। जानी हुई दुनियां में मनुष्य तो करीब १॥ अर्ब हैं परंतु मनुष्यत्ववाले मनुष्यों की गिनती अगर की जाय तो वह अंगुलियों पर की जा सकेगी। इसीलिये शास्त्र में मनुष्यभव की दुर्लभता की अपेक्षा मनुष्यत्व की दुर्लभता का कथन किया है। यह बात बड़े मार्के की है।

सच है, मनुष्यभव पाजाने पर भी अगर मनुष्यत्व प्राप्त न किया तो मनुष्यजीवन किस काम का? परंतु यहां पर प्रश्न यह है कि मनुष्यत्व आखिर है क्या? जिसे न पाने पर मनुष्य-जन्म ही व्यर्थ माना जाता है।

मनुष्यभव मिलने पर मनुष्य का आकार मिलता है परंतु मनुष्यत्व के लिये आकार की नहीं किन्तु गुणों की आवश्यकता है। एक कवि का कहना है कि जब तक गुणियों के भीतर मनुष्य की गणना न हो तब तक उसकी माता पुत्रवती ही नहीं है।

'गुणिगणगणनारंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम॥ १॥

अर्थात् गुणी लोगों की गिनती करते समय जिसके नाम पर अंगुली न रक्खी गई अर्थात् जिसका नाम न लिया गया उस पुत्र से अगर कोई माता पुत्रवती कहलावे तो कहिये वन्ध्या किसे कहेंगे?।

इससे साफ मालूम होता है कि श्रेष्ठ गुणों को धारण करनेवाला ही मनुष्य है। बाकी वो मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्याकार प्राणी हैं।

मनुष्य शब्द का एक अर्थ यह भी किया जाता है कि "मनु" की संतान है वह मनुष्य है। यद्यपि मनु की संतान सभी हैं लेकिन मनु की संतान होने का गौरव धारण करने वाले थोड़े हैं। सच्ची संतान तो वही है जो अपने पूर्व पुरुषों का गौरव धारण कर सके। मनु उन्हें कहते हैं जो युग निर्माण करते हैं। अर्थात् समाज की गिरी हुई हालत को उठा कर युगान्तर उपस्थित कर देते हैं। जैन-शास्त्रों में मनुओं का (कुलकरों का) जो उल्लेख मिलता है उस से साफ मालूम होता है कि उनने युग (कर्मभूमि) की आदि में समाज की आवश्यकता को पूर्ण किया था। आज भी जो मनुष्य, समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है समाज में युगान्तर उपस्थित करता है वह मनुष्य है, वही मनु की सच्ची सन्तान है।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में इतनी शक्ति या योग्यता नहीं हो सकती। फिर भी प्रत्येक मनुष्य मनु की संतान होने के गौरव की रक्षा कर सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही मनुष्य युगान्तर उपस्थित कर दे। इमारत सरीखे साधारण कार्य को भी एक ही कारीगर नहीं बना पाता फिर युगान्तर उपस्थित करना तो बड़ी बात है। हां! इतना हो सकता है कि हम उसके लिये कुछ भी कर गुज़रें। अगर हम एक ईंट भी जमा सके तो भी कार्यकर्ता कहलायेंगे। मनु का कार्य कर सकेंगे। यही तो मनुष्यत्व है।

एक दूसरा कवि मनुष्यत्व का विवेचन इन शब्दों में करता है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च। सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ॥
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो। धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चारों बातों में तो मनुष्य पशु के समान ही है । मनुष्य में अगर कोई विशेषता है तो धर्म की है । जिस मनुष्य में धर्म नहीं है वह पशु के समान है ।

मतलब यह है कि इस कवि ने मनुष्यत्व का चिह्न रक्खा है धर्म, जो मनुष्य धर्म को धारण कर सका वही सच्चा मनुष्य है । धर्म का विषय बहुत गहरा और विस्तीर्ण है । उसके ऊपर तो कई स्वतंत्र लेख लिखे जा सकते हैं इसलिये धर्म के विषय में हम यहां अधिक कुछ न कहेंगे । परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि धर्म का मूल सचाई है । 'सचाई' का संस्कृत पर्यायवाची शब्द है 'सम्यक्त्व' । सम्यक्त्व से ही मनुष्यत्व है और मिथ्यात्व से ही पशुत्व है, एक कवि ने सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की महिमा को थोड़े में ही बता दिया है—

> नरत्वेपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतस. ।
> पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्त चेतना: ॥

अर्थात् जिनका चित्त मिथ्यात्व से दूषित होगया है वे मनुष्य होकर भी पशु हैं और जिनका आत्मा सम्यक्त्व से निर्मल होगया है, वे पशु होकर भी मनुष्य हैं । इससे साफ़ मालूम होता है कि मनुष्यत्व का ठेका सिर्फ़ मनुष्यों को ही प्राप्त नहीं है । और मनुष्य होने से ही मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो जाता । पशुओं में भी ऐसे पशु होते हैं जिन्हें हम मनुष्य कह सकते हैं । और मनुष्यों में भी ऐसे प्राणी होते हैं जिन्हें हम पशु कह सकते हैं इससे मालूम होता है कि मनुष्य होने पर भी मनुष्यत्व मिलना मुश्किल है । इसीलिये उत्तराध्ययन की गाथा

में चार दुर्लभों में सबसे पहिली दुर्लभ वस्तु मनुष्यत्व बतलाई गई है, वहां पर मनुष्यभव न लिखकर जो मनुष्यत्व लिखा गया है उसने अर्थ को बहुत गम्भीर बना दिया है। सफल-जीवन बनाने के लिये यह सबसे पाहिली शर्त है।

जो इस पाहिली शर्त को पूर्ण कर सका वह आगे की तीन शर्तों को भी पूर्ण कर सकेगा। सच पूछा जाय तो आगे की तीन शर्तें, मनुष्यत्व के ही पूर्ण विकाश के लिये हैं।

दूसरी शर्त है शास्त्रज्ञान। यों तो शास्त्रज्ञान होना सरल है। दश पांच वर्ष रखड़ते रखड़ते सभी विद्वान् बन जाते हैं। बात बात में धर्म २ चिल्लाना आता है। परंतु सच्चा शास्त्रज्ञान, धर्म के रहस्यों के पहिचानने की योग्यता मुश्किल है। जैनशास्त्र के ज्ञानका सार इतना ही है कि "धर्म आत्मा में है बाहर नहीं"। धर्म न तो मंदिरों में है न मसजिदों में, न तीर्थों में, न पोथियों में, वह तो अपनी आत्मा में है। लोगों ने धर्म का आधार शरीर मान लिया है। जाति और कुल को धर्म का ठेकेदार बना दिया है। वे हाड़ मांस के शरीरों में भी छूत अछूत का विचार करते हैं यही तो मिथ्याज्ञान है। सैकड़ों पोथों को निगल जाने पर भी जिसने अपनी आत्मा की शक्ति को न पहचाना, शरीर की शुद्धि अशुद्धि के पीछे ही पड़ा रहा वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो तो भी सम्यग्ज्ञानी नहीं कहा जा सकता।

जैनशास्त्रों में सब से बड़ी विशेषता यही है कि वह बाहिरी क्रियाकांडों में धर्म का अस्तित्व नहीं मानता; जिसने इतनी बात समझ ली उसने समस्त शास्त्रों का सार पालिया। शास्त्र

उदारता का भंडार है, पापियों को देखकर जो घृणा न करके दया करता है, विरोधी के साथ भी जो मित्र कैसा वर्ताव करता है। जो सहनशीलता का घर है, वही संयमी है, वही साधु है। वही जगत् के लिये प्रातःस्मरणीय है। परंतु ऐसा संयम मिलना मुश्किल है। तपस्या का भेप धारण करने वाले (साधु) भारत में करीब ६० लाख व्यक्ति हैं उनमें ऐसे कितने हैं जिनकी कपायें पानी में खींची गई लकीर के समान शीघ्र ही विलीन होजाती हों। जिनमें सच्चा त्याग और सच्ची उदासीनता हो? ऐसे व्यक्ति अंगुलियों पर नहीं तो अंगुलियों के पोरों पर ज़रूर गिने जा सकते हैं इसीलिये उत्तराध्ययन में संयम को दुर्लभ कहा है।

इन चार दुर्लभ वस्तुओं को जो पा सका है उसीका जीवन सफल है। *

(जैनप्रकाश)

---

* इस लेख के संग्रह करने के लिये जैन-प्रकाश व पंडितजी ने सहर्ष अनुमति दी है, जिसके लिये हम आपका उपकार मानते हैं।

—व्यवस्थापक.

विद्वान् मुनिवरों के अभिप्राय।

पूज्यपाद उपाध्यायजी आत्मारामजी महाराज लुधियाना (पंजाब) से लिखाते हैं कि आपके भेजे हुए "समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर अर्थात् मोक्ष की कुंजी भाग पहिला" और "भाव अनुपूर्वी" दोनों ग्रन्थ आद्योपान्त पढ़े। ये दोनों ग्रन्थ उत्तम शैली से लिखे गये हैं। जैन-सिद्धान्त प्रचलित भाषा में लेखक ने दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की है और वह अपने कार्य्य में सफल भी होगया है अगर इसी प्रकार के ग्रन्थ साहित्यप्रेमियों को अर्पण किये जायँ, आशा की जाती है कि जैन-साहित्य उनके हृदयों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगा, किन्तु जहां तक बन सके सिद्धान्त के दिखाने का ही उद्देश्य रक्खा जाय परंतु निन्दा और खंडन मंडन आदि कलहों से यह माला पृथक् रहेगी तो समाज में शीघ्र उन्नत दशा को प्राप्त कर लेगी।

कच्छी पंडित मुनि श्री त्रिलोकचन्द्रजी महाराज श्री पालनपुर, धानेरा से अपना अभिप्राय देते हैं कि—उत्तम पंक्तिनुं पण ज़रूरी नुं, गंभीर पण सरल, विवेचनात्मक पण सिद्धान्तवर्त्ति, विविध पण सचोट, लोकरुचि ग्राह्य पण तत्त्वग्राही अपक्ष-पक्षपात रहित पण आत्म धर्मना निगूढ़ भावो उकेलातुं, अपूर्व पण सश्रुत, साहित्य कोने अभिनंदनीय वर्धनीय, ग्राह्य अने सन्माननीय न होय? अर्थात् सर्व विवेकशील सज्जनों ने तो होयज, तमारा तरफ थी प्रकट थतुं साहित्य अनुक्रमे उत्तरोत्तर विशाल पण वर्धमान परिणामी हो अने तेनो तथा रूप लाभ लेनार वर्ग महावीर भावी हो। मोकलेल बे बुको (मोक्ष की कुंजी भाग १, भाव-अनुपूर्वी) नो आदर करूं छुं। प्रयास स्तुत्य छे। भाषा योग्य छे। वधारे सबळ प्रयत्ननी अपेक्षा रहे छे।

उत्तम साहित्य अमूल्य या अल्प मूल्य पर प्राप्त करो.

जिस देश में उत्तम साहित्य का प्रचार होता है वह देश सब प्रकार के दुःखों से छूटकर सकल सुख प्राप्त कर सकता है। जिस दिन भारत देश में स्त्रियें, बालक, वृद्ध, किसान आदि सब उत्तम साहित्य का पठनपाठन करते थे उस दिन भारत विद्या, बल, समृद्धि और सदाचार में सर्वोत्कृष्ट देश कहलाता था। आज उसी देश की संतान धर्मकलह, जातिबंधन, कुरूढियाँ, कुरीतियों, अयोग्यता, कुव्यसन, अनेक रोग, प्रमाद, अविद्या, ईर्षा आदि से दुखी होरही है। इस अवस्था में सुधार करने का एक उपाय उत्तम शिक्षा का प्रचार करना है और उसका एक अंग उत्तम सस्ता साहित्य है। इसी हेतु की यत्किंचित् सिद्धि के लिए "आत्म-जागृति कार्यालय" खोला गया है।

आरोग्यशिक्षा, बालोपयोगी, स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार, नीति और तत्वज्ञान की उत्तम पुस्तकें त्यागी व उत्तम गृहस्थ लेखकों से लिखवाकर अमूल्य व अल्प मूल्य पर खूब प्रचार करना इस कार्यालय के मुख्य ध्येयों में से एक है। इसकी सफलता उपकारी लेखकों की कृपा, अर्थदाता साहित्य-प्रचार प्रेमियों की सहानुभूति और स्वयंसेवक अध्ययन प्रेमी सज्जनों के उत्साह पर निर्भर है। आशा है हमारा यह निवेदन स्वीकार किया जावेगा। पुस्तक-माला के अर्थदाता तथा सेवाभावी दो प्रकार के ग्राहक हैं। सब पुस्तकों का वार्षिक मूल्य पोस्टेज सहित केवल ३)

विशेष विवरण के लिए पत्र-व्यवहार करें—

व्यवस्थापक, आत्मजागृति कार्यालय बगड़ी

(मारवाड़) वाया सोजत

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीमंगलीक स्तवन संग्रह

पहिला भाग ।

संग्रहकर्त्ता :—

धर्मचन्दजी सेठीया तत्पुत्र भैरोंदान सेठीया

मोहल्ला मरोटीयांकी गवाड़,

बीकानेर—राजपुताना

(देश—मारवाड़)

Bhairodan Sethia

Moholla Marotian,

BIKANER. (Rajputana)

J. B. Ry. Marwar.

प्रथमावृत्ति	वीर सम्वत् २४४७
	विक्रम ,, १९७७
१००० प्रति	ई० सन् १९२१

उत्तम साहित्य अमूल्य या अल्प मूल्य पर प्राप्त करो.

जिस देश में उत्तम साहित्य का प्रचार होता है वह देश सब प्रकार के दुःखों से छूटकर सकल सुख प्राप्त कर सकता है। जिस दिन भारत देश में स्त्रियें, वालक, वृद्ध, किसान आदि सब उत्तम साहित्य का पठनपाठन करते थे उस दिन भारत विद्या, वल, समृद्धि और सदाचार में सर्वोत्कृष्ट देश कहलाता था। आज उसी देश की संतान धर्म कलह, जातिबंधन, कुरूढियों, कुरीतियों, अयोग्यता, कुव्यसन, अनेक रोग, प्रमाद, अविद्या, ईर्षा आदि से दुखी होरही है। इस अवस्था में सुधार करने का एक उपाय उत्तम शिक्षा का प्रचार करना है और उसका एक अंग उत्तम सस्ता साहित्य है। इसी हेतु की यत्किंचित् सिद्धि के लिए "आत्म-जागृति कार्य्यालय" खोला गया है।

आरोग्यशिक्षा, वालोपयोगी, स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार, नीति और तत्वज्ञान की उत्तम पुस्तकें त्यागी व उत्तम गृहस्थ लेखकों से लिखवाकर अमूल्य व अल्प मूल्य पर खूब प्रचार करना इस कार्यालय के मुख्य ध्येयों में से एक है। इसकी सफलता उपकारी लेखकों की कृपा, अर्थदाता साहित्य-प्रचार प्रेमियों की सहानुभूति और स्वयंसेवक अध्ययन प्रेमी सज्जनों के उत्साह पर निर्भर है। आशा है हमारा यह निवेदन स्वीकार किया जावेगा। पुस्तक-माला के अर्थदाता तथा सेवाभावी दो प्रकार के ग्राहक हैं। सब पुस्तकों का वार्षिक मूल्य पोस्टेज सहित केवल ३)

विशेष विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें—

व्यवस्थापक, आत्मजागृति कार्यालय दगड़ी

(मारवाड़) वाया सोजतरोड

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीमंगलीक स्तवन संग्रह

पहिला भाग ।

संग्रहकर्त्ता :—

धर्मचन्दजी सेठीया तत्पुत्र भैरोंदान सेठीया

मोहल्ला मरोटीयांकी गवाड़,

बीकानेर—राजपुताना

(देश—मारवाड़)

Bhairodan Sethia

Moholla Marotian,

BIKANER. (Rajputana)

J. B. Ry. Marwar.

प्रथमावृति — १००० प्रति

वीर सम्वत् २४४७
विक्रम ,, १९७७
ई० सन १९२१

❀ श्रीवीतरागाय नमः ❀

श्रीमंगलीक स्तवन संग्रह

पहिला भाग।

संग्रहकर्त्ता :—
धर्मचन्दजी सेठीया तत्पुत्र भैरोंदान सेठीया
मोहल्ला मरोटीयांकी गवाड,
बीकानेर—राजपुताना
(देश—मारवाड़)

Bhairodan Sethia
Moholla Marotian,
BIKANER (Rajputana)
J B Ry Marwar.

प्रथमावृत्ति
१००० प्रति

वीर सम्वत २४४७
विक्रम ,, १९७७
ई० सन् १९२१

॥ दुहा ॥

केवल ज्ञानीको सदा, वन्दु वेकर जोड़ ॥
गुरु मुखसें धारण करो, अपनें जिदको छोड ॥१॥
जिन वचन तह मेव सत्य, सम भाव नहीं ताण ॥
जतनासें वांचो सही, येही प्रभुको वाण ॥ २ ॥

॥ सूचना ॥

ये पुस्तक जतनासें रखे, आदसें अन्त तांई वाचे, उघाड़े मुख तथा चिरागके चानणे न वांचे; पद अक्षर ओछो अधिको आगो पाछो. तथा कानो मात, मिंडी, ह्रस्व, दीर्घ अशुद्ध या टुटी भाषामें लिख्यो हुवो विद्वान सुधार लेवें प्रसिद्धकर्ताकी नम्र विन्ति है ।

अनुक्रमणिका।

अणुपूर्व्वि

गणनेरी विधि ।

१ छे वहां णमो अरिहंताणं बोलणो ।
२ ,, ,, ,, सिद्धाणं ,,
३ ,, ,, ,, आयरियाणं ,,
४ ,, ,, ,, उवज्झायाणं
५ ,, ,, ,, लोए सव्व साहुणं ,,

१					२					३			
१	२	३	४	५	१	२	४	३	५	१	३	४	२
२	१	३	४	५	२	१	४	३	५	३	१	४	२
१	३	२	४	५	१	४	२	३	५	१	४	३	२
३	१	२	४	५	४	१	२	३	५	४	१	३	२
२	३	१	४	५	२	४	१	३	५	३	४	१	२
३	२	१	४	५	४	२	१	३	५	४	३	१	२

४			
३	४	१	५
२	४	१	५
४	३	१	५
२	३	१	५
४	२	१	५
३	२	१	५

५				
१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

६				
१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

७			
३	५	२	४
१	५	२	४
५	३	२	४
१	३	२	४
५	१	२	४
३	१	२	४

८				
२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

९				
१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

१०			
२	५	४	३
१	५	४	३
५	२	४	३
१	२	४	३
५	१	४	३
२	१	४	३

११				
१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

१२			
२	४	५	१
४	२	५	१
२	५	४	१
५	२	४	१
४	५	२	१
५	४	२	१

१३			
३	४	५	२
१	४	५	२
४	३	५	२
१	३	५	२
४	१	५	२

१४				
१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२

१५			
१	४	५	३
४	१	५	३
१	५	४	३
५	१	४	३
४	५	१	३

१६				
३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

१७				
२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

१८			
२	३	५	४
३	२	५	४
२	५	३	४
५	२	३	४
३	५	२	४
५	३	२	४

१९				
२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
३	५	२	३	१
५	४	२	३	१

२०				
३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१

❀ श्री वीतरागाय नमः ❀

मंगलिक स्तवन संग्रह ।

ॐकारं बिन्दुःसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदंचैव ॐकाराय नमोनमः ।

॥ व्याख्यान के प्रारंभ की स्तुती ॥

कोर हेमा चलसें निकसी, गुरु गौतम के श्रुत कुंड ढली है । मोह माहा चल भेद चली, जग की जड़ता सब दूर करी है ।। ज्ञान पयो दधि मायरली, बहू भग तरंगन से उछली है । तासुची सारद गंग नदी, प्रणमो अंजली निजसीसधरी है ।। ज्ञान सुनिर भरी सलिलॉ, सुरध्येनू प्रमोद सुवीर निध्यानी । कर्म जो व्याधि हरन्त सूधा, अग मेल हरन्त शीवा करमानी ।। जैन सिधांत की ज्योति, बडी सुरदेव स्वरूप-माहा सुखदानी । लोक अलोक प्रकाश भई, मुनि राज वखानत है जिन वानी ।। सोभित देव, विपे, मघवा,

उडुवृन्द विषे शशी मंगलकारी । भूप समूह विषे वली, चक्र पती प्रगटे बल केसव भारी ॥ नागीन मे धरणेंद्र वडो, अरु हे असुरीनमें चमरइन्द्र अवतारी । ज्यु जिन शाशन संघ विषे, मुनिराज दीपे श्रुत ज्ञान भण्डारी ॥

केसे कर केतकी कणेर एक कहियो जाय, आक दुध गाय, दुध अन्तर घणेरो है । रिरी होत पीरी पण होंस करे कचनकी कहां काग वानी कहां कोयल की टेर है ॥ कहां भान तेज भयो, आगीयो विचारो कहां पूनम को उजवाळो कहां । अमावस अन्धेरो है, पक्ष छोड़ 'पारखी' निहाल देख लिगा कर जेन वन और वैन ॥ अन्तर घणेरो है वीतराग वानी, साचो मोक्ष को निशानी । माहा सुकृतकी खानी, ज्ञानी आप मुख वखानी है । इनको आराधके तिरोया है अनन्त जीव, सोही निहाल जाण सरधा मन आणी है । सरधा है सार धार सरधा से खेवो पार, सरधा बिन जीव खुवार निश्चेही कर मानी है ॥ वाणी ता घणेरी पण वीतराग तुल्ये नहीं, इनके सिवाय और छोरासी कहानी है ॥

॥ पांच पदांरी वंदणा लिख्यते ॥

प्रथम नवकार ।

णमो अरिहन्ताणं ॥ णमो सिद्धाणं ॥ णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं ॥ णमो लोए सव्व साहुणं ॥ णमो पं

मुक्कारो ॥ सव्वपावप्पणासणो ॥ मंगलाणंच सव्वेसिं ॥ पढमंहवइ मगलं ॥

पहिले पद श्रीअरिहतजी ते बीस तीर्थंकरजी, उत्कृष्टा एकसो सित्तर देवाधिदेवजीते मांहि वर्तमानकाले बीस वेहरमानजी माहाविदेह खेत्रमांहि विचरे छै, एक हजार आठ लक्षणनाधरणहार, चोतीस अतिशय, पेतीस वाणी करी विराजमान, चोसट इन्द्रना वंदणीक, अठारे दोष थकी रहित, बारे गुणे करी सहित, अनन्तो ज्ञान, अनन्तो दर्शन, अनन्तो चारित्र, अनन्तो बल, अनन्तो सुख, दिव्य ध्वनि, भामण्डल, स्फाटिक सिहासंण, अशोकवृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्रधरे, चंवरविंजे, जघन्य तोदोय क्रोड़ केवली, उत्कृष्टा नवक्रोड़ केवलि, केवल ज्ञान केवल दर्शननाधरणहार, सर्व द्रव्यक्षेत्र काल भावना जाणणहार ॥सवैया॥ नमुं श्री अरिहंत, करमाको कीयो अन्त, हुवा सो केवलवन्त, करूणा भण्डारो है ॥ अतीसे चोतीसधार, पेतीसवाणी ऊचार, समजावे नरनारी परउपकारो है । शरीर सुन्दरकार, सुरज सो झलकार, गुण हे अनन्त सार, दोष परिहारी है ॥ केत है तिलोकरिख, मनवचकाया करी, लुलो २ वारवार वंदणा हमारी हें ॥ १ ॥ एसा अरिहंत भगवंत दीनदयाल महाराज को अविनय असातना, देवास सबधि कोधी होय तो हाथ जोड़ी मान मोड़ी, काया सकोडी वारंवार खमाउं छु मथेणवदामि नमस्कार करूं छुं १००८ वार "तिखुतो आयाहिणं पायाहिणं वदामि नमं सामि सक्कारेम सम्माणमि कल्याणं मंगलं देवय चेइयं पमुवासामि" आप

मंगलीकछो, उत्तमछो, हो स्वामीनाथ आपको इणभवे परभवे भवेभव सदा काल सरणो होय जो ॥

। इति प्रथम पद संपूर्ण ।

(२) बीजेपद अनन्त भेदे अनन्ता सिद्ध छे, आठ कर्म खपावीने मोक्ष पहुंता छे, तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा, तीर्थंकर सिद्धा, अतिर्थंकर सिद्धा, स्वयंबुद्धसिद्धा, प्रत्येक बुद्धसिद्धा, बुद्धबोधि सिद्धा, स्त्रीलिङ्गसिद्धा, पुरुषलिङ्गसिद्धा, नपुंसकलिङ्ग सिद्धा, स्वलिङ्गसिद्धा, अन्यलिङ्गसिद्धा, गृहस्थलिङ्ग सिद्धा, एकसिद्धा, अनेकसिद्धा, जठे जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, सोग नहीं, दुःख नहीं, दालिद्र नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नही, जोतमे जोत विराजमान, सकल कारज सिद्ध करीने चवदे प्रकारे पनरे भेदे अनन्ता सिद्ध भगवन्त हुवा, अनन्त सुखामें मलालीन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायक समकित, निराबाद अटल अवगाहणा, अमूर्ता अगुरुलघु, अनन्तवीर्य्य आठगुणे करी सहित ॥ सवैया ॥ सकल करमटाल, वस करलीयो काल, मुगतिमें रहिया माल, आतमा को तारीहे ॥ देखत सकल भाव, हुवाहे जगत राव, सदाहीखायक भाव, भय अविकारी हे ॥ अचल अटल रूप, आवे नहीं भवकूप अनुप सरूप उप, एसे सिद्धधारी हे ॥ केतहे विलोकरिख ॥ बतावो एवास प्रभु, सदाही उगते गृरबन्दणा हमारी हे ॥२॥ एसा सिद्ध भगवनजी महाराज आपको अविनय

असातना कीधी होय तो (देवसि संबंधि) हाथ जोडी मान मोडी कांया संकोडी बारंवार खमाउं छुं, मथेण वन्दामि नमस्कार करू छु १००८ वार "तिखोत्तो" जावत भवेभव सरणों हो जो।

। इति बीजो पद सम्पूर्णम्।

(३) तीजे पदे आचारजजी छत्तीस गुणेकरी विराजमान, पांच महाव्रत पाले, पांच आचार पाले, पांच इन्द्री जीते, चार कषाय टाले, नव वाड़ शुद्ध ब्रह्मचर्यना पालणहार, पांच सुमिते सुमता, तीन गुप्तेगुप्ता, आठ सपदा सहित ॥ सवैया ॥ गुणहे छत्तीस पूर, धरत धरम ऊर, मारत करम कूर सुमति विचारी हे शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर हे रूपकन्त, भणीया सबी सिद्धन्त, वाचणी सु प्यारी है ॥ अधीक मधूरवेण, कोइ नहीं लोपे केण, सकल जीवोका सेण, कीरत अपारी है ॥ केतहे तिलोकिरीख, हितकारी देत सीख, एसे आचारज ताकुं, वन्दणा हमारी है ।१। एसा आचारज न्यायपक्षी, भद्रिक परणामी, परम पूज्य, कलपनीक, अचित्त वस्तुका ग्रहणहार, सचित्त का त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणका अनुरागी, सोभागी. एहवा श्री आचारजजी महाराज आपको अविनय असातना (देवसिसंबधी) कीधी होय तो हाथ जोड़ी मान मोड़ी काया संकोड़ी वारंवार खमाउं छुं मथेण वन्दामि नमस्कार करूं छं १००८ वार "तिखुत्तो" जावत भवे भव सरणो हो जो।

॥ इति तीजोपद सम्पूर्णम्।

(४) चोथो पद उपाध्यायजी पचीस गुणे करी सहित छे ते पचीस गुण केहवा छे ? इगियारा अंगना भणणहार श्री आचारंगजी, सुयगड़ायंगजी, ठाणांयंगजी, समवायंगजी, भगवतीजी, ज्ञाताधर्मकथाजी, उपासकदसांगजो. अन्तगडदसाजी, अनुत्तरोवाइजी, प्रश्नव्याकारणजी विपाकसूत्र। एइग्यारा अगनो अर्थ पाठ सम्पूर्ण जाणे, अने (१४ पूर्व) उत्पाद पर्व, अग्राणीयपूर्व, वीर्यप्रवादपूर्व असितनास्तिप्रवादपूर्व ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, विद्याप्रवाद, पच्चखाणप्रवाद, प्राणप्रवाद, अवंध्यप्रवाद, क्रियाविशालपूर्व, लोकविन्दुसार पूर्व, । इग्यारा अंग, चाउदेपूर्व एमूल २५ गुणे करी विराजमान, तथा उत्तर (१२ उपांग भणेते) उववाइ, रायप्रसेणी, जिवाभिगम, पन्नवणा, जंबुदीप पन्नती, चंदपन्नती, सुरज पन्नती, नीरावलिया, कप्पविडंसीया, पुफिया, पुफचुलिया, वन्हि दिशा, (४ मूल सूत्र) उत्राध्ययन, दसवैकालिक, नंदीसूत्र, अनुयोग द्वार (४ छेदग्रंथ) दशाश्रुतकंध, वृहत्तकल्प, व्यवहार, निशिथ बत्तीसमो आवसग। आददेइ अनेक ग्रन्थ के न्याय जाणनार, सातनय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण, आदि स्वमत तथा अन्यमत का जाण मनुष्य, देवता कोई पण जेने विवाद मे छल वाने समर्थ नहीं जीण नहीं पण जिण सरिखा, केवलि नहीं पण केवलि सरीखा। सवैया। पढ़त इग्यारा अंग, करमासुंकरे जंग, पाखंडी को मान भंग, करण हुसियारी है। चवदा पूरवधार, जाणत आगम सार, भवीनके सुखकार, अमता निवारी है. पढावे सवोक जन,

थीर कर देत मन, तप करी तयेतन, ममता निवारी है। केतहै तिलोकरिख, ग्यान भानु परतिख, ऐसे उपाध्याय ताकुं, यंदणा हमारा है ।१। एसा श्री उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्व रूप अन्धकारनामेटणहार, समकित रूप उद्योतना करण हार धर्म थको डिगता प्राणीने थीर करे, सारए, वारए, धारए, इत्यादिक अनेक गुणे सहित छो, जे एहवा उपाध्यायजी महाराज आपकी अविनय असातना (देवसी संबंधी) कीधी होय तो हाथ जोडी मान मोडी, काया संकोडी, वारम्बार खमावुं छुं मथेण वंदामि नमस्कार करूं छुं १००८ वार "तिखुत्तो" जावत "भवेभव सरणो हो जो।"

। इति चोथो पद सम्पूर्णम् ।

(५) पांचमो पद पोतारा धर्म अचारजजी (आठकाणे आप आपका गुरू महाराज को नाम लेणो) आवदेइने जघन्य तो दोय हजार क्रोड साधु साधवी, उत्कृष्टा नव हजार क्रोड साधु साधवी, अढ़ाइ द्वीप पनरे खेत्र में जेवन्ता विचरे छे, ते साधुजी केहवा छे? पांच महाव्रत का पालण हार, पांच इन्द्री का जीतण हार, च्यार कषायना टालणहार, भाव सचे, करण संचे, जोग संचे, खिम्यावन्त, वैराग्यवन्ता, मन समाधारणिया, वयसमाधारणिया काय समाधारणिया नाणसम्पन्ना, दंसण सम्पन्ना, चारित्र सम्पन्ना, वेदणी समा अहिया सनिया, मरणान्ति समा अहिया सनिया, एहवा सत्तावीश गुणे करी सहित, बारे भेदे तपका करणहार, सतरे भेदे संजमना पालणहार, तेत्तीस असातनाको टालन हार, बयाल स दोष टालीने

अहार पाणी का लेवण हार, सेंतालीस दोष टालीने भोगवणहार, बावन अणाचारके टालन हार, तेडीया आवे नहीं, नेतीयाजीमे नहीं, सचित्तकात्यागी अचितका भोगी, बावीस परिसाके जीतणहार, अनेक लब्धिका धरणहार, लोचको करणो, अवाणे चालणो इत्यादिक काय कलेस का करणहार, मोह ममता रहित । सवैया । आदरी संजमभार, करणी करे अपार, सुमति गुपतिधार, विकथा निवारीहे जेणा करे छउ काय, सावद्य नबोले वाय, बुझाइ कषाय लाय, किरिया भंडारी हे। ग्यान भणे आठुं जाम, लेवे भगवन्त नाम, धरमको करे काम ममताका मारी हे । केतहे तिलोक रिख करमाको टाले विष, एसा मुनिराज ताकु वन्दणा हमारी हे । १ । एहवा श्री मुनिराज महाराज आपको अविनय असातना (देवसि संबधी) की धी होय तो हात जोडी, मान मोडी काया संकोडी, वारंवार, खमा वुं छुं मथेण वंदामि नमस्कार करूं छुं १००८ वार "तिखुतो" जावत सदा काल सरणो होय जो ।

। इति पांचमो पद सम्पूर्णम ।

लघु साधु वन्दणा ।

प्रथम चठोया भावसुं, समरु पंच नवकारोए, सुत्र सिद्धान्त च्यांरे सुखवसे चवदे पूरव सारोए. नित्य करू साधुजीने वंदणा ॥ ए आकणी ॥ आणी हरख उमेदोये ॥ सफल करुं सब नरभवो, मिट जाये दुःख खेदोए ॥ नित्य ॥ २ ॥ धारे गुणकरी दीपता, (अतिसय छे चोतीसोए) पेहेले पद जगदीसोए, देव अगधुं ॥

हवा, जीत्यारागने रीसोए ॥ नित्य० ॥ ३ ॥ आठगुण सिद्धांतणा, अतिशय छे इकतीसोए ॥ दोय पदांरा सेवा किया, गुण हुवा पूरा बीसोए ॥ नित्य० ॥ ४ ॥ आचारज तीजे पदे, दीपे गुण छत्तीसोए ॥ उपाध्यायजीने म्हारी वन्दणा, हुयजो अहनिश दीसोए ॥ नित्य० ॥ ५ ॥ दग्यारसांगी सुत्रभवे, आप भण अरु भणावेए ॥ गुण पचीस करी सोभता, त्यांरो सेवा किया सुख पावेए ॥ नित्य० ॥ ६ ॥ गुण सताइस साधनां, वीचरेछे अणगारए त्याने हो जो म्हारी वंदणा, अठयोतरणो धारोए । नित्य० ॥ ७ ॥ एकसो आठ गुणकह्या, नवकरवालीरा पुराए । एकाग्रचित्त समरीए, आखर छे अति रुड़ाए । नित्य० ॥८॥ प्रथम जिनेसर नित्य नमुं, श्रीआदेसरजोरापायोए । सासन सुध प्रवर्त्तायने, मोक्ष नगर सीधायाए । नित्य० । ९ । प्रथम जिनेसर सुत नमुं, एकसो हुवा पुराए । इण भवमुक्ति सिधावीया, करणीकर हुवा सुराए । नित्य० । १० । चोरासीगणधर हुवा, लबधतणा भडारोए । सहस चोरासी शिष्य हुवा, लिधोसंजम भारोए । नित्य० । ११ । तीन लाख शिष्यणी हुइ, त्यामे सहेस चालीस सीवपुर पोहोंताए । तिणमें हुइ चाहू मोटकी, त्यारोतोनाम ब्राह्मीए । नित्य० ॥ १२ । कपिल ब्राह्मण चिंतवे, सोनो लेउं दोय मासाए क्रोड अढ्ढा सु धापी नहीं, तृष्णारा पड़ा तमासाए । नित्य० । १३ । जो (हुवे) इच्छाधारी जालले, बोलेराय नरेसोए । समता पाछी मूकने, लोच्या सिरना केसोए । नित्य० । १४ । मांचसे सील (चोर) प्रती बोधीया, काछो जिनेसरएमोए । कर्म खपावी मुक्ति गया, पाम्या पदवी खेमोए ।

नित्य० । १५ । नेमीराय हुवा मोटका, प्रत्येक बुद्ध श्रीकारोए । छोडीयणी ऋद्धि साहेबी, एक सहस आठ राणीए । नित्य० । १६ । शकेन्द्रतिहां आवीया, करी ब्राह्मणनो रूपोए । दस प्रश्न तिहां पुछीया, सांमलजो तुमे सुपोए । नित्य० । १७ । हेतु कारण कह्या घणा, न्यारा न्यारा भेदोए । उतर दिनो आछीतरे, नहीं आण्यो मनमें खेदोए । नित्य० । १८ । इन्द्र सुण राजी हुया, (हरपित) धन धन आपरी वाणीए । अठेइ आप उतम हुवा, आगे उतम निरवाणीए । नित्य० । १९ । वीर कहे गोतम भणी, सांमलजो तुमे साधोए । पांचु इन्द्रां पायके, रखे (मत) करो परमादोए । नित्य० । २० । वहुश्रुती साधाभणी, होइजो म्हारो नमस्कारोए । ज्यारा गुण कह्यावणा, सोले ओपमा श्रीकारोए । नित्य० । २१ । हरकेसी मुनी मोटका, जात तणा चंडालोए । ज्यांरी सेवा करे देवता, धन छम कायाना प्रतिपालोए । नित्य० । २२ । (जग) यज्ञनेपाढे उठ्या गोचरी, बोल्या विरामण नड्कोए । देवता मीढ आयां पीछे, ज्ञानी घणारी धड्कोए । नित्य० । २३ । हण्या ब्राह्मण तिणसमे, जाणे रीपसर रूठाए । वीनती करी प्रतिलाभीया, पांच द्रव्यतिहां वुठाए । नित्य० । २४ । जातरी कारणको नहीं, करणीरा फल सारोए । हरकेसी मोटा मुनी, पोहतामुक्त संस्कारोए । नित्य० । २५ । चित उपदेश दियो आगने, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति आगेए । पहिला बंध पिण पड़िगयो, पीछे कारी कींसी लागेए । नित्य० । २६ । काची कादामें कलरह्यो, ज्युं थे मुमने जाणोए । चित्त उत्कष्टी करणी आदरी, पहुंता छे निरवाणोए । नित्य० । २७ । इपकार राजा हुवा, घर

कमलावती नारोए। भृगु पुरोहित जसा भारज्या, तेना दोय कुमारोए। नित्य०। २८। छउ ही अनुक्रमे निसर्या, लिधो संजम भारोए। करम खपावी मुक्ते गया, चउदमां अधेन विस्तारोए। नित्य०। २९। संजती आहिडे नीसर्यो, आयो मृगपर आणोए॥ गदमाली गुरु देखने, मनमें घणोही संकाणोए। नित्य०। ३०। खमज्यो अपराध स्वामी मांहरो, हु इण अवसर में चूकोए। कृपा करो हो महामुनो, हु आपरी वाणीरो भुखोए। नित्य। ३१। म्हासु राजा तूं डरपीयो, तोसु डरे घणाजीवोए। सुण हो राजा मोटका, मतीदेवो नरकांरीनीवोए। नित्य०। ३२। सात भय संसार मे; मरण तणो भय भारीए। ऋषीसर कोप्यां पीछे, कोड़ां नर देवे बालीए। नित्य०। ३३। अधिपति राजा तुम भणी, म्हारो भय मती राखोए। थोड़ा जीतवरे कारणे, समता रस तुमे चाखोए। नित्य०। ३४। अथिर छे राजा थारो, आउखो; जीवांने घणाई संतापोए। थारे हो राजा चालसी, साथे पुन्य अरुपापोए॥ नित्य०। ३५। बीजलीरे चमत्कार सुं, जेसोसंभारो वाणोए। (सुरज बीसीजता) डाब आणी जल बींदुवो, जैसो कुञ्जर (हाथी) रो कानोए। नित्य०। ३६। इत्यादिक उपदेस सुणी, छाड़ी भीतरनी गांठोए। पाणी सुणी प्रतिबोधीया, जांणे कोरेघड़े लागी छांटोए। नित्य०। ३७। हयगय रथ पायक दल, सेन्याच्यार प्रकारोए। तेपण राजा छांडने, लीधो संजम भारोए। नित्य०। ३८। संजती राजा प्रतिबोधीया, छोड़ि रथ सग्रामोए। दिख्याए लीधी दीपती, गरु पासे अभिरामोए। नित्य०। ३९। घर छोडीने नीसर्यो, एकल निर्मल

अणगारोए ।। सिंहतणी परे वीचरता, धन छवकायारो प्रतिपालोए ।
नित्य० ॥ ४० ॥ खत्री राज रिपीसर चरचा करी, तार्या घणा नर
नारोए ।। कर्म खपाइ मुक्ते गया, ज्यांरी हु बलीहारोए ।। नित्य० ।
४१ । अनेक चक्रवर्ती नीसर्या, छोडी राज भंडारोए । चोसठ
सहेंस अंतेउरी, दोय दोय वारंगणा (दास्यां) तारोए । नित्य० ।४२।
भरतेसरजी आददे, दस चक्रव्रती सिरदारोए, सुधो संजम पालने
पहुंता मुक्त मंझारोए । नित्य० ।४३। इण सरमणीमांहो हुवा, आठ
राम निरवाणोए । बलभद्र दिख्या आदरी, ब्रह्मलोक सुरजाणीए ।
नित्य० ।४४। करकंडुजी आददे शुद्धी समकित पामीए ।। राय
उदाइ हुवा मोटका, सोला देसना स्वामीए । नित्य० । ४५ । दसारण
भद्र वीरवांदवा, किधी जुलमाइ भारीए ।। रथ सिणगार्या बाजणा,
साथेलीधी पांचसें नारोए । नित्य० । ४६ । में ज्युं किणही नहीं
वांदीया, मनसें एम वीचारीए । सिकदर तिहां आयने, दियो अहं
कार उतारीए । नित्य० । ४७ । ऐरावतने हुकम कियो, हाथी कीया
चोसट हजारोए । एक एक हाथी तणा, मुंडा पांचसो धारोए ।
नित्य० । ४८ । देखा ऋद्धी इन्द्रतणी, चित पाम्यो चमत्कारीए । इहां
तो मान रहे नहीं, हुं लेउं संजम भारोए । नित्य० । ४९ । इन्द्र
आयने वंदणा करी, (राजा) दसारणभद्र पासे आइए । धन धन
मोटा महामुनी, आ ऋद्धी थे छिटकाइए । नित्य० । ५० । मघा पुत्र
मेलो बेठा, दिठा श्रीअणगारोए । जाति समरण पामिया, हेठा
उतर्यो तत्कालोए । नित्य० । ५१ । आय मोताने इम कहे,
हुं तो लेसुं संजम भारोए । उत्तर पड उत्तर बहुला किया, त्यांरी

सुत्रमें विस्तारोए। नित्य० । ५२ । वलता माताजी ईम कहे, तूं छे राजकुमारोए। दिख्या छे वचा दोहिली, जैसी खांडानी धारोए। नित्य० । ५३ । दुख अनता माता में सह्या, नर्क नीगोद मंभारोए। कायर ने माता दोहिलो, सूराने सोहिलोए। नित्य० । ५४ ॥ कोइ कंबर कोइ छांटणो, कोइ कुहाड़े सु छेदेए। मुनीवर समता आणने, राग द्वेष दोय भेदेए। नित्य० । ५५ । लाभे अणलाभे हरख सोग नहीं, इत्यादिक घणा भारीए। कर्म खपाइ मुक्ते गया, ज्यांरी हु वलिहारीए। नित्य० । ५६ । सेणकरी वाड़ी निसर्या, दिठा अनादि मुनीराजए, रूप देखीने इचरज थयो, पुछे सेणक रायए। नित्य० । ५७ । घर छोड़ी क्यु निसर्या, थे क्युं लीधो संजम भारोए। देह थांरी सुकमाल छे, भोगवोए भल (सुख) भोगोए। नित्य० । ५८ । वलता मुनीवर इम कहे, सांभल राजा घातोए। रख्या करे जैसो तूं नहीं, तू छे आप अनाथोए। नित्य० । ५९ । इण जुगमें कोइ केहनो नहीं, भाव लोचन कर दीठोए। तिण कारण संजम लीयो, उतर दिधो मीठोए। नित्य० । ६० । समत अठारे चोसठे, फलोधी गांम चोमासोए। पुज जेमलजीरा पाटवी, ऋषि रायचन्दजी भसी हुला सोए। नित्य० । ६१ ।

इति लघु साधु वन्दना समाप्त ।

अथ श्रीनवकार छन्द ।

सुख कारण भवियण, समरो नित श्रीनवकार। जिन शासन आगम, चउदे पूरव सार। १। ए मंत्रनी महीमा, केहता न लहुं पार

सुरतरु जिम चिन्तित, वंछित फल दातार । २ । सुर दानव मानव, सेव करे करजोड़, भूवि मंडल विचरे, तारे भवीयण कोड़ । ३ । सुर वृन्दे विलसे अतिशय जास अनंत ।। पहेले पद नमीये, अरि गंजन अरिहंत । ४ । जे पनरे भेदे, सिद्ध थया भगवंत । पचमि गति पहु ता, अष्ट करम करी अंत । ५ । कल अकल स्वरूपी, पचानंतक जेह । जिनवर पाय प्रणमुं, बीजे पदवली एह । ६ । गच्छभार धुरन्धर, सुन्दर शशिहर साम । करी सारण वारण, गुण छत्रीशे थोम । ७ । श्रु तजाण शीरोमणि, सागर जिम गंभीर । त्रिजे पद नमीये, आचारज गुणधीर । ८ । श्रु तधर गुण आगम, सुत्र भणावे सार । तपविध संयोगे, भांखे अर्थ विचार । ९ । मुनीवर गुण जुत्ता (युत्ता) कहिये ते उवभाय चोथे पद नमीये अहनिश तेहना पाय । १० । पंचाश्रव टाले, पाले पंच आचार (पंचाचार) तपसी गुणधारी, वारी विषय विकार । ११ । त्रस थावर पीयर, लोक मांही जे साध । त्रिविधे ते प्रणमुं, पर-मारथ (जिण) साध । १२ । अरि करि हरि सायण डायण भूत वैताल । सवि पाप पणासे, थास्ये मंगल माल । १३ । इण समयां संकट, दूर टले तत्काल । इम जंपे जिण गुण, सुन्दर (सुरदर) शिष्य रसाल । १४ ।

अथ नवकार स्तवन।

श्रीनवकार जपो मनरंगे। श्रीजिनसासन साररी माई। सर्व मंगल माहे पहिलो मंगल। जपतां जयजयकाररी माई। श्री०। १। पहिले पद त्रिभुवनजन पूजित। प्रणमुं श्री अरिहन्तरी माई। आष्ट कर्म गरजरा बीजे पद। ध्यावु सिद्ध अनन्तरी माई। श्री०। २। अचारज तीजै पदसमरु। गुण छत्तीस निधानरी माई। चौथे पद ऊवझाय जपीजै। सूत्र सिद्धान्त सुजाणरी माई। श्री०। ३। सर्व साधु पंचम पद प्रणमुं। पंच महाव्रत धाररी माई। नवपद आष्ट इहां छे संपद। अड़सठ वरण संभाररी माई। श्री०। ४। सात इहां गुरु अक्षर एहना। एक अक्षर ऊचाररी माई। सात सागरना पातिक जावै। पद पचास विचाररी माई। श्री०। ५। संपूरण पणोसें सागरना। पाप पूलावे दूररी माई। इहभव खेमकुशल मनवञ्छित। परभव सुख भरपूररी माई। श्री०। ६। ईरति सोवन पुरिसो सीद्धो। सिवकुमार इण ध्यानरी माई। सर्प फीटि हुई फूले माला। श्रीमतिने परधांनरी माई। श्री०। ७। जक्ष उपद्रव करतो निवार्यो। परचो एह परसिद्धरी माई। चोरबंध पिंगलने हुं कूफ। पामे सुरनर ऋद्धरी माई। श्री०। ८। पञ्चपरमेष्ठी मन्त्र जग उत्तम। चवदे पूरव साररी माई। गुणबोले श्री पदमराज गुरु। महीमाजास (जांकी) अपाररी माई। श्री०। ९।

इति नवकार स्तवनम्।

अथ श्रीगौतमस्वामी नो छन्द ।

वीर जिणेसर केरो शिष्य । गौतम नाम जपो निशदीश । जो कीजे गौतमनु ध्यान । तो घर विलशै नवे निधान ।१। गौतम नामें गरिवर चढे । मनवंछित लीला संपजे । गौतम नामे नावे रोग । गौतम नामें सर्व संजोग ।२। जे वैरी विरुआ वंकड़ा । तस नामें नावे ढूकड़ा । भूत प्रेत नवि मांड़े प्राण । ते गौतमना करूं वखाण ।३। गौतम नामें निर्मल काय । गौतम नामें वाधे आय । गौतम जिनसासन शणगार । गौतम नामें जयजयकार ।४। शालदाल सुरहा घृत गोल । मनवंछित कापड़ तंबोल । घरसु घरणी निर्मल चित्त । गौतम नामें पुत्र विनीत ।५। गौतम ऊग्यो अविचल भाण । गौतम नाम जपो जगजाण । माहटा मन्दिर मेरु समान । गौतम नामें सफल विहाण ।६। घर मगल घोडा ना जाड़ । वारू विलशे वंछित काड़ । महीयल माने मोहाटा राय । जो तूठे गौतमना पाय । ७। गौतम प्रणम्या पातक टले । उत्तम नरना संगत मिले । गौतम नामें निर्मल ज्ञान । गौतम नामें वाधे वान ।८। पुण्यवन्त अवधारो सहु । गुरु गौतमना गुण छे बहु । कहे लावण्य समय कर जोड़ । गौतम तूठे संपत्ति कोड ।९।

॥ इति ॥

अथ श्रीमहावीर वीनती लि०।

वीर सुणो मेरी विनती । कर जोडी हो कहुं मननी बात । बालकनी परि विनवु । मोरा स्वामी हो तूं त्रिभुवन तात ।१।

वी० । तुम दरसण विन हुं भम्यों । भव मांहे हो स्वामी समुद्र मझार । दुक्ख अनन्ता मैं सह्या । ते कहितां हो किम आवे पार । २ । वी० । पर उपगारी तु प्रभु, दुक्ख भांजे हो जग दीन दयाल तिण तोरे चरणों हुँ आवियो । सामी मुझने हो निज नयण निहाल । ३ । वी० । अपराधी पिण उधर्या, तें किधो हो करुणा मोरासाम ; हुं तो परम भगत ताहरो । तिण तारोहो नहीं ढीलनो काम । ४ । वी० । शूलपाणी प्रति बूझीया, जिण किधा हो तुझने उपसर्ग ; डंक दियो चडकोसीये तें दिधो हो तसु आठमो सर्ग । ५ । वी० । गोशालो गुनही घणो, जिण बोल्या हो तोरा अवरणवाद ; तेने बलतो तें राखीयो । शीतल लेश्या हो मूकी सु प्रसाद । ६ । वी० । ए कुण छे इन्द्रजालियो, इम केहता हो आयो तुम तीर ; ते गौतमने तें कर्यो । पोतानो हो प्रभुतानो वजीर । ७ । वी० वचन उत्थाप्या ताहरा, जे झगड्यो हो तुझ साथ जमाल ; तेहनें पिण पनरे भवे, सिवगामी हो तें किधो कृपाल । ८ । वी० । एवंतो ऋषी जे रम्यो, जल मांहे हो बांधी माटीनी पाल ; तिरती मूकी काचली (पातरी) तें तार्यो हो तेने तत्काल । ९ । वी० । मेघ कुमर रिषि दूहव्यां, चित्तचूको हो चारितथी अपार, एका अवतारी तेहनें तें किधो हो करुणा भण्डार । १० । वी० । बारे (१२) वर्ष वेश्या घरे, रह्यो मुकी हो संयमनो भार, नन्दखेण पिण ऊधर्यो । सुर पदवी दिधी हो अतिसार । ११ । वी० । पञ्च महाव्रत परहार, ग्रहवासे हो बसिया बरस चौविस तेपिण आर्द्र कुमारने । तें तार्यो हो तोरी एह जगीश । १२ । वी० । राय श्रेणकराणी चेलणा, रूप

देखी हो चित चूका जेह, समय सरण साधु साधवी। तें किधांहो आराधिक तेह ।१३।वी०। धृत नहीं नहीं आंकड़ी, नहीं पोसो हो नहीं आदर दीख, ते पिण श्रेणिकरायने। तें किधो हो सामी आप सरीख ।१४। वी०। इम अनेक तें ऊधार्यो, कहुं तोरांहो केता अवदात सार करो हिव माहरी। मन माहे हो आणो मोरड़ी वात ।१५। वी० ।सूधो संयम नहीं पले नहीं तेहवोहो मुझ दरसन नांण, पिण अधार छै एतलो। एक तोरो हो धरू निश्चल ध्यान ।१६। वी०। मेंह महीतल वरसतो, नहीं जोवे हो सम विषमी ठाम, गरूआ (मोटा) सहिजे गुण करे। स्वामी सारो हो मोरा वंछित काम ।१७। वी०। तुम नामें सुख संपदा, तुम नामे हो दुख जावे दूर, तुम नामे वंछित फले तुमनामें हो मुझ आनन्द पूर।१८। वी०। (कलश) इम नगर जेशलमेर मंडण तीर्थंकर चौवीसमो, सासनाधीसर सिंह लंछन सेवतां सुरतरु समो, जिनचद त्रिसला मात नन्दन सकल चंदकलो निलो। वाचना चारज समय सुन्दर संपुण्यो त्रिभुवन तिलो।१९।

इति श्री महावीर जिन स्तवनं।

सम्पूर्णम्।

स्तवन मोरादेवी मातारो देशी पनजीरी।

थोल थोल आदेश्वरवाला कइ थारी मरजीरे म्हासु मुंडे बोल। टेर। मां०। मोरादेवी वाट जोवतां, इनर मधांढ आइरे। आज

ऋषभजी उतरया बागमें सुण हरखाइ रे। मा० । १ । नहाय धोयने गज असवारी,करी मोरादेवी माता रे। जाय बागमें नंदन निरख्यो, पाइ साता रे। मा० । २ । राज छोड़ने निकल्यो रिखबो, आ लीला अदभुती रे। चवर छत्रने और सिंहासन, मोहनीमुरत रे। मा० । ३ । दिनभर बैठी वाट जोवन्ती, कदम्हारो रिखबो आसीरे। केहती भरतने आदिनाथ की, खबरां लावो रे । मा० । ४ । किसी देशमें गयो वालेसर, तुज विना वनिता सुनीरे। वात कहो दिल खोल लालजी, क्युं बणया मुनीरे । मा० । ५ । रह्या मजेमें हुइ सुख साता, खुब किया दिल चायारे। अबतो बोल आदेश्वर म्हासुं, कलपे कायारे। मा० । ६ । खैर हुई सो होगइ वाला, वात भली नहीं किनीरे । गया पछे कागद नहीं दिनो, म्हारी खबर नहीं लिनी रे । मा० । ७ । ओलंभा में देऊं रूठे लग; पाछो क्युं नहीं बोलेरे। दुख जननी नो देख आदेश्वर, हिवडे तोलरे । मा० । ८ । अनित्य भावना भाइ माताजी, निज आतमने तारीरे। केवल पामी मुगत सिधाया, ज्यांने बंदणा म्हारी रे । मा० । ९ । मुक्तिका दर्वाजा खोल्या, मोरादेवी मातारे। काल असंख्याता रह्या उघाड़ा, जंबु जड़ गया जातां रे । मा० । १० । साल बहोत्तर तीर्थ ओसियां, घेवर मुनि गुण गायारे। मुर्त मोहन प्रथम जिनंद की, प्रणमुं मायारे। मा० । ११ ।

इति सम्पूर्णम् ।

॥ आउखेरी सिझाय ॥

। टेर । आउखो तुटाने सांधो को नहीं रे, तिण कारण मकरो जीव प्रमादरे ; जरा आव्याने शरणोको नहींरे, हिंसा छोडीने दया पालरे । आउखो० । १ । कुटंब कबीला नारी कारणेरे, मूरख संच्या बहु पापरे ; चोरतणी परे छोडी झूरशेरे । सहीश इह लोक परलोक संतापरे । आ० । २ । उंचा चणाया मंदर मालीयारे, देय देय धरतीमें उंडी नींवरे ; एक दीन अण जाणयो उठी चालीयोरे । सुख दुःख सेहेशो आपणो जीवरे । आ० । ३ । चक्रवर्ति हरिबल राणो केशवोरे, जोय जोय बली इन्द्र सुरानोनाथरे ; उगी उगीने उवेही आथम्योरे । जोय जोय कोइ अचरज वाली बातरे । आ० । ४ । अथिर संसार तजी मुनी नीसर्योरे, करता मुनि नवला विहाररे ; भारंड पखीनी दीधी ओपमारे । न घरे ममता नेह लगाररे । आ० । ५ चारित्र पाले रूडी रीतसुंरे, देवे मुनि आपणों उपदेशरे ; ते (तिके) मुनिवर सिधासी मोक्षनेरे । जश लेइ इहलोक परलोकरे । आ० । ६ । शब्द रूप देखी समता धरोरे, मकरो मुनि भणयानु अभिमानरे ; ऋषि चोथमल सुत्र देखिनेरे । जोड़ कीधी जालोर मझाररे । आ० । ७ । इति ।

॥ अथ नामेला पुत्रनी सभाय लिख्यते ॥

नामेला पुत्र जाणिए, धन दत्त सेठनो पूत । नटवी देखीने मोहियो, नहीं राख्यो घरनो सूत । करम न छुटेरे प्राणिया । ए

आंकस्यो । १ । पूरब नेह विकार । निज कुल छोडीरे नट थया, न आणी शरम लिगार । क० । २ । एक पुर आव्योरे नाचवा, ऊंचो वांस विसेष । तिहां राय आव्योरे जोववा मिलीया लोक अनेक । क० । ३ दोय पग पेहेरीरे पावडी, वांस चढ्यो गज गेल । निरधारा ऊपर नाचतो खेले नया नया खेल । क० । ४ । ढोल बजावेरे नाटवो, गावे किन्नर (नाद) साद । पांय (तले) घुघरा घम घमे गाजे अम्बर नाद । क० । ५ । तब राजिन्द्र मन चिंतवे, लुबध्यो नटवीने साथ । जो नट पड रे नाचतो, तो नटवो मुझ हाथ । क० । ६ । दान न आपेरे नृपति, नट जाणी नृप घात । हुं धन वंछु रे रायनो, राय वंछे मुझ घात । क० । ७ । तब तिहां मुनिवर देखीया (पेखीया) धन धन साधु निराग । धिग धिग भिख्यारीजीवने, इम पाम्योवैराग । क० । ८ । थाल भरी सुध मोदके, पदमणी उभीछे बार । लो लो केछे लेता नथी, धन धन मुनी अवतार । क० ९ । संवर भावेरे केवली, थयो मुनि करम खपाय । केवल महिमारे सुर करे, लभद विजय गुण गाय । क० । १० । इति ।

॥ अथ भरत बाहुबलरीसिझाय लिख्यते ॥

राज तणारे अती लोभीया, भरत बाहुबल झुजेरे ; मुठ उपाडी मारवा । बाहूबल प्रति बुझेरे । बीराम्हारा गज थकी उतरो, (गज चढ्यां केवल न होसीरे । बंधव गज थकी उतरो) । १ । ब्रांह्मी सुंदरी इम भाषेरे, ऋषभ जिणेश्वर मोकली ।

बाहुबल तुम पासेरे। वी०। २। लोच करी संयम लियो, वली आयो अभीमानोरे। लघु बंधव वांदु नहीं। काउसग्ग रह्या शुभ ध्यानोरे। वी०। ३। वरस दिवस काउसग्ग रह्या, वेलडीयां विंटाणीरे। पक्षी माला मांडीया सीत ताप सुकाणीरे। वी०। ४ साधवी वचन सुणीकरी चमक्या चित्त संभ्कारोरे। हय गय रथ पायक में तज्या। पिण नहीं मुक्यो अहंकारोरे। वी०। ५ वैराग मन वालियो, मुक्यो निज अभिमानो रे। चरण उठायो वांदवा, ऊपन्यो केवल ग्यानोरे। वी०। ६। पहुंता केवली परखदा, बाहूबल रिख रायोरे। अजर अमर पदवी लही, समय सुन्दर वंदे पायोरे। वी०॥ ७
॥ इति ॥

॥ अथ कर्म सिझाय लिख्यते ॥

देव दानव तीर्थंकर गणधर। हरिहर नरवर सघला। कर्म प्रमाणे सुख दुख पाम्यां। सघला हुवा महा निबलारे। प्राणी कर्म समो नहीं कोई। १। आदीसरजीने कर्म अटार्यां। वरस दिवस रह्या भूखा। वीरनेबारे वरस दुख दीधा। उपना ब्राह्मणी कूखेरे। प्रा०। २ क०। साठ सहस सुत मार्यां एकण दिन। जोध जुवान नर जैसा। सागर हुवो महा पुत्र नो दुखियो। कर्म तणा फल एसारे। प्रा०। ३ क०। बत्तीस सहस देसांरो साहिब। चक्री सनतकुमार। सोले रोग शरीरमें ऊपना। कर्म कियो तन छाररे। प्रा०। ४। क०। कर्म हवाल किया हरीचंदने वेची सुतारा राणी।

चारे बरस लग माथे आएयो । नीच तरो घर पाणीरे । प्रा० । ५ । क० । दधिवाहन राजा नी बेटी । चावी चंदनबाला । चौपद ज्युं चौहटा में बेची । कर्म्म तणा ए चालारे । प्रा० । ६ । क० संभू नामें आठमो चक्री । कर्म सायर नाख्यो । सोले सहस जक्ष ऊभा देखें । पिण किणही नहीं राख्योरे । प्रा० । ७ । क० । ब्रह्मदत्त नामे बारमो चक्री । कर्मों कियो आंधो । इम जाणी प्राणी थे, कर्म्म मति कोई बांधोरे । प्रा० । ८ । क० । छप्पन कोड़ यादव नो साहिब । कृष्ण महाबल जाणी । अटवी मांहि मूं वो एकलड़ो । बिल बिल करतो पाणीरे । प्रा० । ९ । क० पांडव पांच महाझुझारा । हारी द्रौपदी नारी । बारे बरस लग बन रड़वड़ीया । भमीया जम भिख्यारीरे । प्रा० । १० । क० । बीस भुजा दस मस्तक हुंता । लक्ष्मण रावण मार्यो । एकलड़े जग सहु नर जीत्यो ते पिण कर्म्मसु हार्योरे । प्रा० । ११ । क० । लक्ष्मण राम महा बलवंता । अरु सतवती सीता । कर्म्म प्रमाणे सुख दुख पाम्या । बीतक बहु तस बीतारे । प्रा० । १२ । क० । समकित धारी श्रेणिक राजा । बेटे बांध्यो मुसके । धर्मी नरने कर्म धकायो । करम सु जोर न किसकोरे । प्रा० । १३ । क० । सतीय सिरोमणी द्रौपदी कहिये । जिन सम अवर न कोई । पांच पुरुषनी हुई ते नारी । पूरव कर्म्म कमाईरे । प्रा० । १४ । क० । आभा नगरीनो जे स्वामी । साचो राजा चंद माई कीधो पंखी कूकड़ो । कर्म्म नाख्यो ते फंदरे । प्रा० । १५ । क० । ईशर देव पारवती नारी करता पुरुष कहावे । अहिनिस महिल मसाण में

भासो । मिथ्या भोजन खावेरे । प्रा० । १६ । क० । सहस्र किरण सूरज परितापी । रात दिवस रहे अटतो । सोल कला ससिधर जग चावो । दिन दिन जावे घटतोरे । प्रा० । १७ । क० । इम अनेक खंड्या नर कर्मे । भांज्या ते पिण साजा । रिधि रूप कर जोडीने विनवे । नमो नमो करम महाराजारे । प्रा० १८ । क०

इति कर्म सझाय समाप्त ।

॥ अथ कर्मोंकी लावणी ॥

करम नचावे ज्युंही नाचे ऊंची हुवणने सबी ससता नकसी हुवणसूं कोई न राजी निंधा विकथा क्यु करता (टेर,) औगण धाद तूं बोले लोकांर चेतन भूल है तुझ माही, थारे करममें कांई लिखी है, थारी तुझै सूझै नाहीं, चवदे पूरबच्यार ज्ञान था कर्मों में छूटा नांही ऊंचो चढके पड़े कीचड़में ज्ञांनो वचन झूठा नांही, पाप उदेमें, आये चेतन फीर समणी में आवे नाहीं, पुंडरीक गोसालो देख जमाली खोटी व्यापे घट मांही, (चढावणी) मोह छाक मोटो मदपीसे, औगण औरोंका तूं क्यों घीसे, थारा औगण तुझकों नहीं दीसे, अनेक औगण या थारी आतमा ज्ञानी वचन पकड़ो रस्ता । नकसीहु० । १ । पांच प्रकारे काम भोगतूं सेवे सेवावे मारा करता, शब्द वरण गन्ध रूप फरस तूं जहर खायके क्यूं मरता, आछी भूंडी कथा लोकांरी करतां आतम भारी करता, केने हरावे केने डमरावे, हरख २ आनंद धरता, आंध वंधे ओर

घमूल आवे, आंब रस सुख किम पड़ता, रोग सोग दुख कलह दालिदर दुखमें दुख पैदा करता, (ढ़ड़ावणी) थारी म्हारी करतां दिन जांवे, आंमा सामा भाठा मिड़ावे, सुखमें दुख तूं वैर घलावे, ज्यूं दीपकमे पड़े मतंगा चेतन दुरगति क्यूं पड़ता, नकशी ० २, हु तरो तूं क्या (कांइ) सरावे, अगाहूं तंको क्या विसराता, हे, पुन्य पाप जो बांधा जीवने वैसाही फल पाता है, किणनें मामा दीवी भोगणनें कोई लखचाली करता है, जस अपजस जो लिखा करममें जैसा कारज सरता है, पाप अठारे सेंधा जीवरे इणमें सबही फसता है, स्वाद पाई (सुख) और कामभोगमें कूचा पुन्नोंका करता है (ढ़ड़ावणी) रूच२पाप बांधे तूं सोरा, उदे आयां भोगंता दोरा, लख चोरासी भुगते फोड़ा, आक थोर और तुंवा निमोली पाप फल कड़ वा लगता, नकसी ० ३, विपाक सूत्रमें मिरगालोढो देखो पाप उदे आया, हाथपांव मुख आकार नाहीं राजाघर बेटा जाया, खीमण पाणी एकही सुरमें म्हाड़ो नाड़ा उणमें लाया, ज्यु नदीके ढोल समाने इनखाखे उनकीकाया नरक सरीखा दुख जिन भाख्या मलमूत्रमे लपट रह्या, अत्यंत दुर्गन्ध आंगा गन्धावे भवरे मांही ढकया रह्या, (ऊड़ादणी) गाड़ी भर भर आहार करावे, उण भवरेमे कोईयन जावे, जो जावे तो मुरछा आवे, विचित्रगति करमोंकी भाखी, ज्ञानीरतन पकड़ो रस्ता, नकसी ० ४ क्रोध मान और माया लोभमें बोरा तणी गत ते माई खाय रखड़ तुम शुक्यो चेतन परोंमें ठोकर खाइ, विविध प्रकारे साग चोहटे ओडीमें मालण जाइ, एक कोड़ीरे केई भागमें अनन्तीवार तूं बिकीआयो, च्यारगति

छवकाया मांही दुडीदोटे; ज्यूं भमी आयो, काल अनंतो बीयो है चेतन नरक निगोद मोंको खायो (उड़ावणी) उठे मान थें क्यों कीनोनो, हाणे (अबी) बोले ज्यूं बोल्यो क्यूंनी अनंत जीवांरो तू जो खूनी, नातु चवाण दी इये उपदेशी, चतुर अर्थ हिरदे धरता: नकशी हु० ५, इति पद ॥

[अथ वैराग्य लावणी लिख्यते]

देखत भूली ख्याल तमासा बाजीगरका है खलका, यो संसार धुंवे सो वादल ओस बुंद बिजली चमका (टेर) सतगुरु शीख तू मांने क्यूंनी, जनम मरणका दुख मिटता; दान शील तप भाव आराधो, संसार सम्बन्धका फंद कटता; संवर पोसा करो सामायक, सूत्र सिद्धान्त पर चित्त धरता, वखाण बांणी सुणोरे सरधो पाप घटे जद पुन्य बधता; तवनसीझायां बालो थोकड़ा; नउ पदारथ मुख करता; जांणपणे आ समकित फरस्यां पाप करमसूं रहै डरता; इती बुद्ध जो नहीं हुवे तो नौकार मंत्र हिरदे धरता; भाव चढायां भव ने छेदे, मन वंछित सब सिद्ध करता; (उडावणी) चउदे पूरव विद्या सारी, भगवंत भाख्यो यो अधिकारी, अनंत तिरयंच तिरिया नर नारी, सरधा शुद्ध पामें हितकारी; नौकार जप्यां पंचीगत पामें सिवरमणी सुख है उनका, यो संसार० १; पृथवी अप वो तेउ वाउ, वनस्पती वो त्रसकाया: छउं कायाने मार रह्यो है, आरंभ कर २ हरखाया; छेदन भेदन करम आसना गाली देयदेय भमकाया; जिके जिकेनें दुख नूं देवै वैर जिवांसुं बिसाया; झूठ चोरी मैथुन सेवे परनारीसुं चिलमाया: स्वाद भोग सुख रमना, पोसी परभव

चिन्ता नहीं लाया, कोड़ी २ माया जोड़ी, लालच लोभमें बहु छाया; आशा तृष्णा मेटी नाही, करता है माया माया; (उड़ावणी) कूड़ कपट छल छेदर करता, कोडीसेटे तू जाय लड़ता, जोड़ २ घरमें धन धरता, भायां कुटुम्बसें खोटा करता, जनम मरण ये बुरा जगतमें ज्यूं कंपे हीया हमका, यो संसार० २, क्रोध मान अहंकार भरा है; राग द्वेषमें रगराता; जाल फांसी दगारे फटका अनेक दुर्भर तूं चलाता, भेणा मोसा देवे लोकांने, साचेने कूड़ा करता; बड़ो आदमी बजे लोकांमें, मिथ्यात तुमकु सुहाता; पाप अठारे रूच रूच बांधे, मोह करममें मदमाता; अनेक वस्त तू लेवे करावे, पापकी पोट माथे धरता; मात पिता सब कुटुम्ब कबीला, बेटा लुगाई तेरा धन खाता; पाप करम तूं बांधे एकलो, नरक निगोदमें पड़ जाता; (उड़ावणी) सब मुतलबको प्रीत सगाई, बिना स्वारथ करै लड़ाइ, घणा वल्लभ जो घाले धाइ, पाप उदे फेर नहीं कोइ साइ. (साथी) सागर पल्योपम होता आउखा खूट जाय आतम दमका, यो संसार० ३, म्हारा म्हारा करे रह्यो मूरख, थारा सब पेलणांका है, (देखणका है) कनक कामनी कुटुम्ब कबीला, जमी घर देखणका है; ज्युं बटाउ वासो लियो, पंखो पंथपयाणा है; खरचो हो तो खारे मूरख, आखर परभव जाणा है; मात पिता सब कुटुम्ब कबीला मिलिया ज्यूं अयोणा है; बिछड़ जाय सब जूओ २, (जुदा जुदा) मोह जाल मुरझाणा है; जरदा सुपारी खानपानमें, मूढ़ा दिन सर हजाणा है; खावे पीवे गप्यां मारे यों ही जनम गमाणा है; (उडावणी) सुस शब्द (व्रत पच्चखाण) कुछ कीनो नाहीं; ढोर परे ज्यों फरियो

चांही; मिथ्या दृष्टके खूतो मांही; जैन धरम मुक्त हमिमों नांही, मनुष्य जमारो फेर नहीं छे; लोक लाजसुं सहे धमका; योसंसार०४ मितख देवगत दुर्लभ पांमे; तिरजंच गतिमें जायेला; छकं कायामें ममता झुलतां, जनम मरण बधावेला, लोह घाणियो घणो पिसतायो; ज्युं तूं फिर पिस्तायेला; अल्प आउखो भूख तृषा, शीत धूप दुख पावेला; नर्क निगोदमें दुख घणा है, समझ जीव ढेठेंवाला; सागर पल्योपम मार नरकमें, छेदन भेदन बहु ज्वाला; आंख मींच खोले तिलमातर, सुख नहीं इतना कोला; सस्त्र सूली अगन थकाढ़ा, जहर छांट मारे भाला; [उड़ वाणी) पछाड़, २ जम पकडे चोटा, विकराल मुद्गर मारे सोटा, टुकड़ा कर २ मारे खोटा, ज्यूं दुडी पर लागे दोटा, काल अनंतो हुवोरे रुलतो, छाती नानूकी करे धड़का; यो संसार धु० ५, इति पद ॥ ( )

(अथ मुक्ति मार्गको ढ़ाल)

॥ मुगतिरो मारग दोहलो जीआ चतुर सुजाण, (टेर)

पृथवी काया नहीं छेदिये, जाणो निज मात समान, त्रसथावर वासोवसे, घणा जीवां हंदीखाण, मु० १ पाणी विना परजा दुखी, आशा करे रे राजन, ऊंचो मुखकर जोवता, किरपा करो भगवान मु० २ येचेरे फरजन आपरा, तो पिण नहीं मिले धान वसको सांय घरतो पड़े, उभा सजदे आण, मु० ३, तेऊ कायारी शासतर आकरो, वायु दयेरे वधाय, उड़ता पडेरे पतंगिया, जीव घणा जल सांय, मु० ४, तेऊ काऊरो नीसरयो, मानव भव नहीं पाय, निश्चेरे

जावे, तिर्यंचमें, घणो दुखियोरे थाय, मु० ५, वनास्पती होय जातरी, भाखी श्री भगवान, सूई अग्रनिगोदमें, जीव अनंता वखाण, मु० ६, ये पांचो ही थावर जाणिये, मति वाओ तरवार, जीव गरीब अनाथ छे, मति काटो निराधार, मु० ७, त्रसथावर हणियां विनां, पुद्गल पूजा न होय, विन भुगत्यां छूटे नहीं, मरसी घणा रोय २, मु० ८ पुद्गलरी त्रपती करे, परतिख लूंटेरे प्राण, अनुकंपा घटमें नहीं, खुलि दुरगति खाण, मु० ९ रम्मत देखणने गयो, ऊभो रह्यो सारी रात लघु नीत सकी घणी बाहिर निसरियो नहीं, जात, मु० १०, नाचै वैस्यारो तायफो, निरखे रंग सुरंग, रमणीरे संगमें राचियो, पोढ़े लाल पिलंग, मु० ११, दुख करने सुख मानतो, रुलियो काल अनंत, लख चौरासी जीवा योनी में भाख्यो श्री भगवंत, मु० १२ गल कट्ट मिलिया घणा, भरियो ठगांरो बजार, कोई पुन्य जगनी जणयो चाले सुत्ररे अनुसार, मु० १३ आ सब संपदा कारमी, जाणो बालूडांरो ख्याल, निसच परभव जावणो, बांधो पाणी पहिलां पाल, मु० १४ सुसरारे घरे जीमतो, सखियां गाय रही गीत, थोड़ा दिनामें पड़सी आंतरो, निश्चै जाणो यही रीत, मु० १५ कायरने चढ़े धूजणी, सूरा सनमुख होय, नाठा जावे गीदड़ा, मानव भव दियो खोय, मु० १६, ओ समास कह्यो केवली, सूरा सन्मुख थाय, झूझ रह्या अपणी देहसुं गुमान, गर्व गमाय, मु० १७, जीव दयारो सिर सेहरो, भाख्यो श्री नेमजिनंद, गजसुकमाल रूलड़ो वणयो, पाम्यां परमानंद, मु० १८ मेता-

रज मोटा मुनि, धर्मरुचि अणगार, हिंस्यां कुमतिसें डिग्या नहीं, खोल्या दयारा भण्डार, मु० १९ सेठ सुदर्शन जीतियो, जीव दयारे परसाद, इंद्र देवे परदक्षणा, क्षमा करे धन्यवाद, मु० २०, गोत्र तीर्थंकर बांधियो, श्री कृष्ण मुरार, आज्ञा दियो आणंदसुं, लेवो संजम भार, मु० २१ साढ़ी बारे बरसां लगे, झुंझया श्री वीर जिनंद, जीव दयारो सिर सेहरो, बांध्यो त्रिसलारेनंद, मु० २२, फालोरे मुख कियो चोरनो, फेर्यो नगर मझार, समुद्रपाल ते देखनें, लीनों संजम भार, मु० २३ हिंस्यामें चोरी री नियमा कही, लूंटे जीवांतणां वृन्द, कुगुरुरे भरमावियो, हो रह्यो अंधाधुंद, मु० २४, करण मुनिसर इमभणे, पालो चरत अखंड, जीव दयारो धर्म आदरो, भाख्यो श्री भगवंत, मु० २५, इति पदं ॥

(अथ वैराग्य स्तवन)

॥ यो जुगलाल सुपनकी माया इणपर क्या गरबाणारे, थारी घट गइ आय रहण नहीं पावे क्या राजा क्या राणा रे यो० १ करमका घरांवर मुख निरखे रूप देख हरखाणा रे सुंदर नार खड़ी मुख आगे छेवट वास मसाणा रे यो० २ गादी बैस नरध अति तोले बोले मगज भराणा रे अंतर ज्ञान इतो नहीं सूझे आखर निपट पयाणा रे यो० ३, कर २ कपट निपट धन जोड्यो संच २ इक (एक) ठाणा रे मद छकियो मनमें न विचारे छेवट माल विराणा रे यो० ४, थोड़ा दिनसमें करम बहु बांध्या कर २ ने फगठाणा रे पोढ़ण काल पोहतो परभव ठाली पड्या ठिकाणा रे यो० ५ बिनरिवस पुरुष भीमतल छाणा जाणे पेवर प्रेट भराणा रे

उड़ आई नींद खुल गई आंखियां अंत छाणाका छाणा रे थो० ६ सुपने राज लियो सब जगको सिरपर छत्र ढुलाणा रे योगी छत्र पति रंक जागयो मांग २ अन्न खाणा रे यो० ७ रतनचंद जग देख ये थिरता निज गुण मन ठहराणा रे अलप लख्यो सदगुरु बचनासूं पुदगल भरम मिटाणा रे यो० ८ इति पदं ॥

(अथ धर्म्म बजाजकी लावणी)

॥ कह्यो मान बजाजी सद्गुरु दे पूंजी मांड दुकानजी (टेर) काया रूप नगरके मांही, वैराग मालमो जाय रज मिथ्या मत बाहर कढ़ावो, शुद्ध भाव पाल बिछाय हो कह्यो ० १, जिन वाणी को गज लै भारी, जरा फर्क मत जाण, माप २ तनें सतगुरु देवै, मतकर खेंचा ताण हो कह्यो ०२, जीव दयाका मुखमल भारी रेसम है संतोष, इव्वल जीण समता तणोसरे, ज्ञान दाम दे रोक रे कह्यो ०३, तपस्याको बंदागर भारा, साड़ी शीलकी जांण, एसा व्यापार करो चेतनजी, मिले तुझे निर्वाणजी कह्यो ०४ इति पदं ॥

॥ अथ श्री शांतनाथजीरो (तान) छंद लिख्यते ॥

॥ श्री शांत जिनेश्वर सोलमांजी जगतारने जगदीश, विनती म्हारी सांभलो में तो अरज करूं धरि शीश (आंकणी) प्रभुजी म्हारा प्राण अधारो रे सर्व जिवां हित कारो रे, साता

भरताई सारे देशमें प्रभु पेट में पोल्यो छो आप जिन्में मेती सायबा थे तो आया घणारी दाय प्रभुजी म्हारा प्राण अधारो रे सर्व जीवाने हित कारोरे; चक्रव्रत पदवी थां लीधी प्रभु किनो भरतसांही राज, सुखभर संजम पालिया प्रभु सारिया छै आतम काज (प्रभु०) तीर्थनाथ त्रिभुवन धणी प्रभु थाप्या छे तीर्थ चार, समोसरण मल रह्यो प्रभु सिंघ बकरी एक ठाम (प्रभु) सुर नर क्रोड़ सेवा करे प्रभु वरषे छै अमृत धार, अमि भरे निज साहिबा थे तो देखत नैन ठहराय (प्रभु) देव घणाई में ध्यावियो प्रभु गरज सरी नहीं कोय, अबके साच्चा साहेबा थे तो अराधो मन मांय (प्रभु) लख चौरासी जीवा जुनमें प्रभु भटक्यो अनंती वार, सेवक सरणे आवियो म्हारो आवागमन निवार (प्रभु) सातोकारो संतजी प्रभु त्रिभुवन तारनहार, विनती म्हारी सांभलो मनें भवसागर सु तार [प्रभु] रिख चौथ मलजी री विनती प्रभु सुण जो दुतिया छंद, अवचल पदवी पामियो प्रभु आप अचलाजीरा नंद (प्रभुजी)

॥ अथ चार सर्णाको स्तवन लिख्यते ॥

हीरदे धारीजे हो भवियण, मंगलीक सर्णा च्यार ॥ ए टेर ॥
पोहो उठी नित समरीजे हो, भवियण मंगलीक सर्णा च्यार ॥
आपदा टले संपदा मिले हो, भवियण, दौलतना दातार॥ ही० ॥१॥
अरिहंत सिद्ध साधु तणा हो॥भ०॥केवली भाषित धरम रे आंक
जपता थकां हो ॥ भ० ॥ हुवे आठुं कर्म ही० ॥ २ ॥ ए स-

रणा सुखकारीया हो ॥ म० ॥ ए सरणा मंगलीक ॥ ए सरणा उत्तम कह्याहो ॥ म० ॥ ए सर्णा तप तेज ॥ ही० ॥३॥ सुख साता वरते घणी हो ॥ म० ॥ जे ध्यावे नर नार ॥ परभव जांता जीवने हो ॥ म० ॥ एह तणो अधार ॥ ही० ॥ ४ ॥ डाकण साकण भूतणी हो ॥ म० ॥ सिंह चित्ताने सूर ॥ वैरी दुसमण चोरटा हो ॥ म० ॥ रहे सदाई दूर ॥ ही० ॥ ५ ॥ निस दिन याने ध्यावंता हो ॥ म० ॥ पामे परम आणंद ॥ कमी नहीं किण बातरी हो ॥ म० ॥ सेव करे सुर इंद्र ॥ ही० ॥ ६ ॥ गेले घाटे चालता हो ॥ म० ॥ रात दिवस मंझार ॥ गांवां नगरां विचरंता हो ॥ म० ॥ विघन निवारण हार ॥ ही० ॥ ७ ॥ इण सरीखा सर्णा नहीं हो ॥ म० ॥ इण सरिखा नहीं नाम ॥ इण सरीखो मंत्र नहीं हो ॥ म० ॥ जपतां वाधे आय ॥ ही० ॥ ८ ॥ राखो सर्णा री आसता हो ॥ म० ॥ नेड़ो न आवे रोग ॥ वरते आणंद जीवनें हो ॥ म० ॥ एह तणो संयोग ॥ ही० ॥ ९ ॥ मन चिंत्या मनोरथ फले हो ॥ म० ॥ निश्चे फल निरवाण ॥ कमी नहीं देवलोक में हो ॥ म० ॥ मुक्त तणा फल जाण ॥ ही० ॥ १० ॥ संमत अठारे बावन्न हो ॥ म० ॥ पालो सेखे काल ॥ रिख चोथमलजी इम कहे हो ॥ म० ॥ सुण जो बाल गोपाल ॥ ही० ॥ ११ ॥ इति॥

॥ मुक्ति जाणेकी डीगरी लिख्यते ॥

(दूहा) तीर्थंकर महावीरने,कौसल गणधरशाज,कानून परूप्याहे दया सब जीवन हितकाज,१ दान शील तप भावना,असल खुलासा सार, जिण पुरषां धारण क्रिया, पोंहच्या मुगति मंझार,२ चवदे सहस

साधु हुआ, आर्या छतीस हजार, लाखां श्रावक, श्राविका, पाया भव
नलपार, ३ (चाल हीर रंझे के ख्यालकी) ॥ मेरी अदालत प्रभुजी
कीजीये, जिन सासन नायक मुगती जाणेकी डिगरी दीजीये जिन०
खुद चेतन मुद्दई बना है, आठु करम मुदालो, दावा रसता मुगति
मारगका, धोखा दे जाय टालाजी जि० १ तप कागद इष्टांम लिया,
तलवाणा जमा विचारी. सिझाय ध्यान मजवून वणाकर, अरजी
श्रानगुजारीजी जि० २ में जाता था मुगति मारगमें, करमोंने
श्रा घेरा, धोखा देकर राह भुलाया, लूट लिया सब डेरा जो जि०
३ वोहत खराब किया करमोंने, चौरासीके मांही दुख अनंता
पाया मैंने अंत पार कछु नांहोजी जि० ४ सच्चे मिले वकील
कानूनी, पंच महाव्रत धारी, सूत्र देख मसोदा कीना. सबमें अरजी
डाली जी जि० ५ पांचे सुमती तीन गुप्ती ए, श्राठु गवाह बुलावो,
शील असेसर, वडा चौधरी, उसकूं पूछ मंगावोजी जि० ६ अरजी
गुजरी चेतन तेरी,हुआ सफीना जारी,हाजर आवो जवाब लिखावो,
लावो साबूती सारीजी जि० ७ आठुं मुद्दाले हाजर आए, मोह
मुखत्यार बुलाए, च्यार कषाय अरु आठे मदकुं, साथ गवाहीमेंलाये
जी जि० ८ (टेर मुदायलेकी) जिन शासन नायक झूठा दावा है चे
तन जीवका जि० हमने नहीं बैकाया इसकूं, ए हमरें घर आया,
करजालेकर हमसें खाया,एसा फरेबमचायाजी जि०मु० ९विषयभोग
मेंरमिया चेतन, घाटा नफा न जाण्या,कर्जदार जब लारे लाग्या,तब
लाग्या पिस्ताणाजी जि०मु०१०हाजर खड़गवाह हमारे, पूछि ये हाल
जो सारा,बिना लियां करजा चेतनसें फेंसे करे किनाराजी जि०मु०

११ (टेर मुद्दे इकी) चेतन कहै सतावी मांही, सुण शासण सिरदार, इमानदारहै गवाह हमारे, जाणै सब ससारजी जि०मे० १२ मैं चेतन अनाथ प्रभुजी, करम फरेबी भारी, जीव अनंते राह चलत कूं, लूंट चौरासीमे डालाजी जि० मे० १३ बड़े २ पंडित इण लुटे, एसा दम बतलाया, धरम कहा और पाप कराया, एसा करज चढ़ायाजी जि० मे०१४ असल एन सरकारी सूत्रमे, मनमत अर्थ धसाया, धर्म एनमे हिसा कह कर, उलटा जीव फसायाजी जि० मे० १५ भेद अर्थसें वेद पढ़ाया, हिंसक यज्ञ बताया, इसके फलसें स्वर्ग दिखाकर, एसा मुझे सताया जी जि०मे० १६ हिंसा मांहि धर्म बताया, तपस्या सेती डिगाया, इंद्रिय सुखमें मगन करीनें, झूठा जाल फैलायाजी जि० मे० १७ एसा करो इनसाफ प्रभुजी, अपील होण न पावे, हुक्करसी चेतनकी होवे, जन्म मरण मिट जावैजी जि० मे० १८ न्यान दर्शन करी मुनसफी, दोनोंकूं समझाया, चेतनकी डिगरी कर दीना, करमोंका करज बतायाजी जि० मे०१९ असल करज जो था कर्मोंका, चेतन सेती दिरायां, सुद्ध संजम जब करी जमानत, अगेका सूत छुटायाजी जि० मे० २० आश्रव छोड संवरकुं धारो तपस्यासें चित ल्यावो, जल्दी करज अदा कर चेतन, सीधा मुक्तिकुं जावोजी जि० मे०२१ सुद्ध सजम जबकरी जमानत, चेतन डिगरी पाई, फागुण सुदि दशमी दिन मंगल, सन् उगणीसें अट्ठाईजी जि० मे० २२ इती डिगरी सपूर्णम् ॥

॥ अथ ककाबत्तीसी लिख्यते ॥

कक्का क्रोधनिवारीयै क्रोध कियां जंजाल वाद घणा वधै बबर क्रोधी करम चंडाल॥१॥खखा खल संगत तजो खल खोवै निजवंस वंसवंस थी उपनौ पावक करै विधंस ॥२॥ गगा गरब निवारीयै गरब गमावैलाज गरब थकी जिम रावणै खोयो अपणो राज ॥३॥ घघा घर माहिवसो मावै वसो वन मांहि मनवसजो नही आपणा तिणकै सब कुछ नांहि ॥४॥ ङ्ङा ग्यांन आराधीयै गुरु विन ग्यांन न होय ग्यांन विहूणा आदमी पशु सरोखाजोय ॥५॥ चचा चुगली परिहरो चुगली नीच वेकार परभव दोजग पायकै पडीयो करै पुकार ॥६॥ छछा छायां सारखी माया मनमें जांण घटै वधै छिनमें जिको पुन्यकै परमांण॥७॥जजा जल विंदुसारिखौ आयु अथिर,थिर नांहि तिण उपर केती करै ममता क्यु मनमांहि ॥८॥ झझा झूठ न बोलिये झूठे अपजस होय वसुराजा झूठे थको दुरगति आंतो जोय ॥९॥ ञ्ञांञ नवि कीजियै महितै इवडैवार भव मांनव दुरलभ है करकोई उपगार॥१०॥टटाटाप किसीकरो परसुख परवनदेख लेख लिख्या सोपाइयें न टले विधकी रेख ॥११॥ठठाठारसमौकह्यौ ओछा-तणो सनेह तिणमैं रंगविरंग है तिणमे दाखै छेह॥१२॥डडादर किण बातरो जो मन साचो होय दिवस च्यारकै अंतरै परगट होसी सोय॥१३॥ढढा दील किसीहिवै जावैछेजमवार (जमारो) भजन करो भगवंतरो आतमकेरो आधार॥१४॥णखानांणा पाहिरो आदर न दीयै कोय मीत (मित्र) सहू धनवंतरा निरधन नेह न होय ॥१५॥ तता तपजप आदरो सपनाफल परतिख करम निकाचित तोडिने सिणसें

पामैसुख ॥१६॥ थथा थिर मन राखिये थिरतामें सब बात अधिको ओछो न हुवे जो अपणो तिलमात॥१७॥ ददा दानसमापीयै जगमें मोटो दान नांम रहे दाता तणौ जाचक करै वखांण॥१८॥धधा धरम थकी टलै दालिद्र दुख दोभाग सगला सुखपिण धरमथी धन धीणो सोभाग॥१९॥नना नारी नागणी जे न करो बेसास (विश्वास) देखतही डस जावसी घाल प्रेमकी फांस ॥२०॥पपा पाप न कीजिये अलगा रहिये आप जो करसी सो पावसी क्या बेटा क्या बाप ॥२१॥फफा फल तिणते लह्या जिण नर सेव्या जेह आंकेतो अकडो डीया आंबे आंबअछेह ॥२२॥ बबा बाड़ो मुगतकी कीजे धरमज हेत बीजी बाड़ी सब तजो ज्यु पावो सीवपुर खेत ॥२३॥ भभा भाग बिनाकीयां उद्यमथी सुख नांहि कुरट्यो उंदर करंडीयो पड्यो सांपे मुख मांहि ॥२४॥ ममा ममतो परिहरो एह अनादिकी आग समताजल जिम उपशमी ताको मोटो भाग ॥२५॥ यया यारी राखीये परमेश्वरके साथ पार उतारे छिनमें दुजी खाली बात ॥२६॥ ररा राग निवारीयै रागथकी दुख जांण पहिलाने मोन्ना दियां दोन्यु होय समान॥२७॥ लला लोभ न कीजीयै लोभै लक्षण जाय क्रोड मोलको आदमी कोडी सटे बिकाय ॥२८॥ ववा वैर न कीजिये वैर बुराई खान कैरव पांडव क्षय थयो लोक हांसो घर हांण ॥२९॥ ससा सांसो मत करो जिन भाख्यों ते प्रमाण सांसा मांही जे पड्या नव निंदव ते जांण ॥ ३० ॥ ससा सरम न मूंकीयै सरम थकी सुख होय सरम बिहूंणा मांणसां वास न पूछै कोय ॥३१॥ हहा हांम हीयातणी पूरी किम पूराय त्रिष्णा तो तेहवी वधै

लेक्वी आकास न माय ॥३२॥ बत्तीस अक्षर धुमने करो, सास्त्र अभ्यास, सीख भली चित धारज्यो वधै विद्या विलास ॥

इति अक्षर बत्तीसी समाप्त ॥

॥ श्री साधु आचार बावनी ॥

॥ दुहा ॥

वर्धमान शासण धणी, गणधर लागु पाय । दया जो माता वीनउं, बन्दु शीश नमाय ॥ १ ॥ ठाणांगमें चालीया, श्रावक च्यार प्रकार । मात पिता सरिखा कह्या, साधाने हितकार ॥ २ ॥ करडो काठी सीख दे, साधाने हितकाज । ढीला पड्वा दे नहीं, ते सुणज्यो विस्तार ॥ ३ ॥

॥ अथ ढाल जिस्वामिकी लिख्यते ॥ जो स्वामी घर छोडीने नीसन्या थेतौ लीधो संयम भारजी जीस्वामी पंच महाव्रत पालज्यो मतिलोपजो जिणजीरी कारजी जी० अरज सुणो श्रावक तणी १ जी० तप जप संयम आदरो निंदाने विकथा निवारजो जी० बाइस परिसा जीतजो येतो चालणो खांडा नी धारजी जी० अ० २ जी० गृहस्थीसु मोह मत राखजो थे तो लीज्यो शुद्धमन आहारजी जी० असूजतो आहार देखने पिछा फिर जाज्यो तिण वारजी जी० अ० ३ जी० कोइक वैरासी थाने लाडुवा कोइ तुरोने खीरजी जी० कोइक वेरासी सूका टुकडा थेतो मत होज्यौ दिलगीरजी जी० अ० ४ जी० कोइक करसी थांने वदणा कोइक नमसी सीसजी जी० कोइक देसी थांने गालियां मती

आंणज्यो मनमें रीसजी जी० अ० ५ जी० छलछिद्र जोवोमती मती आंणज्यो रागने द्वेषजो जी० क्रोध कषाय करज्योमती क्षमां करणि विशेष जी० अ० ६ जी० जंतर मत्र करज्योमती मती करज्यो स्वप्न विचारजी जी० ज्योतिष निमित्त माखो मती मति लोपज्यो जिणजीरी कारजी जी० अ० ७ जी० रंग्या चंग्या रहणों नहीं, नहीं करणो देह शृंगारजी जी० केश शृंगार वणावतां मुख धोवतां दोष अपारजो जी० अ० ८ जी० कपड़ा पेहरो उजला भारी, मोला चित्त चायजी जी० साधू दीसे सिणगारिया लोगां मांहि निंद्या थायजी जी० अ० ९ जी० वण्या वणायां बींद ज्यु गोरा फूटरा दीदारजी जी० वलिमैल उतारै शरीरनो साधाने लागे जंजालजी जी० अ० १० जी० चोमासो करज्यो देखने स्थानक लीज्यो विचारजी जी० ज्यां रेवै नपुंसक अस्तरी नहीं साधतणो आचारजी जी० अ० ॥११॥ जी० संथारो करज्यो देखने तपस्या करज्यो विचारजी ॥ जो स्वामी पाछे मन डिग जावसी, तो हंसेगा नर नारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ १२ ॥ जी स्वामी दोय साधु तीन आरज्यां विचरजो तिणहिज कालजी ॥ जी स्वामी एक साधु दोय आरज्यां, मत करजो कदेई विहारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ १३ ॥ जीस्वामी मेघ मुनीश्वर मोटका, कही धर्मरुचि अणगारजी ॥ जीस्वामी कीड़यानी करुणा करी, पहुंच्या अनुत्र विमाणजी ॥ जीस्वामी० (अर्ज) ॥ १४ ॥ जी स्वामी जोथारे छांदे चालसो, तोलोपो गुरांजोरी कारजी ॥ जी स्वामी दुष्टभाव

चित राखोगातो, नहीं सरे गर्ज लगारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥१५॥ जीस्वामी वेहरणने गयां फूरसो थें देखी नान्यां तणा रूपजी। जीस्वामी०॥साधपणेने छेदने चारित्रसु जावोगा चूकजी॥जी स्वा। (अर्ज) ॥ १६ ॥ जी स्वा० कंठ थी रागणी काढने, थेतो रीझावसे नरनारजी ॥ जी स्वामी वेराग भाव आण्या विना, थांरे नहीं सरे गर्ज लिगारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ १७ ॥ जीस्वामी पलेवण कियां विनां, मत करज्यो विहारजी जीस्वामी ऊनो आहार दान्यू टंकां, नहीं साधुतणो आचारजी जीस्वा० (अर्ज) ॥ १८ ॥ जीस्वामी गृहस्तोरे घरे वेसवो नहीं, कारण विना कोई साधजी ॥ जी स्वामी सावद्य भाषा बोलवी नहीं, नातरा जोड्यासुं कर्म बंधायजी ॥ जीस्वामी (अर्ज) ॥ १९ ॥ जीस्वामी मुंढासु वस्त्र निपेदने, मत करजो अंगीकारजी ॥ जीस्वामी वमियारी वांछा कुण करे, काग कुत्ता तणो आचारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २० ॥ जीस्वामी आपतणी परसंसा करे, पेलापर धरे द्वेषजी ॥ जीस्वामी ज्यामें साधपणो तो छे नहीं, चवदे सुत्र लेवोनी देखजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २१ ॥ जी स्वामी स्थानकसे लीजो मती असनादिक च्यार प्रकारजी जीस्वामी आचारंग नशीतमें वरजियो, सुत्र लीजो हिरदे धारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २२ ॥ जीस्वामी त्रठांण कारण विना, देवे पूठ पाटीया पीठजी ॥ जीस्वामी पुज कही पूजावसो, रेसो मुक्त मार्ग सुं दूरजी ॥ जीस्वामी ॥ (अर्ज) ॥ २३ ॥ जी स्वामी तिथी परबी तप नहीं करे, नहीं लोकतणी मरजादजी ॥ जीस्वामी दोई टंक उठे गौचरी,

पड्या जीभरणे-स्वादजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २४ ॥ जीस्वामी ताकताक जावे गोचरी, वली लावे ताजा मालजी ॥ जीस्वामी अरस-ऊपर नजर नहीं धरे, वली वणरयो कुन्दो लालजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥२५॥ जीस्वामी एक घरे दोन्यु टंकां, नित लावे लगावण आहारजी ॥ जीस्वामी नित पिंड आहारवेन्यां थकां, साधुने लागे तीजो अनाचारजी जीस्वा० (अर्ज) ॥२६॥ जीस्वामी ऊंचे डोरे मुहपती, पलेवणरी नहीं ठीकजी ॥ जीस्वामी, सांझ सवेरे सुई रहे, एतो किण विध माने सीखजी जी० (अर्ज) ॥ २७ ॥ जीस्वामी गछवासी सु परचो वणो, आवण जावण, होयजी ॥ जीस्वामी लेणादेणा सटापटा, साधुने करणा नहीं जोगजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २८ ॥ जीस्वामी कुण बोलीने नटे दुजो व्रत देवे खोयजी ॥ जीस्वामी साचाने झुठो करे, यतो सांग साधुरो होयजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २९ ॥ जीस्वामी प्राछित लागे समठो श्रावक पिण साखी होयजी ॥ जीस्वामी धेठा थका लेवे नहीं जारे परभवरो डर नहीं कोयजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ३० ॥ जीस्वामी खाय पीयने सुई रहे, एतो धेठा पाडकमणो ठायजी ॥ जीस्वामी वस्तर पातर राखे घणा, ज्याने जिनपासता केवायजी । जीस्वा० अ. ॥३१॥ जीस्वामी नारी आवे एकली अक्षर पद सीखण काजजी । जीस्वामी वेगी आवे रातकी, मती सीखावजो मुनिरायजी । जीस्वा० अ. । ३२ । जी स्वामी सावद्य भापानी चोपिया, मेलोह मंडावण काजजी । जीस्वामी पढी जमावे आपणी, वे-

रोग विना सव फोकजी । जीस्वा० अ. । ३३ । जीस्वामी श्रावक मात पिता जिसा; वले सीख देवे भली रीतजी । जी० स्वामी ज्याने कांटा खीला सरीखा गिणे, ज्याने फिरफिर करे फजीतजी जीस्वा० (अर्ज) । ३४ । जीस्वामी सवदे सुण थारे भूलिया, नवका नहीं जाणे नामजी । जीस्वामी गाम ढंढेरो फेरावियो, येतो श्रावक म्हारो मामजी । जीस्वा० (अर्ज) । ३५ । जीस्वामी ऐसा श्रावक जाणो भली, येतो श्रावक थारे व्रत धारजी । जीस्वामी कष्ट पड़्या कायम रहे, ग्यारे पड़िमाना पालणहारजी । जीस्वा. (अर्ज) । ३६ । जीस्वामी ऊंचा चढीने मालिये, भली जीवज्यो नरनारजी । जीस्वामी वस थांरो नहीं रेवसी, येतो नम्र थांरो लिगारजी । जीस्वा. (अर्ज) । ३७ । जीस्वामी चित्राम रांखो वैरागका, तोपण आपण छांदेजी । जीस्वामी सुई डोरांरा न्यावकूं थांने रांख्यांसु मिलसी अंधकुपजी । जी. । (अर्ज) । ३८ । जीस्वामी दुखमो आरो पांचमो, येतो निन्दाकारो लोकजी । जीस्वामी ओगणवाद जो बोलसी. येतो शुद्ध पालज्यो जोगजी । जीस्वा० (अर्ज) । ३९ । जीस्वामी सुत्र सिद्धांत वांच्या महीं, मे सूणयासु किवो उपायजी । जीस्वामी इणमें ओछो अधको होयतो, म्हाने सूत्र दीजो बतायजी । जीस्वा. (अर्ज) । ४० । जीस्वामी आचारंगमें चालियो, येतो साध तणो आचारजी जीस्वामी तिण अणुसारे पालसोतो, करसो खेवो पारजी । जीस्वा. (अर्ज) । ४१ । जीस्वामी इरजा भाषा एषणा, येतो

ओलखज्यो आचारजी । जीस्वामी गुणवंत साधु साधवी, ज्याने वन्दू बारंबारजी । जीस्वा० अ. । ४२ । जीस्वामी आपरी थापे परनिन्दा करे, तिणमे तेरे दोषजी । जीस्वामी दुजे संवर देखलो, थे किणविध जासो मोक्षजी । जीस्वा० अ. । ४३ । जीस्वामी साधु जोमें गुण अति घणा, मोसूं पूरा कह्या न जायजो । जी स्वामी सेंठारे मन भावसी, एतो ढीला-नोंदव थायजी । जीस्वा. अ. । ४४ । जीस्वामी आराधनाने निखेदना. मती करजो ताणावाणजी । जीस्वामी साधु साधवी लेवेजिको, उरो लीजो तणीवारजी । जीस्वा. अ. । ४५ ।

(दोहा) मुनीवर उठ्या गोचरी, इरजा सुमति समार । वेश्यानो पाड़ो वरजि करी फिरजो नग्र मंझार । १ ।

जीस्वामी किणकारण मे बरजियो, थेतो सांभलजो अधिकार जी । जीस्वामी शंका उपजे चित्तमें, चारित्रनो होवे विनाशजी । जीस्वा० अ. । ४६ । जीस्वामी मानोपेत वस्त्र चित धारजो, रंग विरंगसुं चित न आणजी । जीस्वामीजो थांरा मनमें शंका होवे, तो आचारंग लीजो देखजो । जीस्वा० अ. । ४७ । जीस्वामी आंधी कांणी कुबडी, वली टुंटी तिरिया जाणजी, जीस्वामी जां खने ऊमारेजोमती, कोई पांगुली तिरिया जाणजी । जी० अ. । ४८ । जीस्वामी नग्रमें उठ्यां गोचरी, एक मूंडासूं लीजो आहारजी । जीस्वामी आछा आछा ताकिया, कांइ लागे दोष अपारजी । जीस्वामी अ. । ४९ । जीस्वामी राजमार्ग ऊभा रहीजो मति, मती जोयजो लोहारनी सालजी ।

जीस्वामी एकलो तिरिया देखने, मतिकरज्यो घात विचारजी। जीस्वा. अ. । ५० । जी स्वामी उतावला चालो मती, मती करज्यो रसते वातजी । जीस्वामी हस्तीपरे हालो मती, येतो साधु तणो नहीं आचारजी । जीस्वामी. अ. । ५१ । जीस्वामी साधु अने आरज्यां मत वनरजो सामसामजी जीस्वामी आरज्यांरे स्थानक जायने मति वेसजोथे साधजी जी० अ. । ५२ जी-स्वामी आचार वातनोसांभलने. येतो हिरदे लीजो धारजी । जीस्वा-मी जिणजीरा वचन अराधसो तो, करसो खेवो पारजी । जीस्वामी अ० जीस्वामी समत अठारा छत्तीसमें; जोड़ी दखण देश मंझारजी । जीस्वामी जोड़ी मोतीचन्द जुगतसु, गाथा सांभलज्यो नरनारजी । जी स्वामी अर्ज सुणो श्रावक तणी

इतिश्री साध आचार वातरी सम्पूर्ण

॥ लघु आलोयणा ॥
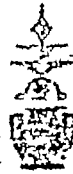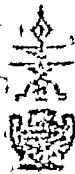
॥ अथ श्रावक लालाजी कृत लघु आलोयणा प्रारम्भ ॥

अनंत चोवीसी जिन नमु, सिद्ध अनंता कोड़-विहरमान जिन वर सवे, केवली प्रत्यक्ष कोड़ ॥१॥ गणधरादिक सब साधुजी, समकित व्रत गुणधार। यथा योग्य वंदणा करू, जिन आज्ञा अनुसार ॥२॥ मत्थेण वदामि श्रीजिनेन्द्र भगवंत देवाधिदेव अनंत केवल ज्ञानी, महाराज आपके आज्ञा रुप महा परम कल्याणकारी श्री दया धर्मादिक शुभ योगनें विषे जो जो प्रमाद कन्या कराया अनुमोद्या मन वचन कायाए करी सम्यक् प्रकारे उद्यम नहीं कन्या नहीं कराया नहीं अनुमोद्या मन वचन कायाए करी आपके अण अज्ञारूप विषय कषाय हिंसादिक पाप, आश्रव अशुभ योगनें विषे मैंने घणा घणा उद्यम कन्या कराया अनुमोद्या मन वचन काया करी एक अक्षरके अनतवें भाग मात्र स्वप्नमें भी ज्ञान दर्शन चारित्र दान शील तप भावना उपशम विवेक संवर सामायिकादिक छव आवश्यक पोसो अभिग्रह नियम व्रत पच्चखाण सुमति गुप्ती समता धीरज वैराग भावरूप सज्झाय ध्यान मौनादिक निज स्वरूप मुक्ति मार्गकी विराधनादिक अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार जाणतां अजाणतां मन वचन काया करी अविनय अभक्ति असातना

अधैर्य आदिक अविवेक पणे करी अविधि प्रमुख घणा अशुद्ध व्यवहार कर्‍या कराया अनुमोद्या मन वचन काया करी वारंवार तस्स मिच्छामी दुक्कडं ।

॥ दुहा ॥

देवगुरू धर्म सूत्रमें, नव तत्वादिक जोय । अधिका ओछा जो कह्या, मिच्छामी दुक्कड़ मोय ॥१॥ श्रद्धा अशुद्ध प्ररूपणा, करी फर सना सोय । जाण अजाण पक्षपातमें, मिच्छामी दुक्कड़ मोय ॥२॥ जो मे जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार । प्रभु आपरी साखसें, वारंवार धिक्कार ॥३॥ सुत्र अर्थ जाणु नहीं, अल्प बुद्धि अणजाण । जिन भाषित सब शास्त्रका, अर्थ पाठ परमाण ॥४॥ पतित उधारण नाथजी, अपणो विरुद विचार । भूल चूक सब माहरी, खमीये वारंवार ॥५॥ माफ करो सब माहरा, आज तलकना दोष । दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष ॥६॥ निश्चल चित्त सिद्धांत रस, विघ्न रहित गुरु सेव । इह भव पर भव धर्म रुचि, रहो मुझे जिन देव ॥७॥ छुटुं पिछला पापसें, नया न बांधु कोय । श्रीगुरुदेव प्रसादसें, सफल मनोरथ होय ॥८॥

महा परम कल्याणकारी श्रीजिन शासनमें एक एक बोलसें लगायके कोड़ाकोडि बोल यावत् संख्याता असंख्याता अनंता अनंता बोल तांई जो मे जाणवा जोग बोल सम्यक् प्रकारे जाण्या नहीं सर्ध्या नहीं परसोल्या नहीं रूच्या नहीं विपरीत पणे श्रद्धा परूपणा फरसणा करी करावी अनुमोदी मन वचन काया करी तस्स

मिच्छामी दुक्कड़ इति एक एक बोलसें जाव असंख्याता अनंता बोल तांई जो मे आदरवा जोग बोल आदर्‍या नहीं आराध्या नहीं पाल्या नही फरस्या नहीं विराधनादिक करी करावी अनुमोदी मन वचन काया करी तस्स मिच्छामी दुक्कड़ ।

॥ दुहा ॥

कहवामे आवे नहीं, अवगुण भर्‍या अनंत । लिखवामे क्युंकर लिखुं, जाणो श्रीभगवंत ॥१॥ अरिहंत सिद्ध सर्व साधुजी, जिन आज्ञा धर्म सार । मंगलीक उतम सदा, निश्चय सरणा च्यार ॥२॥

इति लघु अलोयणा समाप्त ॥

षट द्रव्यनी सज्झाय ।
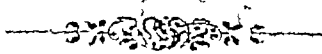
षट द्रव्य ज्यामे कह्यो भिन्न भिन्न, आगम सुणत बखाण । पंचास्तीकाया नव पदारथ, पांच भाख्या ज्ञान ॥ १ ॥ चारित्र तेरे कह्या जिनवर, ज्ञान दर्शन प्रधान । जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण सुध मन ध्यान ॥ २ ॥ चौबीस तिर्थंकर लोक माही, तिरण तारण जहाज । नव वास नव प्रतिवास देवा, बारे चक्रवर्ती जाण ॥ ३ ॥ बलदेव नव सब हुआ त्रेसठ, घण गुणारी खाण । जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण सुध मन ध्यान ॥ ४ ॥ च्यार देशना दिवी जिनवर, कियो पर उपकार । पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत, च्यार शिक्षा धार ॥ ५ ॥ पांच संवर जिनेश भाख्या, दया धर्म प्रधान । जो शात्र नित सुणो भवियण, आण सुध मन ध्यान ॥ ६ ॥ और कहांलग करू वर्णव, तीन लोक प्रमाण । सुणता पाप विनाश जावे, थाय पद निर्वाण ॥ ७ ॥ देव विमाणीक मांहे पदवी, कही पांच परधान । जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण सुध मन ध्यान ॥ ८ ॥

॥ इति ॥

॥ दोहा ॥

वासी विकानेरका, जैन, श्वेताम्बर, जाण ॥
ओसवंसघर सेठिया, श्रावक भैरोदान ॥ १ ॥
वहु ग्रंथे संग्रह कियो, अल्प बुद्धि अनुसार ॥
भूल चूक जो होवे, लीजो विद्वान सुधार ॥ २ ॥

ॐ

शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

सेवंभंते २ गौतम बोले सही श्री-महावीरके वचनमें कुछ सन्देह नहीं। जैसा लिखा हुआ, देख्या वांच्या या सुण्या, वैसाही अल्प बुद्धिके अनुसार लिखा हैं, तत्व केवली गम्य। अक्षर पद ह्रस्व दीर्घ कानोमात, मिंडी, ओछो अधिको, आगो पाछो अशुद्धपणे लिख्यो होय वा कोई नरहकी छपाणेमें ज्ञानादिककी विराधना कीनी होय अजाणतें कोई दोष लाग्यो होय तो सकल श्री संघके साखमें मन वचन काया करी मिच्छामी दुक्कडं।

॥ इति पडिलामान समाप्तम् ॥

श्रीवीतरागाय नमः

श्री ज्ञान थोकड़ा संग्रह ।

भाग पहिला.

संग्रह कर्त्ता :—

धर्मचन्दजी तत्पुत्र भैरोंदान सेठिया,

मोहल्ला मरोटियों की गवाड़,

बीकानेर, राजपूताना, (इंग मारवाड़)

BHAIRODAN SETHIA,

MOHOLLA MAROTIAN,

Bikaner Rajputana,

J. B. Ry. (MARWAR)

प्रथमावृत्ति | वीर सम्वत् २४४७ विक्रम सम्वत् १९७७ ई० सन् १९२१ | १००० प्रत

* श्रीवीतरागाय नमः *

श्री ज्ञान थोकड़ा संग्रह ।

भाग पहिला.

संग्रह कर्ता :—

धर्मचन्दजी तत्पुत्र भैरोदान सेठिया,

मोहल्ला मरोटियां की गवाड़,

बीकानेर, राजपूताना (देश मारवाड़)

BHAIRODAN SETHIA,

MOHOLLA MAROTIAN,

Bikaner Rajputana.

J.-B. Ry. (MARWAR)

प्रथमावृत्ति } वीर सम्वत् २४४७ / विक्रम सम्वत् १९७७ / ई० सन् १९२१ { १००० प्रत

॥ दोहा ॥

केवल ज्ञानीको सदा, बन्दु बे कर जोड ।
गुरु मुखसें धारण करो, अपनी जिद्दको छोड ॥१॥
जिन वचन तहमेव सत्य, समभाव नहीं तांण ॥
जतनासें वाचो सही, येही प्रभुको वांण ॥२॥

सूचना ।

ये पुस्तक जतनासें रक्खे । आदसे अन्त तांइ बांचे ॥

उघाड़े मूख तथा चिरागके चानणों नहीं वांचे; पद, अक्षर, ओछो, अधिको, आगो, पाछो, तथा कानो मात, मिंडो, ह्रस्व, दीर्घ अशुद्ध टूटी भाषासें लिख्यो हुयो विद्वान कृपाकर शुधार लेवें प्रसिद्ध कर्ताकी यही नम्र विन्ति है ।

॥ अनुक्रमणिका ॥

पानो

॥ शिक्षा श्लोक ॥

त्यजेद्धर्म्मं दयाहीनं, विद्या हीनं गुरुं त्यजेत्

त्यजेत्क्रोध मुखी भार्या, निस्नेहान्बांधवांस्त्यजेत् ।

बिना दयारो धर्म, बिना ज्ञानरो गुरु, क्रोध

मुखी भार्या, बिना स्नेह रा बान्धव तजे ॥

* श्रीवीतरागाय नमः *

अथ पच्चीस बोलको थोकड़ो लिख्यते

१ पेहलेबोले गति च्यार ।

२ दुजे बोले जात पांच ।

३ तीजे बोले काय छव ।

४ चोथे बोले इन्द्रि पांच ।

५ पांचमें बोले पर्याय (प्रजाय) छव ।

६ छठे बोले प्राण दश ।

७ सातमें बोले शरीर पांच ।

८ आठमें बोले योग (जोग) पनरे ।

९ नवमें बोले उपयोग बारा ।

१० दशमें बोले कर्म आठ ।

११ इग्यारमें बोले गुणठाणा १४ (गुणस्थान चवदे) ।

१२ बारमें बोले पांच इन्द्रियांकी तेवीस विषय ।

१३ तेरमें बोले मिथ्यात दश और पनरा, कुल पच्चीस ।

१४ चउदमें बोले, नव तत्वको जाणपणो ।

(छोटी नवतत्वका ११५ बोल, वड़ी नवतत्वका बोल १७०८ भेदानभेद घणा)

१५ पनरमें बोले आत्मा आठ ।

१६ सोलमें बोले दंडक चोवीश ।

१७ सतरमें बोले लेश्या छव ।

१८ अठारमें बोले दृष्टि तीन ।

१९ उगणीशमें बोले ध्यान च्यार ।

२० बीशमें बोले षट् (छव) द्रव्यका तीस भेद ।

२१ एकवीशमें बोले राशि दोय —जीव राश, अजीव राश ।

२२ बावीशमें बोले श्रावकरा बारा व्रत ।

२३ तेवीशमें बोले पाच महाव्रत साधुजीका ।

२४ चोवीशमें बोले गुणपचास भांगाको जाणपणो ।

२५ पचीशमें बोले चारित्र पांच (पांच प्रकारका)

।। विस्तार सहित ।।

१ पहिले बोले गति ४ गति किसको कहते हैं ? गति नामा नामकर्मके उदयसे जीवकी पर्याय विशेषको गति कहते हैं। गतिके कितने भेद हैं ? च्यार हैं :—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति ।

२ दुजे बोले जाति ५ जाति किसको कहते हैं ? अव्यभिचारी सदृशतासे एक रूप करनेवाले विशेषको जाति कहते हैं। अर्थात् वह सदृश धर्मवाले पदार्थों को ही ग्रहण करता है। जातिके कितने भेद हैं ? पांच हैं:—एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ।

३ तीजे बोले काया ६ काय किसको कहते हैं ? त्रस, स्थावर नाम कर्मके उदयसे आत्माके प्रदेश प्रचयको काय कहते हैं।

कायाके कितने भेद हैं ? छव हैं—गोत्र-पृथ्विकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, बनास्पतिकाय, त्रसकाय। नाम—इन्दीथावर काय, बंबीथावरकाय, सप्पीथावर काय, सुमति-थावर काय, पयावचथावर काय, जंघम काय।

पृथ्वी काय

माटी, हींगलु, हड़ताल, भोडल, भाठो, हीरा, पन्ना आद देइने सात लाख जात हैं, एक कांकरेमे असख्याता जीव श्रीभगवंत फरमाया है, पृथ्विकायरो वर्ण पीलो है, स्वभाव कठोर है, संठाण मसुरकी दालरे आकार है, पृथ्वीकायको कुल १२ लाख कोड़ है, एक परजापतकी नेसराय असख्याता अपरजापत है।

अपकाय

बरसादरोपाणी, ओसरोपाणी, गड़ारोपाणी, समुद्ररोपाणी धवररोपाणी, कुवा, वावड़ीरो पाणी, आद देइने सात लाख जात है, एक पाणीरी बुंदमें असंख्याता जीव श्रीभगवत फर-माया है, एक पर्यामकी नेश्राय असख्याता अपरजापत छे, अपकायरो वर्ण लाल है, स्वभाव ढीलो है, सठाण पाणीके पपोटे माफक है उसको कुल ७ लाख कोड़ है।

तेउकाय

अगनि, झालकी अगनि, बीजलीकी अगनि, बांसरी अगनि उलकापात आद देइने सात लाख जात है, एक अगनिरे चीणक (पतंग) में असंख्यात जीव श्रीभगवंत फरमाया छे, एक प्रजापतकी नेसराय असंख्यात अपजापत छे, तेउकायरो वर्ण

तो सफेद है, स्वभाव उष्ण (गरम) है, संठाण सुइके भारे माफकहै सुइरीअणी पतली इसी तरह अगनिरी झाल नीचेसे मोटी उपरसे पतली, उसको कुल तीन लाख कोड़ है।

वाउ काय

उडणीया वाय, मंडणीया वाय, घण वाय, तण वाय, पूरव वाय, पश्चिम वाय आद देइने तीन लाख जात है, एक फउंकमाए (फुंकमें) असंख्याता जीव श्री भगवान फरमाया है, एक प्रजापतकी नेसराय असंख्याता अप्रजापत है।वायुकायरो वर्ण सवज है (हरो) स्वभाव वाजणो है, संठाण धजा पताका के आकार है। उसकी कुल ७ लाख कोड़ है।

वनास्पति काय

बादरका २ भेद, प्रत्येक, साधारण, वनास्पति-कायको वर्ण कालो है, स्वभाव, सठान नाना प्रकारका है, कुल २८ लाख कोड़ है, एक शरीरमें १ जीव होवे उसको प्रत्येक कहीये जैसे आम, अंगुर, केला, वड़, पीपल आद देइने १० लाख जात है, कन्दमूलकी जातिने साधारण वनस्पति कहिये, जैसे लशण, सकरकंद, अदरक, आलु रतालु मुला, कचीहल्दी, गाजर लीलण, फूलण आद देइने १४ लाख जात है।

कन्दमूल,

एक सुईरे अग्रभागमें असंख्याता श्रेणी है, एक एक श्रेणीमें असंख्याता परतल है, एक एक परतलमें असंख्याता गोला, एक एक गोलामें असंख्याता शरीर है, एक एक शरीरमें

अनन्ता जीव है, निगोदको आउखो ज० अन्तर मोहरतको उ० अन्तर मोहरतको चवे और उपजें ।

त्रसकाय

त्रसकाय जो जीव हाले चाले, छायांको तड़के आवे तड़के को छाया जाय उसका च्यार भेद बेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री, पञ्चेन्द्री

१ बेन्द्री एक काया, दूजो मुख ये दो इन्द्री होवे उसको बेन्द्री कहिये । जैसे संख, कोड़ी, सीप, लट, कीड़ा, अलसिया, करमी (चूरणीया) वालो आद देइने दोय लाख जात है । उसका कुल ७ लाख क्रोड़ है ।

२ तेन्द्री जो एक काय, दुजो मुख, तीजो नाक ये तीन इन्द्री होवे उसको तेन्द्री कहिये जैसे, जूं, लीख, चांचड़, माकड़ कीड़ी, कंथवा, मकोड़ा, कानखजुरा आद देइने दोय लाख जात है उसका कुल ८ लाख क्रोड़ है ।

३ चौरेन्द्री-एक काया, दूजो मुख, तीजो नाक चौथी आंख ये च्यार इन्द्रीयां होवेउसको चौरेन्द्री कहिये जैसे, माखी डांस, मच्छर, भमरा; टीड, पत्यंग्या, (पतंगीया) कसारी आद देइने दोय लाख जात है । उसको कुल ९ नव लाख क्रोड़ है ।

४ पञ्चेन्द्री—एक काय, दूजो मुख, तीजो, नाक, चोथी आंख, पांचमो कान ये पांच इन्द्रीयां होवे उसको पञ्चेन्द्री कहिये । छनकायां एकमहोरतमें (एक जीव)उत्कृष्ट कितना भव करे ?

पृथ्वीकाय, अप्पकाय, तेऊकाय, वाउकाय एक महोरतमे उत्कृष्टा भव करे १२८२४

बादर वनस्पतिकाय एक महोरतमें उत्कृष्टा भवकरे ३२०००

सुक्ष्म वनस्पतिकाय एक महोरतमें उत्कृष्टा भवकरे ६५५३६

बेन्द्री एक महोरतमे उत्कृष्टा भव करे ८०

तैन्द्री एक महोरतमें „ „ „ ६०

चौरेन्द्री „ „ „ „ „ ४०

असन्नी पञ्चेन्द्री एक महोरतमें „ २४

सन्नी „ „ „ „ „ „ १

४ चोथे बोले इन्द्री ५ इन्द्री किसको कहते हैं? आत्माके लिङ्गको (चिन्हको) इन्द्री कहते हैं। इन्द्रीके कितने भेद हैं? पांच है—सुरतइन्द्री, चक्षुइन्द्री, घ्राणइन्द्री, रसइन्द्री, स्पर्श-इन्द्री (फरसइन्द्री) इनके नाम गोचरी, अगोचरी, दुमोही, चरपरी, अचरपरी।

५ पांचमें बोले पर्याय ६ पर्याय किसको कहते हैं? गुणके विकारको पर्याय कहते हैं। पर्यायके कितने भेद है? छच है आहार पर्याय, शरीर पर्याय, इन्द्रीय पर्याय, श्वासोश्वास पर्याय, भाषा पर्याय (वचनपर्याय) मन पर्याय। एक पर्याय बणे, एक पर्याय बिगड़े उसको पर्याय कहिये।

६ छट्ठे बोले प्राण १० सुरतइन्द्री बलप्राण, चक्षुइन्द्री बल प्राण, घ्राणइन्द्री बलप्राण, रसइन्द्री बलप्राण, स्पर्शइन्द्री बलप्राण, मन बलप्राण, वचन बलप्राण, काया बलप्राण, श्वासोश्वास

बलप्राण, आउखो बलप्राण। प्राण किसको कहते हैं ? जिनके संयोगसे यह जीव जीवन अवस्थाको प्राप्त हो और वियोगसे मरण अवस्थाको प्राप्त हो, उनको प्राण कहते हैं।

सातमें बोले शरीर ५, उदारीक, वैक्रिय, आहारिक, तेजस, कारमण। उदारिक शरीर किसको कहते हैं? मनुष्य, तिर्यंचके स्थूल शरीरको उदारिक शरीर कहते हैं; हाड़, मांस, लोही, राध इत्यादिकसे बना हुआ है, इसका स्वभाव गलना, सड़ना, विध्वंस (विनाश) पामनेका है।

वैक्रिय शरीर किसको कहते हैं ? जो छोटे, बड़े, एक, अनेक आदि नाना क्रियाओंको करे, ऐसे देव और नारकियोंके शरीरको वैक्रिय शरीर कहते हैं; अथवा सड़े नहीं, पड़े नहीं, विनास पामे नहीं, बिगड़े नहीं, मरनेके बाद कपुरकी तरह बिखर जाय, उसको वैक्रय शरीर कहते हैं।

आहारिक शरीर किसको कहते है ? छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिके तत्त्वोंमें कोई शङ्का होनेपर केवली वा श्रुत केवलीके निकट जानेके लिये मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है, (कोई लब्धी धारी मुनिराज अप्रमाद करीने ज्ञान भण्या प्रमाद करीने ज्ञान विसरजन हो गया कोई विचक्षण चतुर पुरुष आयने प्रश्न पुछ्यो उस वखत मुनिराजको उपयोग लाग्यो नहीं जद आपरे शरीर मायसुं एक हाथरो पूतलो निकाल्यो उस पूतलेको जहां तिर्थंकर महाराज व केवली महाराज होवे उठे भेज्यो उठासे तिर्थंकर महाराज व केवली

महाराज विहार कर गया तब वहांपर उस एक हाथके पुतले मेंसे मुण्डे हाथका पूतला निकला जहां पर तिर्थंकर महाराज व केवली महाराज थे वहांपर जाकर प्रश्नका उत्तर लेकर मुण्डे हाथका पुतला एक हाथके पुतलामें समा गया, एक हाथका पुतला मुनिराजके शरीरमें समा गया तब मुनिराजने प्रश्नका अन्तर मोहरतमें जवाब दिया, मुनिराज अहारिककी लब्धी फोड़ी (पुतलो निकाल्यो) उसकी अलोवणा किया विगर काल प्राप्त हो जाय तो विराधीक और आलोचना कर ले तो आराधिक)।

तेजस शरीर किसको कहते हैं? अहारको ग्रहण करके पचावे उसको तेजस शरीर कहते हैं।

कारमाण शरीर किसको कहते हैं? ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के समूहको कारमाण शरीर कहते हैं।

"संसारी" जीवके तेजस, कारमाण शरीर हर वक्त साथ ही रहते हैं।

आठमें बोले योग (जोग) १५: योग किसको कहते हैं? पुद्गल विपाकी शरीर और अंगोपांग नामा नाम कर्मके उदयसे मनोवर्गणा वचनवर्गणा तथा कायवर्गणा (आहारवर्गणा तथा कार्मण वर्गणा) अवलम्बनसे कर्म नोकर्मको ग्रहण करनेकी जीवकी शक्ति विशेषको भावयोग कहते हैं। इस ही भाव-योगके निमित्तसे आत्म प्रदेशके परिस्पन्दको (चञ्चल होनेको) द्रव्ययोग कहते हैं।

योगके कितने भेद हैं ? पन्द्रह हैं—१ सत्यमनयोग २ असत्यमनयोग ३ मिश्रमनयोग (उभयमनोयोग) ४ व्यवहार मनयोग (अनुभयमनो योग) ५ सत्यभाषा ६ असत्य भाषा ७ मिश्रभाषा ८ व्यवहार भाषा ९ औदारिक १० औदारिकमिश्र ११ वैक्रियक १२ वैक्रियक मिश्र १३ आहारक १४ आहारकमिश्र १५ कार्माण।

नवमें बोले उपयोग १२ पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, च्यार दर्शन; १ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनः पर्ययज्ञान (मनपरजवज्ञान) ५ केवलज्ञान ६ मतिअज्ञान ७ श्रुत अज्ञान ८ विभगज्ञान (कुअवधिज्ञान) ९ चक्षु दरसण १० अचक्षु दरसण ११ अवधि दरसण १२ केवल दरसण।

दसमें बोले कर्म आठ १ ज्ञानावर्ण २ दर्शनावर्ण ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र ८ अंतराय। कर्म किसको कहते हैं ? जीवके राग द्वेषादिक परिणामोंके निमित्तसे कार्माण वर्गणा रूप जो पुद्गलस्कध जीवके साथ बंधको प्राप्त होते हैं, उनको कर्म कहते हैं।

इग्यारमे बोले गुणस्थान चवदे १ मिथ्यात्व २ सासादन (सास्वादान) ३ मिश्र ४ अविरतसम्यकदृष्टी ५ देशविरत (देशव्रती) ६ प्रमतविरत (प्रमादो) ७ अप्रमतविरत (अप्रमादी) ८ अपूर्वकर्ण (निवर्तिबादर) ९ अनिवर्तिबादर (अनिवृत्तिकर्ण) १० सूक्ष्मसम्पराय ११ उपशांत मोहनीय १२ क्षीण मोहनीय १३ सयोगीकेवली १४ अयोगीकेवली।

गुणस्थान किसको कहते हैं ? मोह और योगके निमित्तसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप आत्माके गुणोंकी तारतम्यरूप अवस्था विशेषको गुणस्थान कहते हैं।

११ वारमे बोले पांच इंद्रियोंकी तेवीस विषय, २४० विकार।

विषय ।

१ श्रुत इन्द्रिका तीन विषय १ जीव शब्द २ अजीव शब्द ३ मिश्र शब्द ।

२ चक्षु इन्द्रिका पांच विषय १ कालो (वर्ण) २ नीलो ३ रातो ४ पीलो ५ धोलो ।

३ घ्रणेंद्रियका दोय विषय १ सुरभी गंध २ दुरभिगन्ध ।

४ रसेंद्रिका पांच विषय १ तीखो (रस) २ कडुवो ३ कसायलो ४ खटो ५ मीठो ।

५ स्पर्शेन्द्रिका आठ विषय १ खरखरो (फरस) २ सुंहालो ३ भारी ४ हलको ५ ठंढो ६ उनो ७ चोपड्यो ८ लुखो ।

प्रश्न—शरीरमें खरखरी क्या ? उत्तर पगरी पडी, सुंहालो क्या ? गलेरो तालवो, भारी क्या ? शरीरमें हाडका; हलका क्या ? केश; ठंढी क्या ? कानकी लोल; उनो क्या ? कालजो; चोपड़ी क्या ? आंख; लुखी क्या ? जीभ ।

विकार ।

१२ विकार श्रुतेन्द्रिके १ जीव शब्द २ अजीव शब्द ३ मिश्र

शब्द ए ३ शुभ ३ अशुभ ए छव ; ६ उपर राग ६ उपर द्वेष ए बारा ।

६० विकार चक्षुइन्द्रिके पांच विषयका ५ सचित्त ५ अचित्त ५ मिश्र ए १५ शुभ १५ अशुभ ये तीस ३० उपर राग ३० उपर द्वेष ए साठ ।

१२ विकार घ्रणेंद्रिके दोय विषयका, २ सचित्त २ अचित्त २ मिश्र ए छव, ६ उपर राग ६ उपर द्वेष ए बारा ।

६० विकार रसइन्द्रिके पांच विषयका, ५ सचित्त ५ अचित्त ५ मिश्र ए पनरा, १५ शुभ १५ अशुभ ए तीस, ३० उपर राग ३० उपर द्वेष ए साठ ।

९६ विकार फरसेंन्द्रिके आठ विषयका ८ सचित्त ८ अचित्त ८ मिश्र ए चोवीस, २४ शुभ २४ अशुभ ए अडतालीस, ४८ उपर राग ४८ उपर द्वेष ए छनवे ।

१३ तेरमें बोले मिथ्यातरा १० और १५=२५ बोल (याने पचीस प्रकार)

१. अभिग्रह मिथ्यात्व ते अपने ध्यानमे आवे सो साचा, अर्थात् अपना ही मन मान्यो माने ।

२. अनाभिग्रह मिथ्यात्व ते हठग्राही तो नहीं, परन्तु सत्य असत्यका निर्णय नहीं कर सके, एक ही नहीं माने ।

३. अभिनिवेश मिथ्यात्व अपणी लीवी टेक छोड़े नहीं

४. संशय मिथ्यात्व डामाडोल चित्त राखे, संशय करे, निश्चय नही लावे, धर्म अहिसा लक्षण है कि नहीं इत्यादिक

मतिहै विश्य (दुब्ध्या) को संशय मिथ्यात्व कहते हैं ।

५. अणाभोग मिथ्यात्व अज्ञान पणा से लागे, उपयोग सुन्य भावे (सुन्य उपयोगपणे) ।

६. लौकिक मिथ्यात्वके ४ भेद, (१) देवगत मिथ्यात्व भैरू भवानी इत्यादि देव माने, (२) गुरुगत मिथ्यात्व गंगागुरु इत्यादि गुरु माने, (३) धर्मगत मिथ्यात्व नदि आदि स्नानमे धर्म माने, (४) पर्वगत मिथ्यात्व होली दशहेरादि पर्व माने ।

७. लोकोत्तर मिथ्यात्वका ४ भेद देव, गुरु, धर्म, पर्व । देव अठारे दोष रहित, गुरु निग्रंथ, धर्म दया मूल, पर्व जिन कल्याण कदिन वा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, साधनके दिन, पजूसण इन उत्तम कु इस लोकके सुस्वार्थ माने ।

८, कुप्रावचन मिथ्यात्व इसके ४ भेद हैं देव-हरीहर ब्रह्मादि; गुरु-बावा जोगी आदि; धर्म-स्नान, जप, होम आदि; पर्व-लोकीक कार्य माने यो इनके शास्त्रोंको माने,सो कुप्रावचन मिथ्यात्व ।

९, उणो मिथ्यात्व श्रीवीतराग प्रभु प्ररूपणा करी उनसे ओछा प्ररूपे वा ओछा श्रद्धे । जैसे कोइ कहे जीव अंगुठा मात्र है, तंदुल मात्र है, शामा मात्र है दीपक मात्र है ऐसी ओछी परूपणा करे सो मिथ्यात्व ।

१०, अधिको मिथ्यात्व श्री वीतरागके परूपणा करसे अधिक

सरदहेणां वा प्ररुपणां करे सो। जैसेके एक जीव सर्व लोक ब्रह्माण्ड मात्र मां व्यापि रह्यो अधिक परूपणा करे सो मि०।

११, विपरीत मिथ्यात्व श्री भगवंत भाष्या अर्थसे विपरीत सरदहेणा वा प्ररुपणा करे, सात नीन्हवनी परे।

१२, धर्म्म, को अधर्म समझे, जैसे सत्य, दया, मूल धर्म श्री भगवानने फरमाया उसको न माने सो मिथ्यात्व।

१३, अधर्मको धर्म्म समझे जैसे कन्या दान, यज्ञ होमादिकमें सो मिथ्यात्व।

१४, साधुको कुसाधु समझे सो मिथ्यात्व जैसे गुण सयुक्त ज्ञानी दानी तपस्वी क्षमावान्, वैरागी, जीतेन्द्रि, ऐसे उत्तम गुणो के धारक कुं मत पक्ष करके द्वेष बुद्धि सुं असाधु समझे या श्रद्धे सो मि०।

१५, असाधु को साधु समझे सो मिथ्यात्व, जैसे प्राणाति-पातादि, अट्ठारे पापस्थानक सेवे, सेवावे, अनुमोदे, जिन आज्ञासे विरूद्ध वर्तने वालोंको साधु श्रद्धे सो मि०।

१६, जीव कु अजीव समझे सो मिथ्यात्व, जैसे पर्याय, प्राण, योग, उपयोगादिधारक, एकेन्द्रिआदि जीव को अजीव समझे या श्रद्धे सो।

१७, अजीव को जीव समझे सो मिथ्यात्व, जैसे सुका काष्ट, निर्जिव पाषाण, वस्त्र इनको जीवका आकार बनायकर उसे जीव श्रद्धे सो।

१८. मार्गको उन्मार्ग समझे सो मिथ्यात्व, जैसे शुद्ध निर्दोष, सरल, सत्य, मोक्षमार्ग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दया, शील, दान संतोष, क्षमा, इत्यादिक को कर्म्मबंधका, संसारमें रुलानेका मार्ग बतावे, दया दान उत्थापे सो।

१९. उन्मार्गको मार्ग श्रद्धे, सो मिथ्यात्व; जैसे सातकुव्यसन का सेवन, काम क्रीड़ा करना, स्नान इत्यादि संसारमें परिभ्रमण करानेका जो मार्ग है, उनको मोक्षका हेतु श्रद्धे सो।

२०. रूपी पदार्थको अरूपी श्रद्धे सो मिथ्यात्व, जैसे वायुकायादि सूक्ष्म होनेसे दृष्टि न आवे उनको अरूपी श्रद्धे सो मि०

२१. अरूपीको रूपी समझे सो मिथ्यात्व, जैसे धर्मास्तिकायादि जो अरूपी हैं उनको रूपी श्रद्धे सो।

२२. अविनय मिथ्यात्व, जिनेश्वर तथा गुरुका वचन उत्थापे, गुणवन्त, ज्ञानवन्त, तपस्वी, वैरागी इत्यादि उत्तम पुरुषोंसे कृतघ्नीपणो करे, छिद्र देखता रहे, निन्दादि अविनय करे सो मिथ्यात्व।

२३. आशातना मिथ्यात्व, गुरुकी ३३ आशातनाका काम करे सो मिथ्यात्व।

२४. अक्रिया मिथ्यात्व, जैसे प्रतिक्रमणादिक क्रिया न माने सो मिथ्यात्व।

२५. अज्ञान मिथ्यात्व, जैसे सत्य असत्यका विवेक न होनेसे सांसारिक कार्य कामों का बंधन रूप जैसाका तैसा रहनेसे

और सत्य ज्ञानका अभावसे अज्ञानको थापे सो मिथ्यात्व जैसे पशुवध को धर्म समझे।

१४ चवदमेंबोले नवतत्वको जाण पणो, नवतत्वका नाम १ जीवतत्व २ अजीवतत्व ३ पुण्यतत्व ४ पापतत्व ५ आश्रवतत्व ६ संवर तत्व ७ निर्झरातत्व ८ बंधतत्व ९ मोक्षतत्व।

जीवतत्व।

१ जीवतत्व किसको कहिये? जीव चेतना सहित, सुख दुखका वेदक, प्रजाय प्राणका धरता, आठ कर्मका कर्ता, आठ कर्मका भोक्ता, सदाकाल सासता रहे, कदेही विनसे नहीं, छायांका तावड़े जाय, तावड़ेका छायां आवे, असंख्यात प्रदेशी, उसको जीव तत्व कहिये, जीवका दोय भेद १ सुक्ष्म २ बादर।

सुक्ष्म जीव किसको कहिये? लोक माहें काजलकी कुंपली समान भरया छे, काट्या कटे नहीं, वाढ्या वढे नहीं, जाल्या जले नहीं, पानीमें डुबे नहीं, आयुष आया मरे, विना आयुष्य मरे नहीं, केवल ज्ञानीके नजर आवे, छद्मस्तके नजर आवे नहीं उसको सुक्ष्म एकेन्द्री कहिये।

बादर जीव किसको कहिये? लोकके देशमें रह्या छे। काट्या कटे, वाढ्या वढे, जाल्या जले, पानीमें डुबे, आयुष्य आयां मरे, व्यवहारमें विना आयुष्य मरे, केवलज्ञानीके नजर आवे, छद्मस्तके नजर आवे, एकका दोय भाग होवे, उसको बादर जीव कहिये।

जीवका चउदे भेद (संसारी जीवका १४ भेद)

सुक्ष्म एकन्द्रिका	२	भेद	अप्रजापता,	प्रजापता,
बादर एकन्द्रिका	"	"	"	"
वेन्द्रिका	"	"	"	"
तेन्द्रिका	"	"	"	"
चौन्द्रिका	"	"	"	"
असन्नी पंचेन्द्रिका	"	"	"	"
सन्नी पंचेन्द्रिका	"	"	"	"

अजीव तत्व।

अजीव तत्व किसको कहिये? चेतना रहित, सुख दुखको वेदे नहीं, प्रजा, प्राण, जोग, उपयोग, आठ कर्म करके रहित, जड़ लक्षण उसको अजीव तत्व कहिये। अजीवका भेद चवदा, धर्मास्ति कायाका तीन भेद १ खन्ध २ देश ३ प्रदेश। अधर्मास्ति कायाका तीन भेद १ खध २ देश ३ प्रदेश। आकास्ति कायाका तीन भेद, १ खंध २ देश ३ प्रदेश ये नव, (१०) दसमो काल ये दस अजीव अरूपी जाणना। न्यो पुद्गलका च्यार भेद १ खंधा २ खंधदेशा ३ खंध प्रदेशा ४ प्रमाणु पोगला ये च्यार पुद्गलास्ति कायाका हुवा। एवं ये कुल चवदा भेद अजीवका हुवा।

पुण्य तत्व।

पुण्य तत्व किसको कहिये? पुण्यकी प्रकृति शुभ, पुण्य बांधना दोहिलो, भोगवना सोहिलो, सुखे २ भोगवे, शुभ जोगसे

बांधे, शुभ उज्वल पुद्गलां को बंध पड़े, पुण्य प्राणीने ऊजला करे, पुण्य सोनाकी बेड़ी, पुण्यका फल मीठा उसको पुण्य तत्व कहिये। पुण्य नव प्रकारे बांधे।

१ आण पुण्ये (अन्न पुन्ने)—अहार देनेसे।

२ पाण पुण्ये—पाणी देनेसे।

३ लयन पुण्ये—जगह स्थानक वगेरा देनेसे।

४ सयन पुण्ये—सज्या, पाट, पाटला, बाजोटा, वगेरादेनेसे।

५ वत्थ (वस्त्र) पुण्ये—वस्त्र, कपडा देनेसे।

६ मन पुण्ये—शुभमन राखनेसे, दानरूप, शीलरूप, तपरूप, भावनारूप, दयारूप आदि देईने शुभ मन राखनेसे।

७ वचन पुण्ये—मुखसे शुभ वचन बोलनेसे, व अच्छा वचन निकलनेसे।

८ काय पुण्ये—कायासे दयापालनेसे, कायासे सेवा चाकरी, विनय, व्यावच करनेसे।

९ नमस्कार पुण्ये—उत्तम गुणवन्त जाणकर नमस्कार करनेसे।

च्यार कर्मके उदय ४२ प्रकारे भोगवे (एक सो अड़तालीस प्रकृतिमें से शुभ शुभ).

वेदनीकी एक (शातावेदनी,) आयुष्यकी तीन, नामकी सेंतीस, गौत्रकी एक ये बयालीस।

जीवका चउदे भेद (संसारी जीवका १४ भेद)

सुक्ष्म एकन्द्रिका	२	भेद	अप्रजापता,	प्रजापता,
बादर एकन्द्रिका	"	"	"	"
बेन्द्रिका	"	"	"	"
तेन्द्रिका	"	"	"	"
चौन्द्रिका	"	"	"	"
असन्नी पंचेन्द्रिका	"	"	"	"
सन्नी पंचेन्द्रिका	"	"	"	"

अजीव तत्व।

अजीव तत्व किसको कहिये? चेतना रहित, सुख दुखको वेदे नहीं, प्रजा, प्राण, जोग, उपयोग, आठ कर्म करके रहित, जड़ लक्षण उसको अजीव तत्व कहिये। अजीवका भेद चवदा, धर्मास्ति कायाका तीन भेद १ खन्ध २ देश ३ प्रदेश। अधर्मास्ति कायाका तीन भेद १ खंध २ देश ३ प्रदेश। आकास्ति कायाका तीन भेद, १ खंध २ देश ३ प्रदेश ये नव, (१०) दसमो काल ये दस अजीव अरूपी जाणना। रूपी पुद्गलका च्यार भेद १ खंधा २ खंधदेशा ३ खंध प्रदेशा ४ प्रमाणु पोगला ये च्यार पुद्गलास्ति कायाका हुवा। एवं ये कुल चवदा भेद अजीवका हुआ।

पुण्य तत्व।

पुण्य तत्व किसको कहिये? पुण्यकी प्रकृति शुभ, पुण्य बांधता दोहिलो, भोगवतां सोहिलो, सुखे २ भोगवे, शुभ जोगसे

गमतिसे राजी होवे। अणगमतिसे बीराजी (नाराजी) होवे।

१७ मायामोसो—कपट सहित झूठ बोले, कपटाइमें कपटाइ करे।

१८ मिथ्यादर्शनशल्य—खोटी (झूठी) श्रद्धाको शल्य राखे।

बयासी प्रकारे भोगवे, आठ कर्मके उदय (१४८ प्रकृतिमेंसे ८२ अशुभ २ भोगवे) ज्ञानावरणीयकी पांच, दर्शनावर्णीयकी नव, वेदनीयकी एक, मोहनीयकी छावीस (समकित, मिश्र टली) आयुष्यकी एक, नाम कर्मकी चोतीस, गोत्र कर्मकी एक, अन्त-राय कर्मकी पांच ये बयासी।

आश्रव तत्व।

आश्रव किसको कहिये? जीव रुपीयो तलाव, कर्म रुपीयो पाणी, पान्च आश्रवद्वार रुप नाला (मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कषाय, जोग) करो भरे, उसको आश्रव तत्व कहिये। आश्रवका सामान्य प्रकारे बीस भेद।

१ मिथ्यात्व याने कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, माने सो आश्रव।

२ अवृत आश्रव याने वृत पञ्चखाण नहीं करे सो आश्रव।

३ प्रमाद याने पांच प्रमाद सेवे सो आश्रव।

४ कषाय याने पच्चीस कषाय सेवे सो आश्रव।

५ अशुभ जोग प्रवृतावे सो आश्रव।

६ प्रणातिपात जीवकी हिंसा करे सो आश्रव।

७ मृषावाद झूठ बोले सो आश्रव।

पाप तत्व ।

पापतत्व किसको कहिये ? पाप बांधता सोहिलो, भोगवतां दोहिलो, अशुभ योगसे बंधे. दुःखे २ भोगवे, पापका फल कड़वा, पाप प्राणीने मेलो करे, उसको पापतत्व कहिये । पाप अठारा प्रकारे बांधे ।

१ प्रणातिपात—छव कायाके जीवोंकी हिंसा करे ।
२ मृपावाद—असत्य (झूठ) बोले ।
३ अदत्तादान—अणदिधी वस्तु लेवे (चोरी करे)
४ मैथुन—कुकर्म (कुशील) सेवे ।
५ परिग्रह—द्रव्य (धन) राखे, ममता करे ।
६ क्रोध—आप तपे, दूसराने तपावे, कोप करे ।
७ मान—अहंकार (घमंड) करे ।
८ माया—कपटाइ, ठगाइ करे ।
९ लोभ—तृष्णा वधावे, मूर्च्छा (गिर्धीपणो) राखे ।
१० राग—स्नेह राखे, प्रीति करे ।
११ द्वेष—अणगमति वस्तु देखीने द्वेष करे ।
१२ कलह—क्लेश करे ।
१३ अभ्याख्यान—झूठा कलङ्क (आल) देवे ।
१४ पैशुन्य—दूसरेकी चाड़ी, चुगली करे ।
१५ परपरिवाद—दूसराका अवर्णवाद बोले ।
१६ रति अरति—पांच इन्द्रीकी तेवीस विषय उसमेंसे मन-

पाणी, आश्रव रूप नालो, संवरकी पाल करके (आवतां कर्माको) रोके उसको संवर तत्व कहिये।

संवरका सामान्य प्रकारे वीस भेद।

१ समकित संवर।

२ वृत पच्चखाण करे सो संवर।

३ अप्रमाद संवर।

४ अकषाय संवर।

५ शुभ जोग प्रवर्तावे सो संवर।

६ प्रणातिपात जीवकी हिंसा नहीं करे सो संवर।

७ मृषावाद—झूठ नहीं बोले सो संवर।

८ अदत्तादान—चोरी नहीं करे सो संवर।

९ मैथुन—कुशील नहीं सेवे सो संवर।

१० परिग्रह—ममता नहीं राखे सो संवर।

११ श्रोतइन्द्री—वश करे सो संवर।

१२ चक्षु इन्द्री—वश करे सो संवर।

१३ घ्राणेन्द्री—वश करे सो संवर।

१४ रस इन्द्री—वश करे सो संवर।

१५ स्पर्शेन्द्री—वश करे सो संवर।

१६ मन—वश करे सो संवर।

१७ वचन—वश करे सो संवर।

१८ काया—वश करे सो संवर।

१९ भंड—उपगरण जेणासे लेवे जेणासे मुके (रखे) सो संवर।

८ अदत्तादान चोरी करे सो आश्रव ।

९ मैथुन कुशील सेवे सो आश्रव ।

१० परिग्रह धन, कंचन, वगैरा राखे सो आश्रव ।

११ श्रोतेन्द्री मोकली मेले सो आश्रव ।

१२ चक्षुइन्द्री मोकली मेले सो आश्रव ।

१३ घ्राणेन्द्री मोकली मेले सो आश्रव ।

१४ रसेन्द्री मोकली मेले सो आश्रव ।

१५ स्पर्शेन्द्री मोकली मेले सो आश्रव ।

१६ मन मोकलो मेले सो आश्रव ।

१७ वचन मोकलो मेले सो आश्रव ।

१८ काया मोकली मेले सो आश्रव ।

१९ भंडउपगरण अजेणासे लेवे अजेणासे मुके (रखे) सो आश्रव ।

२० सुई कुसग्ग मात्र अजेणा से लेवे अजेणा से रखे सो आश्रव ।

ये सामान्य प्रकारे वीस भेद, तथा विशेष प्रकारे बयांलीस तथा सतावन भेद । ५ इन्द्रीकी विषय ४ कषाय ३ अशुभ जोग २५ क्रिया ५ अव्रत ये ४२ भेद तथा कोई २ सतावन भेद पण कहे छे बयांलीस तो ऊपर मुजब और १५ जोग ये ५७ सतावन हुआ ।

संवर तत्व ।

संवर किसको कहिये ? जीवरूपीयोतलाव, कर्मांरूपीयो

पाणी, आश्रव रूप नालो, संवरकी पाल करके (आवतां कर्मांको) रोके उसको संवर तत्व कहिये।

संवरका सामान्य प्रकारे वीस भेद।

१ समकित संवर।

२ वृत पच्चखाण करे सो संवर।

३ अप्रमाद संवर।

४ अकषाय संवर।

५ शुभ जोग प्रवर्तावे सो संवर।

६ प्रणातिपात जीवकी हिंसा नहीं करे सो संवर।

७ मृषावाद—झूठ नहीं बोले सो संवर।

८ अदत्तादान—चोरी नही करे सो संवर।

६ मैथुन—कुशील नहीं सेवे सो संवर।

१० परिग्रह—ममता नही राखे सो संवर।

११ श्रोतइन्द्री—वश करे सो संवर।

१२ चक्षु इन्द्री—वश करे सो संवर।

१३ घ्राणेन्द्री—वश करे सो संवर।

१४ रस इन्द्री—वश करे सो संवर।

१५ स्पर्शेन्द्री—वश करे सो संवर।

१६ मन—वश करे सो संवर।

१७ वचन—वश करे सो संवर।

१८ काया—वश करे सो संवर।

१६ भंड—उपगरण जेणासे लेवे जेणासे मुके (रखे) सो संवर।

२० सुइ—कुसग्ग मात्र जेणा सें लेवे जेणासे रखे सो संवर।

ये सामान्य प्रकारे बीस भेद हुवा।

विशेष प्रकारे सतावन भेद कहते है ५ सुमति ३ गुप्ति २२ परिसा १० प्रकारे जतिधर्म १२ भावना ५ चारित्र ये सत्तावन।

निर्झरा तत्व।

निर्झरा तत्व किसको कहिये? आत्माके पूर्व बंधे कर्मोंसे सम्बन्ध छूटनेको कहते हैं जैसे जीव रुपीयो कपड़ो कर्मरुपीयो मेल, ज्ञान रुपीयो पाणी, तप, संजम रुपीयो साबुसोढसे ज्युं कपड़ेको उजला करे त्युं बारा प्रकारकी तपस्या करके जीवको निर्मलो करे (अपनी आतमा को उज्वल करे) उसको निर्झरा तत्व कहिये। निर्झराका सामान्य प्रकारे १२ भेद; विशेष प्रकारे ३५४ भेद।

१	अनसन—नाना प्रकारका तप करे	इनका भेद २०
२	अणोदरी—उणो आहार करे	„ „ १४
३	भिख्याचारी—अभिग्रह करीने भिक्षा लावे	„ „ ३०
४	रस परित्याग - सरस अहारका त्याग करे	„ „ ६
५	काया क्लेश— कायाने कष्ट देवे	„ „ १३
६	पडिशलेपणा – इन्द्रीयोंके विषय विकारको, कषायको घटावे, इन्द्रीयोंका जोग रुंधे इत्यादिक	„ „ १३
७	प्रायश्चित—लागा दोषकी आलवणाकरे दंड लेवे	„ „ ५०
८	विनय—नम्रता राखे	„ „ १३४
९	वैयावच्च—सेवा सुश्रुषा करे, वैयावच्च करे	„ „ १०

१० सभाय - वांचणी लेवे, प्रश्न पूछे, हृदयमें धारे धर्मकथा फरमावे इनका भेद ५
११ ध्यान—चित्तको एकाग्रपणो „ „ ४८
१२ विउसग्ग—काउसग्ग इनका भेद ८

कुल भेद ३५४

बंधतत्व ।

बंध किसको कहते हैं? अनेक चीजोंमें एकपने का ज्ञान करानेवाले तथा आत्माके प्रदेश और कर्मके पुद्गल एकसाथ मिले, क्षीर नीरके माफिक व लोह पिण्ड अग्निके माफिक लोलिभूत होकर बंधे।

पाठान्तर ।

जीव आठ कर्मसे बंध्यो हुवो है, जीव और कर्म लोलिभूत है, जैसे दूध और पानी लोलिभूत है, हँसराज पक्षीकी चोंच (चांच) खाटी है, दूधमें घाल्यां दुध न्यारो करदे पाणी न्यारो कर दे, उस माफिक जीव रुप हँसराज ज्ञान रुपी चोंच करीने जीव जुदो करदे कर्म जुदा करदे।

बंधका च्यार भेद ।

१ प्रकृतिबंध—आठ कर्मको स्वभाव ।
२ स्थितिबंध—आठ कर्मकी स्थितिके कालका मान (प्रमाण)
३ अनुभागबंध—आठ कर्मको तीव्र मंदादि रस ।
४ प्रदेशबंध—कर्म पुद्गल के दल आत्माके साथ बंधे वो ।

इन च्यार बंधका स्वरूप मोदकके दृष्टान्त पर है जैसे १ कोई मोदक बहुत प्रकारके द्रव्यके संयोगसे उत्पन्न हुआ, वायु, पित्त, कफने जीस स्वरूप करके हणे, उसको स्वभाव कहिये, २ वोही लाडु, पक्ष मास, दोय मास तक उसी स्वरूपमें रहे उसको स्थिति बंध कहिये, ३ वही लाडु, तिखो कड़वो, कषायलो, खाटो, मीठो, होवे उसको रसबंध कहिये, ४ वोही लाडु थोड़ा भाखरका बांध्या हुवा छोटा होय (थोडा दलका निपज्या हुवा छोटा होय) ज्यादा दलका निपज्या हुवा मोटा होय उसको प्रदेशबंध कहिये ।

ये बंध जाण कर, बंधको तोडना चाहिये ; बंधको तोड़नेसे निराबाध परम सुख पावे ।

च्यार प्रकारके बंधोंका कारण क्या है ?

प्रकृति बंध और प्रदेशबंध योगसे होते हैं । स्थितिबंध औ अनुभागबंध कषायसे होते हैं ।

मोक्षतत्व ।

मोक्षतत्व जैसे सकल आत्माके प्रदेशसे सकल कर्मका छुटना सकल बंधनसे छुटना, सकल कार्यकी सिद्धि होवे, मोक्षगति पावे, उसको मोक्ष कहिये । मोक्षगति च्यार बोलसे प्राप्त होवे १ ज्ञान, २ दर्शन ३ चारित्र ४ तप ।

मोक्षके नव द्वार।

गाथा।

सत, द्रव्य, खेत, फास, काल, भाग, भाव, चेत्र :
अन्तर, अप्प, बहुत्त, अे नव मोक्ख दाराणी॥ १ ॥

१ सद्पद परूपणा—मोक्षगति पूर्वकालमें थी, वर्तमान कालमें है, आवता कालमें होवेगा, छति अस्ति है परन्तु आकाशके फूलके माफिक नास्ति नहीं।

२ द्रव्यद्वार—सिद्ध अनन्ता है, अभवी जीवसे अनन्त गुणा अधिक हैं, एक वनस्पतिकाय का जीव वर्ज कर, दुजा २३ दण्डक के जीवोंसे सिद्धके जीव अनन्ता है।

३ क्षेत्रद्वार—सिद्ध शिला प्रमाणे है, वो सिद्ध शिला ४५ लाख जोजनकी लांबी पहोलो (चवडी) है, मध्यमें (बीचमें) आठ जोजनकी जाडो है, उतरतां छेडे (किनारे) माखीकी पाँख सें भी घणी पतली है, साफ सोना सरोखो, शख, चन्द्र, अङ्क, रत्न रूपाका पट, मोतीका हार सरीखी, क्षीर सागरके पाणीसे भी बहोत उजली है (निर्मल है) उसकी परिधि (प्रधी केतां फेरी) १,४२,३०,२४९ जोजन १ गाउ १७६६ धनुष्य पुणी छत्र आंगल झाझेरी है, सिद्धके रहनेका स्थान सिद्ध शिलापर एक जोजनके छेला गाउका छट्टा भागमें है (याने ३३३ धनुष्य ३२ आंगुल प्रमाणे इतने क्षेत्रमें सिद्ध भगवंत रहें हुवे हैं)।

४ स्फर्शना द्वार— सिद्ध क्षेत्रसे कुछ अधिक सिद्धकी स्फर्शना है।

५ कालद्वार—एक सिद्ध आश्री आदि है पण अन्त नहीं, सर्व सिद्ध आश्री आदि नही और अन्त भी नहीं।

६ भागद्वार—सर्व जीवसे सिद्धके जीव अनन्तमें भाग है ; लोकके असंख्यातमें भाग है।

७ भावद्वार—सिद्धमें क्षायिक भाव, केवलज्ञान, केवलदर्शन और क्षायिक समकित और प्रणामिक भाव जो सिद्धपणा समझना।

८ आंतराद्वार—सिद्ध भगवान संसारमें आवे नहीं, एक सिद्ध जहां अनन्त सिद्ध है और अनन्त सिद्ध वहां एक सिद्ध है, इस-वास्ते सिद्धमें आंतरो नहीं।

९ अल्पा बहुत्वद्वार—सबसे थोड़ा नपुंसक सिद्धा, उससे स्त्री संख्यात गुणो सिद्धो, उससे पुरुष संख्यात गुणा सिद्धा, एक समयमें नपुंसक १० सिद्ध होवे, स्त्री २० सिद्ध होवे, पुरुष १०८ सिद्ध होवे।

जो मोक्षमें जावे वो १ भवसिद्धक २ बादर ३ त्रस ४ सन्नी ५ पर्याप्ता ६ वज्र ऋषभनाराचसंघयणवालो ७ मनुष्यगतिवालो ८ क्षायक सम्यक्त्ववालो ९ अप्रमादी १० अवेदी ११ अकषाइ १२ यथाख्यानचारित्रवालो १३ स्नातकनिग्रन्थी १४ परमशुक्लेशी १५ पण्डित वीर्यवान १६ शुक्लध्यानी १७ केवलज्ञानी १८ केवल दर्शनी १९ चरमशरीरी ये १९ बोलवाला जीव मोक्षमें जावे, जघन्य

दोय हाथकी उत्कृष्टी ५०० धनुष्यकी अवगाहना वाला जीव मोक्षमे जावे, ज० नव वर्षको उ० क्रोड पूर्वका आयुष्य वाला कर्म भूमिका होवे वो मोक्षमें जावे, मोक्ष याने सर्व कर्मसे आत्मा मुक्त हुवा, याने आत्मा अरुपी भावको प्राप्त हुवा, कर्मसे न्यारा हुवा, एक समयमें लोकके अग्रभागमें पहोंच्या, वहाँ अलोकसे अड़करके रहा पण अलोकमें जायसके नहीं क्योंके वहा धर्मास्तिकाय नहीं, (याने धरमास्तीकायको साज नही) उससे वहां स्थिर रहा, दुजे समे अचल गतिको प्राप्त होवे, कोई वख्त वहासे चवे नही, हाले चाले नही, अजर, अमर, अविनाशी पदको प्राप्त होवे, अनंत सुखकी लहेरमें सदाकाल निमग्नपणे रेवे।

पाठान्तर।

मोक्षका नव द्वार १ छता पदकी परुपणा २ द्रव्य परिमाण ३ क्षेत्र परिमाण ४ स्फर्शना परिमाण ५ काल ६ अन्तर ७ भाग ८ भाव ९ अल्पबहुत्व।

१ सत्पद परुपणा—मोक्ष छती है, मोक्षमे जीव जावे, मोक्ष दस बोल करके शास्वति है।

१ गत—च्यार गतिमे से मनुष्य गतिमे मोक्ष है, तीनसे नही।

२ इन्द्रीय—पञ्चेन्द्रीसे मोक्ष है, च्यारसे नहीं।

३ काय—छव कायमेंसे त्रस कायको मोक्ष है, पाच कायको नहीं।

४ भव्य—भवी जीवको मोक्ष है, अभवी जीवको मोक्ष नही।

५ सन्नीसें मोक्ष है, असन्नीसें मोक्ष नही।

६ चारित्र–पांच चारित्रमेसे यथाख्यातचारित्रसे मोक्ष है, शेष (बाकी) च्यारमें मोक्ष नहीं।

७ समकित—समकित पांच १ उपसम समकित २ सास्वादान ३ क्षयोपसम ४ वेदक ५ क्षायक ये पांच समकितमेंसे क्षायक समकितसे मोक्ष हे, च्यार समकितसे नहीं।

८ अहार—अणारिकको मोक्ष है, अहारिकको नहीं।

९ ज्ञान–पांच ज्ञानमेंसे केवलज्ञानसे मोक्ष है, च्यार ज्ञानसें नहीं।

१० दर्शन--च्यार दर्शनमेंसे केवलदर्शनसे मोक्ष हे, तीनसे नहीं।

ये दस वोल करके सिद्ध शाश्वता है।

२ द्रव्यद्वार—सिद्ध अनन्ता है।

३ क्षेत्रद्वार-लोकाकाशके असंख्यातमें भाग सर्व सिद्ध रहते हैं

४ स्पर्शनाद्वार लोकके अग्रभाग फरसकर रह्या है।

५ कालद्वार–एक सिद्ध आश्री आदि है अन्त नहीं, सर्व सिद्ध आश्री आदि नहीं अंत नहीं।

६ आंतराद्वार-सिद्धाके मांहो माही आन्तरो नहीं है, सब सिद्ध सरीखा है, एक सिद्ध वहां अनन्ता सिद्ध है।

७ भागद्वार--सिद्ध कितने भागमें हैं? सर्व जीव ससारमें है उसके अनन्तमें भागमें सिद्ध है, सिद्धसे सर्वजीव (२४ दण्डकरा जीव) अनन्त गुणा है।

८ भावद्वार–भाव पांच है, उसमेंसे क्षायक भाव तथा परिणामिक भाव प्रवर्ते है, परिणामिक वो जो लोकमें भवी है वो भवी

हीज रहे परंतु अभवी होवे नहीं, अभव्य वो अभवीहीज रहे परंतु भवी होवे नहीं; और जीवरो अजीव होवे नहीं ऐसा परिणामिक भाव वो सिद्ध पणो जाणनो ।

(६) नवमो अल्पाबहुत्वद्वार—सर्वसे थोड़ा नपुंसक सिद्ध उससे स्त्री संख्यात गुणी अधिकी उससे पुरुष संख्यात गुणा अधिक सिद्ध हुवा ।

(१५) पनरमे बोले आत्मा आठ १ द्रव्य आत्मा २ कषाय आत्मा ३ जोग आत्मा ४ उपयोग आत्मा ५ ज्ञान आत्मा ६ दर्शनआत्मा ७ चारित्र आत्मा ८ वीर्य आत्मा ।

(१६) सोलमे बोले दण्डक चोवीस । सात नारकी को एक दण्डक, दस भवनपतिका दस दण्डक उनके नाम (१ असुर कुमार २ नाग कुमार ३ सुवर्ण कुमार ४ विद्युत कुमार ५ अग्नी कुमार ६ द्वीप कुमार ७ उदधी कुमार ८ दिशा कुमार ६ पवन कुमार १० थणित कुमार) पांच थावरका पांच दण्डक, तीन वीकलेंद्रीका तीन दण्डक, तिर्यंच पञ्चेन्द्रीको एक दण्डक; मनुष्यको एक दण्डक वाणव्यन्तर देवताको एक दण्डक, ज्योतिषी देवताको एक दण्डक, वैमाणिक देवताको एक दण्डक, ए चोवीस दण्डक ।

(१७) सतरमें बोले लेश्या छव,१कृष्ण लेश्या२नील लेश्या ३ कापुत लेश्या ४ तेजुलेश्या ५ पदम लेश्या ६ शुक्ल लेश्या । छव लेश्या का लक्षण ।

१ कृष्ण लेश्या—छव कायरे जिवांरो हिंसक, पांच आश्रव सेवण वालो, तीव्र आरम्भी, तीव्र परिग्रही, पाप करतो संके नहीं ।

२ नील लेश्या—इर्षावत, तपरहित, ठगाइ पाप करतो लाजे नहीं, चोरी करतो संके नहीं।

३ कापुत लेश्या - वांको बोले, सरलपणा करके रहित, मिथ्या (झूठ) बोलनेवालो, मुंढ़े आगे गुणग्रामकरे और परपुठे (पीठ पीछाड़ी)अवर्णा वाद बोले।

४ तेजु लेश्या—मरजादवंत, माया (कपटाई) चपलपणा करके रहित, कितोल रहित, विनयवंत, दृढ़धर्मी, प्रियधर्मी।

५ पद्म लेश्या—कषाय पतली करे, पांच इन्द्रियोंको दमे।

६ शुक्ल लेश्या—आर्तध्यान, रौद्रध्यान सर्वथा प्रकारे रहित, आत्माको दमणहार।

(१८) अठारमें बोले दृष्टी तीन १ समदृष्टी २ मिथ्यादृष्टी ३ सम मिथ्यादृष्टी।

(१६) उगणीसमें बोले ध्यान चार १ आर्तध्यान २ रौद्रध्यान ३ धर्म ध्यान ४ शुक्ल ध्यान।

च्यार ध्यानका भेद ४८।

१ आर्तध्यानका आठ भेद—४ पाया ४ लक्षण।

४ च्यार पाया कहते हैं।

१ अमनुनसंपउग संपउते तसविपउगसई समनागया विमवई खोटी (माठी) वस्तुका विजोग चिन्तवे।

२ मणुन संपउग संपउते तसविपउगसई समनागया विभवई आछी वस्तुका संयोग चिन्तवे।

३ आयंक संपउते तसविपउगसई समनागया विभवई= रोगा दिक को वियोग चाहे।

४ परभूसीय कामभोग संपउग संपउते तस्स विपउगसइ समनागया विभवई=परभवका सुखको नियाणो करे।

४ लक्षण कहते हैं।

१ कंदणया=आकंद करे।

२ सोयणया=सोच करे।

३ तिप्पणया=आंसुनाखे।

४ परिदेवणया=विलापात करे।

२ रौद्रध्यानका आठ भेद ४ पाया ४ लक्षण।

४ पाया कहते हैं।

१ हिंसानुबंधी=हिंसा करके राजी होवे।

२ मोसाणुबंधी=झूठ बोलीने राजी होवे।

३ तेणाणु बंधी=चोरी करके राजी होवे।

४ सारखाणु बंधी=दुसरेने बंधीखाने नाखकर राजी होवे।

४ लक्षण कहते हैं।

१ उसन दोसे=थोड़ी बातको घणो द्वेष राखे।

२ बहुल दोसे=थोड़ी बातरो घणो खेद राखे।

३ अनाण दोसे=अज्ञानके वस द्वेष घणो राखे।

४ अमरणान्त दोसे=मरे जठातक द्वेष छोड़े नहीं।

३ धर्मध्यानका १६ भेद४ पाया४ लक्षण ४ आलंबन४अणुपेहा।

४ पाया कहते हैं।

१ आणा विजय=श्रीवीतरागकी आज्ञा चिंतवे।

२ आवाय विजय=कर्म आवा (आवण) का ठीकाण चिंतवे ।

३ विवाग विजय=कर्मका विपाक चिंतवे ।

४ संठाण विजय=१४ राजलोकका स्वरूप चिंतवे ।

४ लक्षण कहते हैं ।

१ आणारूई=आज्ञाकी रुची करे ।

२ निसगरूई=जाति स्मरणके जोगसें धर्मकी रुची करे

३ उपदेश रूई=उपदेश सुणकर धर्मकी रुची करे ।

४ सुत्ररूई=सुत्र सुणकर धर्मको रुची करे ।

४ आलम्बन कहते हैं ।

१ वायणा=सुत्रको वांचना देवे अने सीखे ।

२ पडि पूछणा=सिद्धान्तका प्रश्न पूछे ।

३ परियट्टणा=वारंवार सुत्र गणे (वार वार सुत्र भणे) ।

४ धर्मकथा=वखाण वांचे, सुण ।

४ अणुप्पेहा कहते हैं ।

१ एगत्ताणुप्पेहा=ऐसा चिंतवेके हे जीव तु एकलो आयो एकलो जावसी ।

२ अणीचाणुप्पेहा=ऐसा चिंतवेके हे जीव संसारिक पदार्थ सब अनित्य है ।

३ असरणाणुप्पेहा=ऐसा चिंतवेके हे जीव धर्म विना तने कोई सरणा नहीं ।

४ संसाराणुप्पेहा=ऐसा चिंतवेके हे जीव जितने जीव है सर्व, आप आपके कर्म करके परिभ्रमण करते हैं ।

शुक्ल ध्यानका १६ भेद ४ पाया ४ लक्षण ४ आलम्बन ४ अणुप्पेहा।

४ पाया कहते हैं।

१ पहुंत वितक अविहारी=एक जीवने और आपणा स्वरूपको घणी जायगां चिंतवे (उत्पात, वय, ध्रु इतनोकाल इतनी स्थिती इत्यादि)

२ एगंत वितक अविहारी=एक जीव स्वरूपने चिंतवे।

३ सुहुम किरिये अनिटी=सुक्ष्म कियासे निवर्ते।

४ सुमुच्छिन्न क्रिया अपडवाई=जोगादिक निरोध करे।

४ लक्षण कहते हैं।

१ अवए=भय संज्ञा जीते।

२ असंमोहे=देवतादिक का चरित्रसे मुरझावे नहीं।

३ विवेग=कर्मजालसे विवेग करे।

४ विउसग्ग=कर्मजालसे न्यारो होवे।

४ आलम्बन कहते हैं।

१ खंति=क्षमा करे।

२ मुत्ति=निर्लोभ होवे।

३ अजवे=सरल होवे।

४ मद्दवे=कोमल होवे।

४ अणुप्पेहा कहते हैं।

१ अणच्चाणुप्पेहा=संसारको अन्यत्व पणो चिंतवे।

२ विपरिणामाणुप्पेहा=पुद्गलको अन्यत्व पणो चिंतवे।

३ असुभाणुप्पेहा=कर्मका विपाक अशुभ चिंतवे।

४ अवयाणुप्पेहा=जीवको अखंडित चितवे।

(२०) बीसमे बोले षट द्रव्यका ३० भेद। द्रव्य छव; उनके नाम १ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३ आकास्तिकाय ४ काल द्रव्य ५ जीवास्तिकाय ६ पुद्गलास्तिकाय।

धर्मास्ति कायका पांच भेद

१ द्रव्य थकी, एक द्रव्य २ क्षेत्र थकी, आखालोक प्रमाणे ३ काल थकी, आदअंतरहित ४ भाव थकी, अरूपी, वर्ण नहीं. गंध नहीं, रस नहीं, स्फर्श नहीं. ५ गुण थकी चलण गुण, पाणीमें माछलाको दृष्टान्त, जैसे पाणीके आधार माछला चाले, इसी तरह जीव अजीव (घड़ी विगेरह) दोनुं चाले धर्मास्तिके आधार।

अधर्मास्ति कायका पांच भेद

१ द्रव्य थकी, एक द्रव्य २ क्षेत्र थकी, आखा लोक प्रमाणे ३ काल थकी, आदअन्त रहित ४ भाव थकी, अरुपी, वर्ण नहीं, गन्धनहीं, रस नहीं, स्फर्श नही ५ गुणथकी, स्थिर गुण; थाका पन्थीने छायांको दृष्टान्त ; जैसे थाका पन्थीने छायांको आधार उसी माफिक जीव, अजीवने अधर्मास्तिको आधार।

आकास्ति कायका पांच भेद

१ द्रव्यथकी. एक द्रव्य २ क्षेत्र थकी, लोकालोक प्रमाणे ३ काल थकी, आदअन्त रहित ४ भाव थकी, अरुपी, वर्ण नही, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्फर्श नहीं ५ गुण थकी, पोलाड़ गुण आकाशमें विकाश भीतमें खूंटीको दृष्टान्त, दूधमें पतासाको दृष्टान्त।

काल द्रव्यका पांच भेद

१ द्रव्यथकी, अनन्ता द्रव्य २ क्षेत्र थकी, अढाई द्वीप प्रमाणे ३ कालथकी, आदअन्त रहित ४ भावथकी, अरुपी, वर्ण नहीं, गन्धनही, रसनहीं, स्फर्श नहीं ५ गुणथकी, वर्तन गुण नयाने जुनो करे जुनाने खपावे कपडे कैंचीरो दृष्टान्त।

जीवास्ति कायका पांच भेद

१ द्रव्य थकी, जीव अनन्ता २ क्षेत्र थकी, आखा लोक प्रमाणे ३ काल थको, आदअन्त रहित ४ भाव थकी, अरुपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नही, स्फर्श नहीं ५ गुण थकी, चेतना गुण चन्द्रमारीकलारो दृष्टान्त।

पुद्गलास्तिकायका पांच भेद

१ द्रव्य थकी पुद्गल अनन्ता २ क्षेत्र थकी, आखालोक प्रमाणे ३ कालथकी, आदअन्त रहीत ४ भाव थका, रुपी, वर्ण है गन्ध है, रस है, स्फर्श है, ५ गुण थकी, पुर्ण गलन सड़न वीद्धंसण गुण बादलाको दृष्टान्त जैसे मिले और बिखरे।

खट द्रव्य कव।

१ जीव द्रव्य किसको कहते हैं ?

जिसमें चेतना गुण पाया जाय, उसको जीवद्रव्य कहते हैं।

जीव द्रव्य कितने और कहां हैं ?

जीवद्रव्य अनन्तानन्त है और वे समस्त लोकाकाशमें भरे हुए हैं।

एक जीव कितना बड़ा है ?

एक जीव प्रदेशोंकी अपेक्षा लोकाकाशके बराबर है परन्तु संकोच विस्तारके कारण अपने शरीरके प्रमाण है। और मुक्तजीव अन्तके शरीर प्रमाण हैं।

लोकाकाशके बराबर कौनसा जीव है ?

मोक्ष जानेसे पहिले समुद्घात करनेवाला जीव लोकाकाशके बराबर होता है।

२ पुद्गल द्रव्य किसको कहते हैं ?

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण पाये जाय।

पुद्गल द्रव्यके कितने भेद हैं ?

दोय भेद है—एक परमाणु, दुसरा स्कन्ध।

परमाणु किसको कहते हैं ?

सबसे छोटे पुद्गलको परमाणु कहते हैं (जिसका दोय टुकड़ा नहीं होय)

स्कन्ध किसको कहते हैं ?

अनेक परमाणुओंके बन्धको स्कन्ध कहते हैं।

पुद्गल द्रव्य कितने और उनकी स्थिति कहां है ?

पुद्गल अनन्तानन्त है और वे समस्त लोकाकाशमें भरे हुए हैं।

३ धर्मद्रव्य किसको कहते हैं ?

गतिरूप परिणमे जीव और पुद्गलको जो गमनमें सहकारी हो, उसको धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे—मछलीके लिए जल।

धर्म खण्डरूप है किंवा अखण्डरूप है और इनकी स्थिति कहाँ है ? धर्म एक अखण्ड द्रव्य है और यह समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है।

४ अधर्म द्रव्य किसको कहते हैं ?

गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमें जीव और पुद्गलको जो स्थिति में सहकारी हो, उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं।

अधर्म खण्डरूप है किंवा अखंडरूप है और इनकी स्थिति कहाँ है ? अधर्मद्रव्य एक अखंण्ड द्रव्य है और वह समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है।

५ आकाश द्रव्य किसको कहते हैं ?

जो जीवादिक पांच द्रव्योंको ठहरनेके लिये जगह दे।

आकाशके कितने भेद हैं ?

आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है।

आकाश कहाँपर है।

आकाश सर्वव्यापी है।

६ कालद्रव्य किसको कहते हैं ?

जो जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें सहकारी हो, उसको कालद्रव्य कहते हैं। जैसे—कुम्हारके चाकके भ्रमनेके लिये लोहेकी कीली।

कालद्रव्यके कितने भेद हैं ?

दोय हैं—एक निश्चयकाल दुसरा, व्यवहारकाल।

निश्चयकाल किसको कहते हैं ?

कालद्रव्यको निश्चयकाल कहते हैं।

व्यवहारकाल किसको कहते हैं?

कालद्रव्यकी घड़ी, दिन, मास आदि पर्यायोंको व्यवहार-काल कहते हैं।

कालद्रव्यके कितने भेद रूप हैं और उनकी स्थिति कहां है?

लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य हैं और लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक कालद्रव्य (कालाणु) स्थिति हैं।

अस्तिकाय।

अस्तिकाय किसको कहते हैं?

बहुप्रदेशी द्रव्यको अस्तिकाय कहते हैं।

अस्तिकाय कितने हैं?

पाँच है. जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। इन पांचों द्रव्यको पञ्चास्तिकाय कहते हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है, इस लिये वह अस्तिकाय भी नहीं है।

यदि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है, तो वह अस्तिकाय कैसे हुया? पुद्गलपरमाणु शक्तिकी अपेक्षासे अस्तिकाय है। अर्थात् स्कन्धरूपमें होकर बहुप्रदेशी हो जाता है, इसलिये उपचारसे अस्तिकाय है।

लोकाकाश।

लोकाकाश किसको कहते हैं?

जहांतक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म काल ये पांच द्रव्य हैं उसको लोकाकाश कहते हैं।

लोकाकाशके बराबर कौनसा जीव है ?

मोक्ष जानेसे पहिले समुद्घात करनेवाला जीव लोकाकाशके बराबर होता है।

अलोकाकाश।

अलोकाकाश किसको कहते हैं ?

लोकसे बाहरके आकाशको अलोकाकाश कहते हैं।

लोक।

लोककी मोटाई, ऊँचाई, चौड़ाई कितनी है ?

लोककी मोटाई उत्तर और दक्षिण दिशामें सब जगह सात राजू है, चौड़ाई पूर्व और पश्चिम दिशामें मूलमे (नीचे जड़में) सात राजू है। ऊपर क्रमसे घटकर सात राजूकी ऊंचाईपर चौडाई एक राजू है। फिर क्रमसे बढ़कर साढ़े दश राजूकी ऊंचाईपर चौड़ाई पांच राजू है। फिर क्रमसे घटकर चौदह राजूकी ऊँचाईपर एक राजू चौड़ाई है और ऊर्ध्व और अधोदिशामें ऊँचाई चौदह राजू है।

११ द्वार।

छव (षट्) द्रव्यपर कर्मग्रन्थमें इग्यारा द्वार चले वो कहते हैं।

इग्यारा द्वारका नाम (१) प्रणामी (२) जीव (३) मुत्ता (मूर्ति) (४) सपएसा (सर्व प्रदेशी) (५) ऐगा (एक) (६) खित्ते (क्षेत्र) (७) क्रिया (८) णिच्च (नित्य) (९) कारण (१०) कर्त्ता (११) सब्व गइ इयर पवेसा (सब गति)

(१) प्रणामी कहेता निश्चयमें छव ही द्रव्य प्रणामी है (प्रणम्या है, व्याप्या है) व्यवहारमें जीव और पुद्गल दोय द्रव्य प्रणामी है (आखालोकमें प्रणम्या है,) बाकी च्यार अप्रणामी है।

(२) जीव कहेता एक तो जीव है बाकी पांच द्रव्य अजीव है।

(३) मुत्ता कहेता एक पुद्गल तो मूर्तिक है बाकी पांच द्रव्य अमूर्तिक है।

(४) सपएसे कहेता पांच द्रव्य तो सप्रदेशी है और एक काल द्रव्य अप्रदेशी है।

(५) एगे कहेता धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकास्ति ये तीन द्रव्य तो एक एक है और जीव, पुद्गल, काल ये तीन द्रव्य अनेक है याने अनन्ता है।

(६) खित्ते कहेता आकास्तिकाय तो क्षेत्री बाकी पांच द्रव्य अक्षेत्री है

(७) क्रिया कहेता निश्चय में छव ही द्रव्य सक्रिय (याने क्रिया करके सहित) है, अपनी अपनी क्रिया करे, व्यवहारमें जीव और पुद्गल क्रिया है (क्रिया करे) च्यार द्रव्य अक्रिया है।

(८) णिच्चे कहेता निश्चयमें छव ही द्रव्य नित्य, व्यवहारमें जीव और पुद्गल दोय द्रव्य अनित्य बाकी च्यार द्रव्य नित्य।

(९) कारण कहेता जीवके पांच ही द्रव्य कारण है, जीव पांचोंके अकारण है (जीव द्रव्य अकारण, बाकी पांच द्रव्य कारण) वा पांच द्रव्य अकारण, एक जीव द्रव्य कारणपण संभावे छे।

(१०) कर्ता कहेता निश्चय में छव ही द्रव्य अपने २ स्वरूपका करता है, व्यवहारमें जीवद्रव्य कर्ता है, पांच द्रव्य अकर्ता है।

(११) सव्व गई इयर पवेसा कहता आकास्तिकाय तो सर्व गति ५ द्रव्य असर्व गति, आकास्तिकाय रे भांजनमें पाच द्रव्य समावे (आकाश द्रव्य सर्व दूर व्याप रहा है और पांच द्रव्यने आकाश रूप भांजनमें प्रवेश किया है)

२१ इकीसवें बोले रास दोय जीव रास, अजीव रास।

संसारी जीवका विशेष प्रकारे ५६३ भेद है।

नारकीका	१४	भेद
तिर्यंचका	४८	,,
मनुष्यका	३०३	,,
देवताका	१९८	,, ए पांच सोहतेसट भेद हुवा।

उसका विस्तार कहुंछु

नारकीका चउदे भेद।

७ नारकीका अपजापता और परजापता ए चउदे।

नारकीका नाम और गोत्र।

१ गम्मा	१ रतन प्रभा	काले रत्न सरीखी
२ वंसा	२ सक्करप्रभा	मुरड है
३ सिला	३ वालु प्रभा	वालु है
४ अंजणा	४ पंक प्रभा	लोही मासको कादो है
५ रिठ्ठा	५ धुम प्रभा	धुंवो है
६ मग्गा	६ तम प्रभा	अंधकार है
७ मागवई	७ तमतमा प्रभा	अन्धकारसे अन्धकार याने घणो अन्धकार है

तिर्यंचका अड़तालीस भेद

सुक्षम,	पृथ्वीकायका	दोय	भेद	अप्रजापता,	परजापत
बादर,	„	„	„	„	„
सूक्षम, अपकायका		„	„	„	„
बादर,	„	„	„	„	„
सूक्षम, तेउकायका		„	„	„	„
बादर,	„	„	„	„	„
सूक्षम, वाउकायका		„	„	„	„
बादर,	„	„	„	„	„
सूक्षम, वनासपतिका		„	„	„	„
प्रत्येक	„	„	„	„	„
साधारण,	„	„	„	„	„
बेइन्द्रिका		„	„	„	„
तेइन्द्रिका		„	„	„	„

चौइन्द्रिका	दोय	भेद	अप्रजापता,	परजापता
असन्नी (समोछम) जलचरका	"	"	"	"
सन्नी (गर्भेज) जलचर का	"	"	"	"
असन्नी थलचरका	"	"	"	"
सन्नी "	"	"	"	"
असन्नी उरपुरका	"	"	"	"
सन्नी "	"	"	"	"
असन्नी भुजपुरका	"	"	"	"
सन्नी "	"	"	"	"
असन्नी खेचरका	"	"	"	"
सन्नी "	"	"	"	"

तिर्यंच पंचेन्द्री

जलचर, केनेकहीये ? जो जलमें चले उसको जलचरकेहीजे जैसे मच्छ, कच्छ, मगर मच्छ, काछवा, डेडका इत्यादिक इन की कुल १२॥ लाखक्रोड़ है।

थलचर, केने कहिये ? जो जमीन उपर चाले उसको थेलचर कहिये इनका च्यार भेद।

एक खुरा—घोड़ा, गधा, खच्चर इत्यादिक।

दोय खुरा—ऊंठ, गाय, भैंस, बलध, वकरा, हरण, ससीया इत्यादिक।

गंडी पद (गण्डीपया) हाथी, गेंडा इत्यादिक।

श्वान पद (सणपया) (जो पंजे नख वाला होवे) जैसे—बाघ, कुता, बीली, शियाल, जरख, रींछ, वांदर इत्यादिक; सिंघ, चीता, इनका—कुल १० लाख क्रोड़ है ।

उरपुर, केने कहीये ? जो हीयैसे (पेटसे) चाले उसको उरपुरकेहीजे जैसे, सरप, अजगर, अशालीयो (दोय घड़ीमें ४८ कोस (गउ) लांबो हुवे, चक्रवर्तीकी राज धानी नीचे, अथवा नगरके खाल हेठे उपजे, उसको भस्म नामा दाह हुवे जो ४८ गउको माटी उगल जावे (खाय जावे) जमीन थोथी होय जाय, चक्रवर्तकी सन्या थोथी जमीनमें उतर जाय (धसफ जाय) एसी पोलाड़ कर देवे उसको असालीयो केहीजे चक्रवर्तीरे सन्यारो विध्वंस होंणेके (काल) समय ही असालीओ उपजे) मंहुरग—एक हजार ओजनको लांबो सरप अढाइ दीप वहार रहे छे उसको महुरग केहीजे इनका कुल १० लाख क्रोड़ है ।

भुजपुर केने कहीये ? जो भुजासे चाले उसको भुजपुर केहीजे जैसे--कोल, नवलीयो, उंदरा, गीलारी, चनण गोह, पाटड़ा गोह इत्यादिक; इनका कुल ६ लाख क्रोड़ है ।

खेचर केने कहीये ? जो अकाशमें उडे (अकाशमें चाले) इनका च्यार भेद ।

१ चर्म पंखी चमड़े जेसी पांख होवे, ये अढाइ दीप मांये तथा बाहेर दोनु जागा है ।

२ रोम पंखी सुवाली पांखका पंखी, जैसे मोर, कबुतर

कागला, मेना, सुवा, पोपट, बुगलो कोयल, चील, सफग, तीतर, बाज-इत्यादिक ये अढाइ दिप मांहेतथा बाहीर दोनु ठीकाणे है।

३ समदग पंखी (समुग) इनकी पांख डाभ माफक बीड़ोड़ी रेवे ये पंखी अढाइ दीप बहार है।

४ वीतत पंखी इनकी पांख सदाइ फाट्योड़ी रेवे ये पंखी अढाइ दीप बाहार है; इनका कुल १२ लाख कोड है।

मनुष्यका ३०३ भेद।

(१५) पनरा कर्माभूमि (३०) तीस अकर्माभूमि (५६) छप्पन अन्तरद्वीपा ये १०१ गर्भज मनुष्यका पर्याप्ता १०१ (इनका) अपर्याप्ता ये २०२।

व १०१ समुर्च्छिम मनुष्यका अपर्याप्ता ये ३०३ हुवा।

गर्भज मनुष्यको विस्तार।

१५ कर्माभूमि—५ भरत ५ ईरवत ५ महाविदेह ये पनरे कर्माभूमि मनुष्यका क्षेत्र किहां? एक लाख जोजनको जम्बूद्वीप है, उसमेंसे १ भरत १ इरवरत १ महाविदेह ये ३ जम्बूद्वीपमें है; उसके चारो तरफ दोय लाख जोजनका लवण समुद्र है; उसके चारों तरफ च्यार लाख जोजनको धातकी खंड है, उसमें २ भरत २ इरवरत २ महाविदेहये छव क्षेत्र हैं; उसके चारों तरफ (बारकर) आठ लाख जोजनको कालो दधी समुद्र है; उसके चोतरफ आठ लाख जोजनको अर्ध पुष्कर द्वीप है, उसमें २ भरत २ इर

वरत २ महाविदेह ये छव क्षेत्र हैं, ये पनरे क्षेत्र पनरे कर्मा भूमि किसको कहते हैं ? जहां राजा राणीकी रीत है, देणों देवे, लेणों लेवे, कवांरा कवांरी परणे, साधु साध्वीका व्यवहार है त्रेसठ श्लाकापुरुष सहित, अस्सी-तरवारकी कमाई, मस्सी-लेखनकी कमाई, कासी-किसानकी कमाई करके पेट भरे ; खेत, सेत, उचीखेत; खेत कहेता खड़्या धाननीपजे; सेत कहेता सींच्या धाननीपजे; उचीखेत कहेता अडक धान उपजे; धान ४ प्रकार को सीरो, डोडो, उम्बी, फली ; सिरो (सीटो) बाजरीरो, मक्कीयेरो, आद देइने अनेक भेद; डोडो अफीमरो, धतुरेको, आद देई अनेक भेद ; उम्बी जवारकी, चांवलांकी आदि देई अनेक भेद; फली मोठारी, गवाररी आद देईने अनेक भेद।

३० अकर्माभूमि मनुष्य—५ हेमवय ५ हीरणवय ५ हरीवास ५ रमकवास ५ देवकुरु ५ उतरकुरु ये तीस।

१ हेमवय १ हिरणवय १ हरीवास १ रमकवास १ देवकुरु १ उत्तरकुरु ये छव क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं।

२ हेमवय २ हिरणवय २ हरीवास २ रमकवास २ देवकुरु २ उत्तरकुरु ये बारा क्षेत्र धातकी खंड में हैं।

२ हेमवय २ हिरणवय २ हरीवास २ रमकवास २ देवकुरु २ उत्तरकुरु ये बारा क्षेत्र अर्धपुष्कर द्वीपमें है।

अकर्मा भूमि किसको कहते हैं ? जहाँ राजा नहीं, राणा नहीं, कवांरा कवांरी परणे नहीं, देणोदेवे नहीं, लेणोलेवे

नही, साधु साध्वीरो व्यवहार नहीं ६३ श्लाका पुरुष रहित, (२४ तिर्थंकर १२ चक्रवर्त ६ बलदेव ६ वासुदेव ६ प्रति वासुदेव) विहरमाण, गणधर विगेरह करके रहित, अस्सी नही, मस्सी नहीं, कस्सी नहीं जीनको दस प्रकारका कल्प वृक्ष आशा पुर्ण करे उनके नाम मतगाय भिगा तुडियंगा, दिव जोईचितगा, चित्तरसा मणवेगा, गिहगारा आणीयंगणाउ ॥१॥

(१) मतंगाय कहेता मधु, मणिरस, सुगंधादिक पाणीका दातार।

(२) भिंगा कहेता अनेक प्रकारका रत्न जडित भांजनका दातार।

(३) तुडियंगा कहेता ४९ उगणचास प्रकारका वाजिंत्र, नाटकका दातार।

(४) दिव कहेता रत्नजड़ावका दिवांके दातार।

(५) जोई कहेता सूर्यकी ज्योति समान ज्योतीके दातार।

(६) चित्तगा कहेता चित्राम सहित फूलकी मालाका दातार।

(७) चित्तरसा कहेता चित्तने गमे एसा अनेक प्रकारका भोजनादिकका दातार।

(८) मणवेगा कहेता रत्न जड़तका आभुषण (गहणा)का दातार।

(९) गोहगारा कहेता (४२) बयालीस भोमिया महेलका दातार।

(१०) अणियगणाउ कहेता अनेक जातका रत्न जड़तका नाकरे वायरासे उड़े ऐसा वस्त्रका दातार।

छप्पन अंतरद्वीपाके मनुष्य, छप्पन अंतरद्वीपमें है, हवे छप्पन अन्तर द्वीपा कहे छे जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रकी मर्यादाको करणहार चुल हिमवंत नामे पर्वत है, पीलो सुवर्णमय है,(१००)सो जोजनको उंचो, पच्चीस जोजनको जमीनमें उंडो, एक हजार बावन जोजन बारा कलाको पहोलो (चवड़ो) है, २४६३२ जोजन लम्बो छे इसकी बांह ५३५० जोजन और पनरा कलाकी है, इसकी जीभ २४६३२ जोजन पुणकलाकी है, इसकी धनुष्य पिठी का २५२३० जोजन और च्यार कलाको है, उसके पूर्व, पश्चिमके छेड़े, दोय दोय डाढा निकली हुई है, एक २ डाढा चोरासीसे चोरासीसे जोजन झाझेरी लम्बी है; एक २ डाढा उपर सात सात अन्तर द्वीपा है, वो किस तरहसे है ? जम्बूद्वीपकी जुगतीसे ३०० जोजन जावे तब३००जोजनको लम्बो, चोड़ो पहेलो अन्तर द्वीप आवे (१)वहांसे ४०० जोजन जावे जब ४०० जोजनको लम्बो, चोड़ो दुजो अन्तर द्वीप आवे (२) वहांसे ५०० जोजन जावे जब ५00 जोजनको लम्बो, चोड़ो तीजो अन्तर द्वीप आवे (३) वहांसे ६०० जोजन जावे जब ६०० जोजनको लम्बो,चोड़ो चोथो अन्तर द्वीप आवे (४) वहांसे ७०० जोजन जावे जब ७०० जोजन को लम्बो, चोड़ो पांचमो अन्तर द्वीप आवे (५) वहांसे ८०० जोजन जावे जब ८०० जोजनको लम्बो, चोड़ो छट्ठो अन्तर द्वीप आवे (६) वहांसे ९०० जोजन जावे जब ९०० जोजनको लम्बो, चोड़ो सातमो अन्तर द्वीप आवे (७) इस तरह एक २ डाढापर सात सात अन्तरद्वीप है, उसको च्यारसुं गुणा करता २८ अठावीस अन्तरद्वीप हुवा; ये २८

चुल हिमवंत पर्वतके दोनों छेड़ेकी च्यारडाढा उपर है। इसी तरह इरवरत क्षेत्रकी मर्यदाको करण हार शिखरी नामे पर्वत्त है, वो चुलहेमवंत पर्वतके माफिक है, इस शिखरी पर्वतके पूर्व, पश्चिमके छेड़े अठावीस अन्तरद्वीप है। इन दोनों पर्वतके छेड़े ५६ अन्तर द्वीप जाणना।

समुच्छिम मनुष्यका १०१ भेद, चवदा स्थान १०१ समुच्छिम मनुष्य उपजे सो कहुंछु।

(१) उच्चारेसुवा कहेता बडो नीत (विष्टा) में उपजे।

(२) पासवणेसुवा कहेता लघु नीत (पेसाब) में उपजे।

(३) खेले सुवा कहेता खेंखार कफमें उपजे।

(४) संघाणसुवा कहेता नाकका श्लेष्म (सेडा) में उपजे।

(५) वंतेसुवा कहेता वमनमें (उलटीमें) उपजे।

(६) पित्तेसुवा कहेता पित्तमें उपजे।

(७) पोइये सुवा कहेता राध (रसी) में उपजे।

(८) सोणीये सुवा कहेता रुधिर (लोही) में उपजे।

(९) सुक्केसुवा कहेता वीर्यमें उपजे।

(१०) सुक्क पोग्गल पड़िसाड़ीये सुवा कहेता सुका हुवा वीर्यका पुद्गल पीछा आला होणेसे उपजे।

(११) विगय जीव कलेवरे सुवा (मृत कलेवरे सुवा) कहेता जीव रहित शरीर में उपजे (कलेवरमें उपजे)।

(१२) इत्थी पुरुष संजोगे सुवा कहेता स्त्री पुरुषका संजोगसे उपजे।

(१३) नगर निधमणेसुवा कहेता नगरका खाले, गट्टर, मोरी वगैरहमें उपजे ।

(१४) सव्व असुई ठाणे सुवा कहेता सर्व असुची स्थानमें उपजे ।

इति ३०३ मनुष्यका भेद समाप्तः ।

देवताका १९८ (एकसो अठाणमें) भेद ।

१० भवनपति १५ परमाधामी १६ वाणव्यन्तर १० तीर्जंभिका १० ज्योतिषी ३ किलमिषी १२ देवलोक ९ नव लोकांतिक ९ नव ग्रिवेक, ५ अनुत्तर विमाण ये ९९ जातिका पर्याप्ता, अपर्याप्ता ये १९८ ।

१० भवनपति (इनका नाम सोलमा बोलसे जाणना) ।

१५ परमाधामीका नाम १ अम्ब २ अम्बरस ३ शाम ४ सबल ५ रुद्र ६ महारुद्र ७ काल ८ महाकाल ९ असिपत्र १० धनुष्य ११ कुम्भ १२ वालु १३ वेतरणी १४ खरस्वर १५ महाघोष ।

१६ वाणव्यन्तरका नाम १ पिशाच २ भूत ३ जक्ष ४ राक्षस ५ किन्नर ६ किंपुरुष ७ महोरग ८ गधर्व ९ आणपन्नी १० पाणपन्नी ११ इसीवाइ १२ भुइवाई १३ कंदीय १४ महाकंदीय १५ कोहण्ड १६ पयंगदेव ।

१० जम्भिका नाम १ आण जम्भिका २ पाण जम्भिका ३ लेण जम्भिका ४ सेण जम्भिका ५ वस्त्र जंभिका ६ फूल जम्भिका ७ फल जम्भिका ८ फलफूल जंभिका ९ बीज जभिका १० अवियत जंभिका ।

१० ज्योतिषीका नाम १ चन्द्रमा २ सूर्य ३ ग्रहण ४ नक्षत्र ५ तारा

ये पांच अढीद्वीपमें चल है और पांच अढीद्वीप वाहिर स्थिर है।

३ किलमिषी (किलविषी)का नाम १ त्रण पलरीस्थितीवाला २ त्रण सागरकी स्थितीवाला ३ तेरे सागरकी स्थितीवाला।

१२ बारा देवलोकका नाम १ सुधर्म २ इशान ३ संनत कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्म ६ लतक ७ महाशुक्र ८ सहसार ९ आणत १० प्राणत ११ आरण १२ अच्चुय (अच्युत)

९ नवलोकान्तिका नाम १ सारस्वत २ आश्त्यि ३ विनही ४ वरूण ५ गर्दतोया ६ तोसीया७अव्याबाधा ८ अग्गिचा९ रीट्ठा।

९ नव ग्रीवेकका नाम १ भद्दे २ सुभद्दे ३ सुजाये ४ सुमाणसे ५ पीयद्सणे ६ सुदंसणे ७ अमोहे ८ सुपडि वद्धे ९ जसो धरे

५ पांच अनुत्तर विमाणका नाम १ विजय २ विजयंत ३ जयंत ४ अप्राजित ५ सर्वार्थ सिद्ध।

अजीव राशका ५६० भेद॥

अजीव अरूपीका ३० और अजीवरूपीका ५३० ये कुल ५६० भेद

अजीव अरूपीका ३० भेद।

(३) धर्मास्ति काय को खंध्र देश, प्रदेश ये तीन।

(३) अधर्मास्तिकाय को ", ", ", "

(३) आकास्तिकाय को ", ", ", "

(१) कालद्रव्यको एक भेद।

(५) धर्मास्तिकाय का पांच भेद १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव ५ गुण।

(५) अधर्मास्ति कायका पांच भेद १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव ५ गुण।

(५) आकास्तिकायका पांच भेद १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव ५ गुण।

(५) काल द्रव्यका पांच भेद १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव ५ गुण।

नोट—इसका विस्तार वीसमां बोलसे जाणना।

अजीव रूपीका ५३० भेद॥

(१००) वर्ण ५—कालो, नीलो, रातो, पीलो, धोलो एक एक रंगका भेद २०×५=१००

(४६) गंध २—सुगन्ध, दुर्गन्ध एक एक का भेद २३×२=४६

(१००) रस ५—तीखो. कडुवो, कषायलो, खट्टो, मीठो एक एक का भेद २०×५—१००

(१८४) स्पर्श ८—खरखरो, सुवालो; भारी, हलको; शीत, उष्ण; चीकणो, लुखो एक एक का भेद २३×८=१८४

(१००) संठाण ५—परिमंडल, वट, त्रंस, चोरंस, आयत एक एक का भेद २०×५=१००

विशेष विस्तार ५३० भेद रूपीका ॥

पाच वर्ण, दोय गन्ध, पांच रस, आठ स्फर्श, पाच संठाण ये पचीस बोलमें जितने जितने बोल पावे वो गिननेसे सर्व मिल कर ५३० भेद होते हैं।

पांच वर्ण—१ कालो २ नीलो ३ रातो ४ पीलो ५ धोलो एक एक वर्णमें बीस बीस भेद पावे, दोय गन्ध, पांच रस, आठ स्फर्श, पांच संठाण, ये बीस पचा सो।

दोय गन्ध—१ सुगन्ध २ दुर्गन्ध एक एक गन्धमें तेवीस तेवीस बोल पावे, पांच वर्ण, पाच रस, आठ स्फर्श, पांच संठाण, ये तेवीस दु छीयांलीस जाणना।

पांच रस—१ तीखो २ कडवो ३ कषायलो ४ खाटो, मीठो, एक एक रसमें बीस बीस भेद लाधे, पांच वर्ण, दोय गन्ध, आठ स्फर्श, पांच संठाण ये बीस पचा सो।

आठ स्फर्श—१ खरदरो २ सुंवालो ३ हलको ४ भारी ५ ठंढो ६ उनो ७ लुखो ८ चोपड्यो एक एक स्फर्शमें तेवीस तेवीस भेद लाधे, पांच वर्ण, दोय गन्ध, पांच रस, छव स्फर्श, पांच संठाण ये तेवीस अठा एक सो चोरासी; जहां खरदराकी पूछा हो तो खरदरो और सुंवालो ये दोय वर्जणा इसी तरह हलकाकी पुछा होय तो, हलको और भारी ये दोय वर्जणा. इसी तरह ठढाकी पुछा होवे जब ठंढो और उनो ये दोय वर्जणा; इसी तरह चीकणाकी पुछा होवे जब चीकणो और लुखो ये दोय

वर्जणा, इस माफिक जिस बोलकी पुछा होय वो तथा उसका प्रतिपक्ष ये दोय वर्जणा ।

इति जीवरास अजीवरास का भेद समाप्त ॥

बावीसमे बोले श्रावकजीका बारा वृत ।

(१) पहिला वृतमें श्रावकजी त्रसजीव हणनेका त्याग करे (हालता चालता जीव विना अपराधे मारे नही) स्थावरकी मर्यादा करे ।

(२) दुजे वृतमें श्रावकजी मोटको झूट बोले नहीं ।

(३) तीजे वृतमे श्रावकजी मोटकी चोरी करे नहीं ।

(४) चोथे वृतमें श्रावकजी पराई स्त्रीका त्याग करे आपणी स्त्रीकी मर्यादा करे ।

(५) पाचमें वृतमें श्रावकजी परिग्रहकी मर्यादा करे ।

(६) छट्ठा वृतमें श्रावकजी छव दिशाकी मर्यादा करे (पुर्व, पीछेम, उत्तर, दखिण, उंची, नीची) ।

(७) सातमे वृतमें श्रावकजी छवीस बोलकी मर्यादा करे, पनरे कर्मादानका त्याग करे ।

२६ बोलाकी मर्यादा करे उनका नाम

(१) उल्लणिया विहं के० शरीर पुंछणेका अंगोछा ।

(२) दंतणविहं के० दांतण ।

(३) फल विहं के० वृक्षका फल ।

(४) अभगण विहं के० शरीर पर चोपड़नेकी या लेप करनेकी वस्तु तेल प्रमुख ।

(५) उवट्टण विहं के० मर्दन करनेकी वस्तु पीठी प्रमुख।
(६) मज्झण विहं के० स्नान करनेका पाणी प्रमुख।
(७) वत्थ विहं के० वस्त्र, कपड़ा।
(८) विलेवण विहं के० चन्दनादिक।
(९) पुप्फ विहं के० फुल।
(१०) आभरण विहं के० गहणा, दागीना।
(११) धुप विहं के० धुप।
(१२) पेज विहं के० उकाली दवा वगेरा पीणेकी वस्तु।
(१३) भक्खण विहं के० सुखड़ी (बदाम, पिस्ता वगेरा मेवो)।
(१४) उद्दण विहं के० रांधी हुई दाल।
(१५) सुप विहं के० चावल (साल)।
(१६) विगय विहं के० घी तेल, दुध, दही, मीठो (गुड़, खांड, सक्कर, मिश्री वगेरे)।
(१७) साग विहं के० लीलोत्रीका पता हरी साग।
(१८) माहुर विहं के० वेलका फल।
(१९) जीमण विहं के० जो वस्तु जीमणमे आवे उसकी विधी, गीन्ती।
(२०) पाणी विहं के० पाणी।
(२१) मुखवास विहं के० सुपारी, लोंग इलायची, वगेरह मुख साफ करनेकी वस्तु।
(२२) वाहनि विहं (पन्नी) के० पगमे पेरणेकी जीनस पगरखी प्रमुख।

(२३) वाहण विहं के० सवारी घोड़ा, गाड़ी, उंठ वगेरह ।
(२४) सयण विह के० सुंणेको सेजा पिलंग आदि ।
(२५) सचित्त विहं के० सचित्त वस्तु खाणे आश्री ।
(२६) द्रव्य विहं के० पूर्व कही जीके सीवाय दुसरा द्रव्य रखा सो

पनरा कर्मादानका नाम

(१) ईंगाल कम्मे के० कोयला करायके वेचनेका व्यापार क नहीं पजावा, भट्टीका कर्म करावे नहीं ।
(२) वण कम्मे के० वनका झाड़ (वृक्ष) कटाणेका टेका लेने देणेका व्यापारका त्याग करे ।
(३) साड़ी कम्मे के० गाड़ा, गाड़ी, एका, चरखा, पींजरा वगेर बनायकर (करायकर) वेचणेका व्यापारका त्याग करे ।
(४) भाड़ी कम्मे के० गाड्यां, एका, साइकल, मोटर टेक्सी, उंठ वेल वगेरह भाड़े फेरे नहीं तथा घर, हाट हवेली व्यापारके निमित्त भाड़ा कमाणेके वास्ते तथा वेचणेके वास्ते वणावे नहीं; लोहेकी, पत्थरको, लुण आदिकी खान खोदावे नहीं ।
(५) फोड़ी कम्मे के० पृथ्वीका पेट, कुवा, वावड़ो आदि ठेक लेकर फोड़ावे नहीं तथा व्यापारके निमित्त करावे नहीं ।
(६) दंतवणिज्जे के० हाथीका दांत, उल्लुका नख, मृगका सींग चमड़ा इत्यादिकका व्यापार श्रावक न करे ।
(७) लक्खवणिज्जे के० लाख नील, साजो, मोरा, सोहागा, मेनसील इत्यादिकको व्यापार श्रावक न करे ।
(८) रसवणिज्जे के० रस, मदिरा, घी, मधु (सहत) इत्यादिककी

(९) वीसवणिज्जे के० विष (जहरका अफीम, सखीयो, हरताल, गांजा) को व्यापार श्रावक न करे।

(१०) केसवणिज्जे के० चवर, केस प्रमुखको व्यापार श्रावक न करे।

(११) जतपिलणया कम्मे के० तिल, सरसु, अलसी घाणीमें पिलायकर तेल निकलायकर वेचनेका व्यापार करे नहीं तथा घाण्या, कल्यांको व्यापार न करे।

(१२) निल्लंच्छण कम्मे के० टोघड़ा, घोड़ा आदि खसी कराय कर वेचणेको व्यापार न करे।

(१३) दवग्गि दावणया कम्मे के० वनमे, खेतमे आग लगावे नहीं, खेतकी वाड फूंकावे नहीं।

(१४) सरदह तलाव परिसोसणया कम्मे के० सरवर, कुण्ड, तलाव को पाणी सुकावे नही, ऐसा व्यापार करे नहीं।

(१५) असइ जण पोसणया कम्मे के० हिंसक जीव श्वान, बिल्ली, तीतर, कुकड़ाने आपका आजीवकाके वास्ते पाले नहीं तथा वैश्यादिकने न पोषे तथा उनको कुशील अणाचारको पइसो आप न लेवे, हिंसाकार्क पापकाके काममें, लोभरे वस पड़कर व्याजका व्यापार नहीं करे।

(८) आठमा वृतमें श्रावकजी अनर्थादण्डका त्याग करे।

(९) नवमा वृतमे श्रावकजी शुद्ध सामायिक करे (समायिकको नेम राखे)।

(१०) दसमा वृतमे देसावगासिक पोषो करे, सवर करे, चवदे नेम चितारे।

॥ चउदे नेमके नाम ॥

(१) सचित्त—याने कच्चा पाणी, कच्चा दाना, कच्ची हरी (लिलोत्री) वगेरे सचित (जीवयुक्त) अनेक वस्तु समझना जिसकी गणति तथा वजन साथ मर्यादा अपनी इच्छा अनुसार करे ।

(२) द्रव्य—याने जितनी वस्तु अपने मुंहमें लेनेमें आवे सो उनकी गिणती रखकर मर्यादा करे ।

(३) विगय—याने दूध, दही, घृत, तेल, गुड़ (मीठे) की गिनती तथा वजन साथ मर्यादा करे ।

(४) पन्नी—याने जुते, तलिये, मौजे, खड़ाउ इत्यादिक पेरमें पहरनेकी मर्यादा करना याने गणतीसे रखकर उपरायेंतका त्याग करे संगट्टेकी जयणा (संगट्टेरो दोष नहीं) ।

(५) तंम्बोल—याने लौंग, सुपारी, इलायची, पान, जायफल, जावंत्री वगेरे मुखवासकी मर्यादा करे ।

(६) वत्थ - वस्त्र पहरने, ओढनेकी मर्यादा गिणतीसे करे ।

(७) कुसुम—याने फूल, अतर, तेल इत्यादिक जो सुंघनेमे आवे उसकी मर्यादा करे ।

(८) वाहन—याने गाड़ी, रथ, बग्घी, तांगा, एका, वेली हाथी, घोड़ा, पालखी, म्याना, रेलगाड़ी, टेक्सी (मोटर) रिक्सा, बाइसीकल, मोटर साइकल, डुगी, न्याव, बोट, हवाइ जहाज विगरह (तिरती, फिरती, चरती) सब प्रकारकी सवारीकी मर्यादा करे ।

(६) सयण—याने गादी, तकिया, गलेचा, छप्परगिलग, मांचा, खुरसी, मकान वगैरे जो बेठनेके तथा सोनेके लिये काम आवे उसकी मर्यादा करे।

१० विलेपण—याने केसर, कुंकु, चन्दन, तैल, पीठी, लेप, साबण, सुरमो वगेरे शरीरके विलेपन करनेकी मर्यादा करे।

(११) दिशी—याने पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, उंची, नीची यह छव दिशीमे जाणेकी मर्यादा करे।

(१२) अबंभ—याने कुशील (स्त्री सेवन) की रातकी मर्यादा करे दिनका त्याग करे।

(१३, नाहावण—याते स्नान, मज्जन करनेकी मर्यादा करे।

(१४) भत्तेसु—याने आहार, पाणी करनेकी मर्यादा करे।

॥ छवकायके आरम्भकी मर्यादा करे ॥

(१) पृथ्वीकाय—याने मुरड, मट्टी, खडी, गेरू, हिरमच, निमक वगेरे सचित्त पृथ्वीकायके आरम्भकी मर्यादा करे।

(२) अप्पकाय—याने सर्व जातके सचित्त (कच्चा) पाणी पीने तथा वर्तनेकी मर्यादा करे तथा पलींढेकी मर्यादा करे।

(३) तेउकाय—याने अग्निका आरम्भ चुला, भट्टी, चिराग (रोसनी) हुक्का, बीडी, चीलम, चुरट वगेरेकी मर्यादा करे या त्याग करे।

(४) वाउकाय—याने पंखीसे, पखासे, कपड़ेसे, वीजणेसे पत्ता, वगेरासे हवा लेनेकी मर्यादा करे।

(५) वनस्पति काय—याने हरी, लिलात्री, फूल, फल, भाजी, साग, तरकारी, छाल, जड़ वगैरे सचित्त वनस्पति कायकी मर्यादा करे या त्याग करे ।

(६) त्रसकाय—याने बेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री, पञ्चेन्द्री वगैरे हालता चालता प्राणीने जाणकर मारनेका पच्चक्खाण करे ।

॥ तीन प्रकारके व्यापारकी मर्यादा ॥

(१) अस्सी—याने शस्त्र, छुरी, कटारी, चक्कु, ढाल, तलवार, बन्दुक कतरणी (कैंची) वगैरे जातिका शस्त्रोंकी मर्यादा करे गणतीसे उपरायेंतका त्याग करे ।

(२) मस्सी—याने कलम, फाउनटेन पेन, पेनसल, कागज, पत्र, खत, वही वगैरा लिखनेके सामानकी मर्यादा करे ।

(३) कस्सी—याने करसाणीका काम (खेत, बगीचा, कुंड, बावड़ी वगैरे) की मर्यादा या त्याग करे ।

ये सब मिलकर २३ तेवीस बोल हुवे इन बोलोंकी मर्यादा श्रावक श्राविकाओंको नित्य प्रति (हमेसा) सुबह करना चाहिये, और पिछा शामको याद करलेना चाहिये कामलागे सो निभरा खाते, ऐसा करनेसे सब दिनमें राइ जितना पाप लगता है, और मेरु जितना पाप टल जाता है, ऐसी मर्यादा करनेसे महा फलकी (लाभकी) प्राप्ति होती है, नरक, तिर्यंच की गति टल जाती है और सद्गति प्राप्त होती है ।

(११) इग्यारमे व्रतमे श्रावकजी प्रति पूर्ण पोपो करे ।

(१२) बारमा वृतमे श्रावकजी सुजतो दान देवे याने सुजता आहार पाणीका लेणेवालाने असुजतो वेरावे नहीं।

तेवीसमे बोले साधुजीका पांच महावृत

(१) पहेला महावृतमे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे जीव की हिंसा करे नही, करावे नहीं, करतांने भलो जाणे नही; मन, वचन, काया करी, तीन करण, तीन जोगसे।

(२) दूसरा महावृतमें साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे झूठ बोले नहीं, बोलावे नही, बोलताने भलो जाणे नही; मन, वचन, काया करी तीन करण, तीन जोगसे।

(३) तीसरा महावृतमें साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे चोरी करे नही, करावे नही, करता ने भलो जाणे नही; मन, वचन, काया करो; तीन करण, तीन जोगसे।

(४) चोथा महावृत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे मैथुन सेवें नही, सेवावे नही, सेवताने भलो जाणे नही, मन, वचन काया करो, तीन करण, तीन जोगसे।

(५) पांचवां महावृतमे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारे परिग्रह राखे नही, रखावे नही, राखताने भलो जाणे नही; मन, वचन, काया करो, तीन करण, तीन जोगसे।

चोवीसमे बोले भांगा ४९ को जाण पणो

आंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भांगा	९	९	३	९	९	३	३	३	१
कर्ण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
जोग	१	२	३	१	२	३	१	२	३

भांगो ९ वों १८ वों २१ वों ३० वों ३९ वों ४२ वों ४५ वों ४८ वों ४९ वों

(११)आंक एक इग्यारा को, भांगा उपजे नव एक करण एक जोग सुं कहेणा, १ करुं नही, मनसा २ करुं नही, वायसा ३ करुं नही कायसा ४ कराउं नही, मनसा ५ कराउं नही, वायसा ६ कराउं नही; कायसा ७ अणमोदु नही, मनसा ८ अणमोदु नही, वायसा ९ अणमोदु नही, कायसा।

(१२) आंक एक बारेको, भांगा उपजे नव, एक करण दोय जोग सें कहणा १ करू नहीं, मनसा वायसा २ करू नहीं, मनसा कायसा ३ करू नहीं, वायसा कायसा ४ कराउ नहीं, मनसा वायसा ५ कराउ नहीं, मनसा कायसा ६ कराउ नहीं, वायसा कायसा ७ अणमोदु नहीं, मनसा वायसा ८ अणमोदु नहीं, मनसा कायसा ९ अणमोदु नहीं, वायसा कायसा।

अणमोदु नही, कायसा।

(१३)आंक एक तेरा को, भांगा उपजे तीन, एक करण, तीन जोग से कहेणा, १ करुं नहीं, मनसा, वायसा, कायसा २ कराउ नहीं, मनसा, वायसा, कायसा ३ अणमोदु नहीं, मनसा, वायसा, कायसा।

(२१) आंक एक इकवीसको, भांगा उपजे नव, दोय करण, एक जोगसे कहेणा, १ करुं नही, कराउ नहीं, मनसा २ करुं नहीं, कराउ नहीं, वायसा ३ करुं नहीं, कराउ नहीं कायसा ४ करुं नहीं, अणमोदु नहीं, मनसा ५ करू नहीं, अणमोदु नहीं, वायसा ६ करू नहीं, अणमोदु नहीं, कायसा ७ कराउ नहीं अणमोदु नहीं मनसा ८ कराउ नहीं, अणमोदु नहीं वायसा ९ कराउ नहीं, अणमोदु नहीं, कायसा।

(२२) आंक एक बावीस को, भांगा उपजे नव, दोय करण दोय जोगसे कहेणा, करुं नहीं, कराउं नहीं, मनसा, वायसा २ करूं नहीं, कराउं नहीं, मनसा, कायसा ३ करूं नहीं, कराउं नहीं, वायसा, कायसा ४ करूं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, वायसा ५ करूं नही, अणमोदुं नहीं, मनसा, कायसा ६ करूं नहीं, अणमोदुं नहीं, वायसा, कायसा ७ कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, वायसा ८ कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, कायसा ९ कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, वायसा, कायसा।

(२३) आंक एक तेवीस को, भांगा उपजे तीन, दोय करण, तीन जोगसे कहेणा, १ करूं नहीं, कराउं नहीं, मनसा, वायसा, कायसा २ करूं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, वायसा, कायसा, ३ कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, वायसा, कायसा।

(३१) आंक एक एकतीस को, भांगा उपजे तीन; तीन करण, एक जोगसे कहेणा, १ करूं नहीं, कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा २ करूं नहीं, कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, वायसा ३ करूं नहीं, कराउं नहीं, अणमोदु नहीं, कायसा।

(३२) आंक एक बत्तीस को, भांगा उपजे तीन, तीन करण, दोय जोगसे कहेणा, १ करु नहीं, कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा वायसा २ करु नहीं, कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, कायसा ३ करु नहीं, कराउं नहीं अणमोदुं नहीं, वायसा, कायसा।

(३३) आंक एक तेत्रीस को, भांगो उपजे एक; तीन करण, तीन जोगसे कहेणा, १ करु नहीं, कराउं नहीं, अणमोदुं नहीं, मनसा, वायसा, कायसा।

पचीसमें बोले चारित्र पांच, चारित्र किसको कहते हैं? बाह्य और अभ्यन्तर क्रियाके निरोधसे प्रादुर्भुत आत्माकी शुद्धि विशेषको चारित्र कहते हैं; चारित्र पांच हैं उनके नाम १ सामायिक चारित्र २ छेदोपस्थापनिक चारित्र ३ परिहारविशुद्ध चारित्र ४ सुक्ष्मसंपराय चारित्र ५ यथाख्यात चारित्र।

पचीस बोलकी अल्पाबहुत्व।

सबसे थोड़ा २३ (तेवीसवे) २५ (पचीसवे) बोल वाला। तेथकी २२ (बावीसवे) २४ (चोवीसवे) बोल वाला असंख्यात गुणा यता तेथकी १३ (तेरवें) बोल वाला असंख्यात गुण तेथकी १९ (उगणीसवें) बोल वाला अनन्त गुणा तेथकी ४ (चोथे) १२ (बारवें) बोल वाला विशेषाइया। तेथकी ८ (आठवें) १७ (सतरवें) बोल वाला विशेषाइया। तेथकी १ (पहेले) २ (दुजे) ३ (तीजे) ५ (पांचवे) ६ (छट्ठे) ७ (सातवें) १० (दसवें) ११ (इग्यारवें) १६ (सोलवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी ९ (नवमे) १५ (पनरवे) १८ (अठारवे) बोल वाला विशेषाइया तेथकी १४ (चवदवें) २० (वीसवें) २१ (इकवीसवें) बोल वाला अनन्त गुणा।

पाठान्तर

सबसे थोड़ा २३ (तेइसवे) २५ (पचीसवे) बोल वाला तेथकी २२ (बाइसवें) २४ (चोइसवें) बोल वाला असंख्यात गुणा ज्यादा तेथकी १९ (उगणीसवें) बोल वाला असंख्यात

गुणा तेथकी १३ (तेरवें) बोल वाला अनन्त गुणा तेथकी ४ (चोथे) १२ (बारवें) बोल वाला विशेषाइया ; तेथकी ८ (आठवें) १७ (सतरवें) बोल वाला विशेषाइया ; तेथकी १ (पहेले) २ (दुजे) ३ (तीजे) ५ (पाचवें) ६ (छट्ठे) ७ (सातवें) १० (दसवें) ११ (इग्यारवें) १६ (सोलवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी ६ (नवमें) १५ (पनरवें) १८ (अठारवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी १४ (चवदवें) २० (बीसवें) २१ (इकीसवें) बोल वाला अन्त गुणा वता।

पाठान्तर।

सबसे थोड़ा २३ (तेवीसवें) २५ (पचीसवें) बोल वाला तेथकी २२ (बाइसवें) २४ (चोइसवें) बोल वाला असंख्यात गुणा तेथकी १३ (तेरमें) बोल वाला असख्यात गुणा तेथकी १६ (उगणीसवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी ४ (चोथे) १२ (बारवें) बोल वाला अनन्त गुणा तेथकी ८ (आठवें) १७ (सतरवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी १ (पहेले) २ (दुजे) ३ (तीजे) ५ (पांचवें) ६ (छट्ठे) ७ (सातवें) १० (दसवें) ११ (इग्यारवें) १६ (सोलवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी ६ (नवमें) १५ (पनरवें) १८ (अठारवें) बोल वाला विशेषाइया तेथकी १४ (चवदवें) २० (बीसवें) २१ (इकवीसवें) बोल वाला अनन्त गुणा।

॥ इति पचीस बोल समाप्तम् ॥

नाम	गति	जात	काय	इन्द्री	पर्याय	प्राण	वेद
नारकी	नर्क	पञ्चेन्द्री	त्रस	पांचोही	पांच, मन, भाषा भेली	दसोंही	नपुंसक
देवता	देव	„	„	„	„	„	भवनपतिसे दूजा देवलोक तक वेद पावे दोय, तीजा देवलोकसे जाव सर्वार्थसिद्ध तक वेद पावे एक पुरुष।
एकेन्द्री (५ स्थावर)	तिर्यंच	एकेन्द्री	स्थावर आप आपरी	एक स्फर्शेन्द्री	च्यार मन, भाषा टली	च्यार स्फर्श इन्द्री, काय, स्वासो सास, आयुष्य	नपुंसक
बेन्द्री	„	बेन्द्री	त्रस	दोय स्फर्श, रस	पांच मन टल्यो	छव	„
तेन्द्री	„	तेन्द्री	„	तीन स्फर्श, रस, घ्राण	„	सात	„

नाम	गति	जात	काय	इन्द्री	पर्याय	प्राण	वेद
चौरेन्द्री	तिर्यंच	चौरेन्द्री	त्रस	४ फरस, रस घ्राण, चक्षु	पांच मन टल्यो	आठ	नपुंसक
असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्री	तिर्यंचकी	तिर्यंच पञ्चेन्द्री	"	पांचोही	"	नव	"
सन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्री	तिर्यंच	पञ्चेन्द्री	"	"	छव	दस	तीनोंही
असन्नी (छमुच्छिम) मनुष्य	मनुष्य	"	"	"	च्यार पुरी बन्धी नहीं (अधुरी)	८ अधुरा श्वास लेवे तो उश्वास नहीं उश्वास लेवे तो श्वास नहीं	नपुंसक
सन्नी (गर्भज) मनुष्य	मनुष्य	पञ्चेन्द्री	त्रस	पांच	छव	दस	तीनों ही पुरुष, स्त्री, नपुंसक

॥ लघु दराडक ॥

चोवीस दराडकपर कवीस द्वार चाले वो कहते हैं

चोवीस दडकरा नाम पचीस बोल रे थोकड़ेके सोलमें बोलसे जाणता ।

१ शरीर=शरीर पांच

२ अवघेणा=जघन्य अगुलके असख्यातमें भाग, उत्कृष्टी लाख जोजनकी ।

३ सघेण=किसको कहते हैं ? जिस कर्मके उदयसे हाड़ोंका वन्धन हो उसको संघेण कहते हैं । उसके भेद छव ।

१ वज्रऋषभनाराच=जिसके उदयसे वज्रके हाड, वज्रके बेठन और वज्रकी कोलियां हो ।

२ वज्रनाराच=जिसके उदयसे वज्रके हाड और वज्रकी कीली हो ।

३ नाराच=जिसके उदयसे बेठन और कीली सहित हाड हो ।

४ अर्धनाराच=जिसके उदयसे हाडोंकी संधी अर्ध किलित हो ।

५ कीलक=जिसके उदयसे हाड परस्पर किलित हो ।

६ असंप्राप्ता सृपाटिका=जिसके उदयसे जुदे २ हाड नसोंसे बधे हों—परम्पर कीले हुवे न हों ।

पाठान्तर नाम।

१ वज्रऋषभनाराच २ ऋषभनाराच ३ नाराच ४ अर्ध-
नाराच ५ कीलको ६ छेवट्या।

४ संठाण (संस्थान) किसको कहते हैं? जिस कर्मके उदयसे
शरीरकी आकृति (शकल) बने, उसको संस्थान कहते
हैं। उसके भेद छव।

१ समचतुरस्र=जिसके उदयसे शरीरकी शकल उपर
नीचे तथा बीचमें समभागसे बने।

२ न्यग्रोध परिमण्डल=जिसके उदयसे जीवका शरीर
बडके वृक्षकी तरह हो, अर्थात् जिसके नाभिसे
नीचेके अङ्ग छोटे और ऊपरके बड़े हो।

३ स्वाति=ऊपरवाले जवाबसे बिलकुल विपरीत हो।
जैसे साँपकी बाँमी।

४ कुब्जक=जिसके उदयसे कुबडा शरीर हो।

५ वामन=जिसके उदयसे बौना (बावना) शरीर हो।

६ हुण्डक=जिसके उदयसे शरीरके अङ्गोपाङ्ग किसी
खास शकलके न हो। (खराब होवे)

पाठान्तर नाम।

१ समचोरस २ निग्रोध परिमंडल ३ सादि ४ वावनो
५ कुबडो ६ हुडक।

५ कषाय=कषाय च्यार।

६ संज्ञा=संज्ञा च्यार।

७ लेश्या=लेश्या छव।

८ इन्द्री=इन्द्री पांच।

९ समुद्घात किसको कहते हैं? मूल शरीरको बिना छोड़े जीवके प्रदेशोंके बहार निकलनेको समुद्घात कहते हैं। जिसका भेद ७ सात।

१ वेदनी २ कषाय ३ मरणान्तिक ४ वैक्रय ५ तेजस ६ अहारिक ७ केवली

१० सन्नी=मन होय सो सन्नी, मन नहीं होय सो असन्नी।

११ वेद=वेद तीन।

१२ पजत्ते (पर्याय) छव

१३ द्रष्टी=तीन।

१४ दर्शन—दर्शन किसको कहते हैं? जिसमें महासत्ता (सामान्यका) प्रतिभास (निराकार झलक) हों, उसको दर्शन कहते हैं। दर्शनके भेद च्यार।

१ चक्षु दर्शन=नेत्र जन्य मतिज्ञानसे पहिले सामान्य प्रतिभास या अवलोकनको चक्षु दर्शन कहते हैं।

२ अचक्षु दर्शन=नेत्रके सिवाय दूसरी इन्द्रीयों और मन संबंधी मतिज्ञानके पहिले होनेवाले सामान्य अवलोकनको अचक्षु दर्शन कहते हैं।

३ अवधी दर्शन=अवधि ज्ञानसे पहिले होने वाले सामान्य अवलोकनको अवधि दर्शन कहते हैं।

४ केवल दर्शन=केवल ज्ञानके साथ होने वाले सामान्य

अवलोकनको केवल दर्शन कहते हैं।

१५ नाण (ज्ञान) किसको कहते हैं ? किसी विवक्षित पदार्थको सत्ताके विशेष पदार्थको विषय करने वाली (जानने को) ज्ञान कहते हैं ; उसके पांच भेद हैं।

१ मतिज्ञान=इन्द्रिय और मनकी सहायतासे-जो ज्ञान हो उसको मतिज्ञान कहते हैं।

२ श्रुतज्ञान=मतिज्ञानसे जानेहुवे पदार्थसे सम्बन्ध लिये हुवे किसी दूसरे पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं जैसे—"घट" शब्द सुननेके अनन्तर उत्पन्न हुवा कंबुग्रीवादि रूप घटका ज्ञान।

३ अवधीज्ञान=द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये जो रुपी पदार्थको स्पष्ट जाने।

४ मनः पर्यय ज्ञान=द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा को लिये हुवे जो दूसरेके मनमे तिष्ठते (ठहरे) हुवे रुपी पदार्थको स्पष्ट जाने।

५ केवल ज्ञान=जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको युगपत् (एक साथ) स्पष्ट जाने।

१६ अनाण=तीन।

१७ जोग=पनरे।

१८ उपयोग=बारे।

१९ ताकम्म, अहारे=आहार लेवे जघन्य तीन दिसिको उत्कृष्टी छव दिसिको।

२० उवई=उपजे १-२-३ जाव संख्याता असंख्याता अनन्ता।

२१ ठीई=स्थिति जघन्य अन्तर मोहूर्तकी उत्कृष्टी ३३ सागरकी।

२२ समोइया असमोइया दोनों मरण मरे।

२३ चवण=चवे=१-२-३ जाव अनन्ता।

२४ गई=गति।

२५ प्राण=दस।

२६ जोग=तीन, १ मन, २ वचन ३ काया।

ओघेणा (अवगाहना)—पहेली नारकीसुं सातमी नारकी तक भवधारणी शरीररी ओघेणा जघन्य अंगुलरे असंख्यातमें भाग उत्कृष्टी पहेली नारकीरी ७॥। धनुष ६ अंगुलकी,

दुजी नारकीरी १५॥ धनुष १२ अंगुलकी,

तीजी ,, ३१। धनुषरी।

चोथी ,, ६२॥ ,,

पांचमी ,, १२५ ,,

छठी ,, २५० ,,

सातमी ,, ५०० ,,

उतरवेक्रे करेतो जघन्य अंगुलरे संख्यातमें भाग उत्कृष्टी ठामदूणी (आप आपरे ओघेणासुं दूणी जैसे—सातमी नारकीरी भवधारणी शरीररी ५०० धनुषरी उतर वेक्र करे तो १००० धनुषरी।

भवनपती वाणव्यंतर जोतषी पेले दुजे देवलोकरी ओघेणा जघन्य अंगुलरे असंख्यातमें भाग उत्कृष्टी ७ हाथरी, तीजे देवलोक

सुं सर्वार्थ सिद्धतक जघन्य अंगुलरे असंख्यातमें भाग उत्कृष्टी न्यारी न्यारी ।

तीजे, चोथे देवलोकरी ६ हाथरी ।

पांचवें, छठे „ ५ „

सातवें, आठवें „ ४ „

नवमेंसुं वारमे „ ३ „

नवग्री वेकरी २ हाथरी ।

४ अनुतर विमाणरी १ हाथरी ।

सर्वार्थ सिद्धरी मुंडे हाथरी ।

उतर वेके करे तो जघन्य अगुलरे संख्यातमें भाग उत्कृष्टी वारमें देवलोक तक लाख जोजनरी नवग्रीवेक, अनुतर विमाणरा देवता वेके करे नहीं ।

च्यार स्थावर तथा असन्नी मनुष्यरी जघन्य उत्कृष्टी अंगुलरे असंख्यातमें भाग वनास्पतीरी जघन्य अंगुलरे असंख्यातमें भाग उत्कृष्टी १०,०० जोजन झाझेरी कामल (कवलके फूल) की अपेक्षा ।

वेन्द्रीरी जघन्य अंगुलरे असंख्यातमें भाग उत्कृष्टी १२ जोजनरी

तेन्द्रीरी „ „ „ „ „ ३ कोसरी

(गउरी)

चोन्द्रीरी „ „ „ „ „ ४ कोसरी

तिर्यंच पचेन्द्रीरी जघन्य अंगुलरे असंख्यातमें भाग, उत्कृष्टी— सन्नी जलचररी, १००० जोजनरी, असन्नी जलचररी १००० जोजनरी ।

सन्नी थलचररी ६ कोसरी, असन्नी थलचररी प्रत्येक कोसरी सन्नी उरपररी १००० जोजनरी, „ उरपररी प्रत्येक जोजनरी। सन्नी भुजपररी प्रत्येक कोसरी, „ भुजपररी प्रत्येक धनुषरी; सन्नी खेचररी असन्नी खेचररी प्रत्येक धनुषरी ; तिर्यंच पचेन्द्री उतर वेक्र करेतो जघन्य अंगुलरे संख्यातमें भाग, उत्कृष्टी ६०० जोजनकी करे, मोटी अवगाहना वालो उतर वेक्र करे नहीं।

सन्नी मनुष्यरी—पांच भरत, पांच इरवरतके मनुष्योंकी अवसर्पणीके पहिले आरे लागतां ३ कोसकी उतरतां २ कोसकी, दुजे आरे लागतां २ कोसकी उतरतां १ कोसकी, तीजे आरे लागतां १ कोसकी उतरतां ५०० धनुषरी, चोथे आरे लागतां पांचसे धनुषरी उतरतां ७ हाथरी, पाँचवे आरे लागतां ७ हाथरी उतरतां १ हाथरी, छठे आरे लागतां १ हाथरी उतरतां मुंडे हाथरी।

उत्सरपणीमें चढ़ती कहणी। वेक्रे लाख जोजनकी करे।

५ हेमवय ५ एरणवय (जुगलीयां) की ज० देसउणी कोसरी उ० १ कोसरी,

५ हरीवास ५ रमकवासकी ज० देस उणी दोय कोसरी उ० २ कोसरी,

५ देवकुरू ५ उतर कुरूकी ज० देस उणी तीन कोसरी उ० ३ कोसरी,

महाविदेह खेत्रका मनुष्यरी ५०० धनुषरी,

सिद्धांकी जघन्य १ हाथ ८ अंगुलरी (३२ अंगुलरी) मध्यम

४ हाथ १६ अंगुलरी, उत्कृष्टी ३३३ धनुष ३२ अंगुलरी।

शरीर—नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, जोतषी, विमाणीक, च्यार स्थावर, तीन विकलेन्द्री, असन्नी तिर्यंच, असन्नी मनुष्य, तीस अकर्मा भूमि, छपन अतर द्वीपामें शरीर पावे तीन (उदारीक, तेजस, कारमाण)

वाउकाय, सन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें शरीर पावे च्यार (उदारीक, वैक्र, तेजस, कारमाण), गर्भेज मनुष्यमें शरीर पावे पांचुं ही, सिद्धांमें शरीर पावे नहीं।

संघेण नारकी, भवनपति, वाणव्यतर, जोतषी, विमाणीकमे संघयण पावे नहीं, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, असन्नी मनुष्य, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें संघयण पावे एक छेवटो; गर्भेज तिर्यंच, गर्भेज मनुष्यमें संघयण पावे छउ ही, युगलीयामें संघयण पावे एक वज्रऋषभ नाराच सङ्घयण; सिद्धामें सङ्घयण पावे नहीं।

संठाण—नारको, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, असन्नी तिर्यंच, असन्नी मनुष्यमें संठाण पावे एक हुंडक; भवनपति, वाणव्यंतर, जोतषी, विमाणीक, तीस अकर्मा भुमि, छपन अन्तर द्वीप, त्रेसट शलाका पुरुषामें संठाण पावे एक समचोरस; गर्भेज मनुष्य, गर्भेज तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें संठाण पावे छउ ही, सिद्धांमें संठाण पावे नहीं।

कषाय—२३ दंडकमें कषाय पावे ४ क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्य सकषाइ होय तो कषाय पावे ४ अकषाइ होय तो उपशांत

अकषाइ होय, खिण अकषाइ होय ; सिद्ध अकषाइ होय।

संज्ञा—२४ दंडकमें संज्ञा पावे ४ आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा ; मनुष्य संज्ञा बहुता होय तो संज्ञा पावे ४ नो संज्ञा बहुता होय तो संज्ञा नहीं, सिद्धमें संज्ञा नहीं।

नोट—संज्ञा किसको कहते हैं ? अभिलाषाको (वांछाको) संज्ञा कहते हैं।

लेश्या—पहेली, दुसरी नारकीरे नेरीयेमें लेस्या पावे १ कापूत; तीसरी नारकीरे नेरीयेमें २ कापूत, नील. (कापूत वाला घणा, नीलवाला थोड़ा) चोथी नारकीरे नेरीयेमे लेस्या पावे १ नील; पांचमी नारकीरे नेरीयेमें लेस्या पावे २ नील, कृष्ण (नील वाला घणा कृष्णवाला थोड़ा) छठी नारकीरे नेरीयेमें लेस्या पावे १ कृष्ण, सातमी नारकीरे नेरीयेमें लेस्या पावे १ महाकृष्ण।

भवनपति, वाणव्यन्तर देवतामें लेस्या पावे ४ पेलड़ी; पृथ्वि, पाणी, वनास्पति तथा युगलीयामें लेस्या पावे ४ पेलड़ी ; तेउ वाउ, तीन विकल इन्द्री, असन्नी मनुष्य, असन्नी तिर्यंचमें लेस्या पावे ३ माठी (कृष्ण, नील, कापूत) सन्नी तिर्यंचमें लेस्या पावे ६ सन्नी मनुष्य सलेसी होय तो लेस्या पावे ६ अलेसी होय तो चवदमें गुणठाणे आसरी ; जोतषी, पहिले, दुजे देवलोक तथा पहिले किलमेषीमें लेस्या पावे १ तेजु ; तीजे, चोथे, पांचमें देव-लोकमें, तथा दुजा किलमेषीमें लेस्या पावे १ पदम ; छठे देवलोक सुंसर्वार्थ सिद्ध तांइ, तथा तीजे किलमेषीमें लेस्या पावे १ शुक्ल सिद्धामें लेस्या नहीं।

इन्द्री--नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, जोतषी विमाणीक, गर्भजतिर्यंच पञ्चेन्द्री, असन्नी मनुष्यमें इन्द्री पावे पांचुंही ; पांच स्थावरमें इन्द्री पावे एक स्फर्शेन्द्री ; बेन्द्रीमें इन्द्री पावे दोय (स्फर्शेन्द्री, रसेन्द्री) तेन्द्रीमें इन्द्री पावे तीन स्फर्शेन्द्री, रसेन्द्री, घ्रणेन्द्री) चोन्द्रीमें इन्द्री पावे च्यार (स्फर्शेन्द्री, रसेन्द्री, घ्रणेन्द्री, चक्षु इन्द्री) गर्भेज मनुष्य सइन्द्रीया होय तो इन्द्री पावे पांचु ही, अणन्द्रीया होयतो इन्द्री पावे नहीं (तेरमें, चवदमें गुणठाणे आसरी) सिद्ध अणन्द्रीया सिद्धांके इन्द्री होय नहीं ।

समुदघात ७ (१ वेदनी २ कषाय ३ मरणांतिक ४ वेक्रे ५ तेजस ६ आहारिक ७ केवली) ७ नारकी, तथा वायु कायमें समुदघात पावे ४ पेलड़ी ; भवनपती, वाणव्यतर, जोतषी, पहिले देवलोकसु बारमें देवलोकरा देवता, तथा सन्नी तिर्यंचमें समुद घात पावे ५ पेलडी ; ४ स्थावर ३ विकल इन्द्री, असन्नी मनुष्य, असन्नी तिर्यंच, जुगलीया, नवग्रीवेक, पांच अनुतर विमाणरा देवतामें समुदघात पावे ३ पेलड़ी, सन्नी (गर्भेज) मनुष्यमे समुदघात पावे ७ (सातोंही) केवलयामें १ केवल समुदघात; तिर्थंकर समुदघात करे नहीं, सिद्धामें समुदघात नहीं ।

सन्नी--(मन होय सो सन्नी) असन्नी (मन नहीं होय सो असन्नी) ७ नारकी, भवनपती, वाणव्यंतर, जोतषी, विमाणीक, गर्भेज तिर्यंच, जुगलीया सन्नी ; (पेलीनारकी, भवनपति, वाणव्यतर, जोतषी, पहेले, दुजे देवलोकमें ; सन्नी असन्नी दोनु उपजे) ५ स्थावर, ३ विकल इन्द्री समुछम तिर्यंच

असन्नी ; गर्भेज मनुष्य सन्नी, तथा नोसन्नी नो असन्नी (सन्नी भी नहीं असन्नी भी नही जैसे केवली) समुछम मनुष्य असन्नी ; सिद्ध सन्नी भी नहीं असन्नी भी नहीं

वेद—नारकी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, असन्नी मनुष्य, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें वेद पावे एक नपुंसक ; भवनपति, वाण व्यंतर, जोतषी, पहिले, दुजे देवलोक, पहिले किलमेषी; तीस अकर्मा भुमी, छपन अन्तर द्विपमें वेद पावे दोय (स्त्री वेद, पुरुष वेद) तीजे देवलोकसुं सर्वार्थ सिद्ध तांइ वेद पावे एक पुरुष वेद, गर्भेज तिर्यंचमें वेद पावे तीनुंही ; गर्भेज मनुष्य सवेदी होय तो वेद पावे तीनुंही, अवेदी होय तो वेद पावे नहीं ; सिद्धांमें वेद पावे नहीं

पजते—नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, जोतषी, विमाणीकमें पर्याय पावे पांच (मन भाषा भेली) पांच स्थावरमें पर्याय पावे च्यार ; असन्नी मनुष्यमें पर्याय पावे च्यार अधुरी ; तीन विकलेन्द्री, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें पर्याय पावे पांच (मन टल्यो) सन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्री, सन्नी मनुष्यमें पर्याय पावे छउंही ; सिद्धांमें पर्याय पावे नहीं।

दृष्टी—नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, जोतषी, पहिले देवलोकसुं बारमे देवलोक, गर्भेज मनुष्य, गर्भेज तिर्यंचमें दृष्टी पावे तीनुंही; पांच स्थावर, असन्नी मनुष्य, छपन अन्तर द्वीपमें दृष्टी पावे एक मिथ्यात ; नवग्रीवेकरा देवता, तीन विकलेन्द्री, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्री, तीस अकर्मा भूमिमें दृष्टी पावे दोय (समदृष्टी,

मिथ्यातदृष्टी) पांच अनुतर विमाणरे देवता, सिद्धांमें दृष्टी पावे एक सम दृष्टो ।

दर्शण-नारकी, भवनपति, वाणव्यतर, जोतषो, विमाणीक, गर्भज तिर्यंचमें दरसण पावे तीन (चक्षु, अचक्षु, अवधि) पाच स्थावर, बेन्द्री, तेन्द्री, असन्नी मनुष्यमें दर्शन पावे एक अचक्षु ; चोन्द्री, असन्नी तिर्यच पञ्चेन्द्री, तीस अकर्मा भूमी, छपन अन्तर द्वीपमें दर्शन पावे दोय (चक्षु, अचक्षु) गर्भज मनुष्यमें दर्शन पावे च्यारु ही ; सिद्धांमें दर्शन पावे एक केवल ।

नाण-नारकी, भवनपति, वाणव्यन्तर, जोतपी, विमाणीक, गर्भज तिर्यचमें ज्ञान पावे तीन (मति, स्रुति, अवधि) गर्भज मनुष्यमें ज्ञान पावे पांचु ही ; पांच स्थावर, असन्नो मनुष्य, छपन अन्तर द्विपमें ज्ञान पावे नही ; तीन विकलेन्द्री, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रो, तीस अकर्मा भूमीमें ज्ञान पावे दोय (मति स्रुति) सिद्धांमें ज्ञान पावे एक केवल ।

अनाण-नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, जोतपी, पहिले देवलोकसुं नवग्रीवेक तांइ, गर्भज तिर्यंच पञ्चेन्द्री, गर्भेज मनुष्यमें अज्ञान पावे तीनुंही ; पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, असन्नो मनुष्य, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्री, तीस अकर्मा भूमी, छपन अन्तर द्विपमें अज्ञान पावे दोय (मति, स्रुति) पांच अनुतर विमाण मे, सिद्धांमें अज्ञान पावे नहीं ।

जोग-नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, जोतषी, विमाणीकमें जोग पावे इग्यारे (च्यार मनका, च्यार वचनका, वेके, वेकेरो

मिश्र, कारमाण) च्यार स्थावर, असन्नी मनुष्यमें, जोग पावे तीन (उदारीक, उदारीकरो मिश्र, कारमाण) वायुकायमें जोग पावे पांच (उदारीक, उदारीकरो मिश्र, वैक्रे, वैक्रेरो मिश्र, कारमाण) तीन विकलेन्द्री, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें जोग पावे च्यार (उदारीक, उदारीकरो मिश्र, कारमाण, व्यवहार भाषा) गर्भेज तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें जोग पावे तेरे (आहारिक, आहारिकरो मिश्र टल्यो) गर्भेज मनुष्य सजोगी होय तो जोग पावे पनरेही, अजोगी होय तो चवदमें गुणठाणे आसरी, तीस अकर्मा भूमी, छप्पन अन्तर द्वीपमें जोग पावे इग्यारे (च्यार मनरा, च्यार वचनरा, उदारीक, उदारीकरो मिश्र, कारमाण) सिद्धांमें जोग पावे नहीं।

उपयोग—७ नारकी, भवनपती, वाणव्यंतर, जोतपी, पहिले देवलोकसुं नवग्रीवेक तांई, तथा गर्भेज तिर्यंचमें उपयोग पावे ९ (३ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दरसण) ५ स्थावरमें उपयोग ३ (२ अज्ञान १ अचक्षु दरसण) बेन्द्री, तेन्द्रीमें उपयोग पावे ५ (२ ज्ञान २ अज्ञान १ दरसण) च्योन्द्री, असन्नी तिर्यंच पचेन्द्री, ३० अकर्मा भूमिका युगलीयांमें उपयोग पावे ६ (२ ज्ञान २ अज्ञान २ दरसण) असन्नी मनुष्य तथा ५६ अंतरद्विपका युगलीयांमें उपयोग पावे ४ (२ अज्ञान २ दरसण) गर्भेज मनुष्यमें उपयोग पावे १२ (५ ज्ञान ३ अज्ञान ४ दर्सण) ५ अनुतर विमाणमें उपयोग पावे ६ (३ ज्ञान ३ दरसण) सिद्धांमें उपयोग पावे २ केवल ज्ञान केवल दर्सण।

आहार—२८ दंडकरा जीव आहार लेवे छउं दिसीरो, ५ स्थावर आहार लेवे व्यायघात आसरी सिये तीन दिसीरो, सिये च्यार दिसीरो, सिये पांच दिसीरो ; अव्यायघात आसरी छउं दीसीरो; मनुष्य आहारिक होय अणारीक होय (आहारीक-आहार लेवे छउं दिसीरो) (अणारीक—केवली समुद्घातरे तीजे, चोथे, पांचमें समे, अथवा चवदमें गुणठाणे) सिद्ध अणारीक (आहार लेवे नहीं)

उवट्ट- नारकी, भवनपति, वाणव्यतर, जोतषी, पहिले देवलोकसुं आठमें देवलोक तांइ, तीन विकलेन्द्री, असन्नी मनुष्य, असन्नी तिर्यंचमें सन्नी तिर्यंचमे एक समेमें १—२—३ जाव संख्याता, असंख्याता उपजे ; च्यार स्थावरमें समे समे असंख्याता उपजे, वनास्पतिमें सठाणे आसरी (वनास्पती आसरी) समें समें अनंता उपजे, परठाणे आसरी (दूसरे ठीकाणे आसरी) समे समे असंख्याता उपजे ; नवमें देवलोकसु सर्वार्थ सिद्ध तांइ, गर्भेज मनुष्यमें, तीस अकर्मा भूमी, छपन अन्तर द्वीपामें एक समे में १—२-३ जाव संख्याता उपजे सिद्धांमें एक समेमें १—२—३ जाव १०८ उपजे।

इकवीसमो स्थिति द्वार।

नारकी की स्थिति।

१ पहली नारकीकी स्थिति ज० दस हजार वर्षकी उ० १ सागरकी
२ दूसरी नारकीकी स्थिति ज० १ सागरकी उ० ३ सागरकी।

३ तीसरी नारकोकी	स्थिति	ज०	३ सागरकी	उ०	७	सागरकी
४ चोथी	,,	,,	,, ७	,,	,, १०	,,
५ पांचमी	,,	,,	,, १०	,,	,, १७	,,
६ छट्ठी	,,	,,	,, १७	,,	,, २२	,,
७ सातमी	,,	,,	,, २२	,,	,, ३३	,,

भवनपति देवताकी स्थिति।

असुर कुमारका दोय इन्द्र १ चवरेन्द्रजी २ वलेन्द्रजी।

१ चवरेन्द्रजीकी चवरचंचा राजधानी मेरुसें दक्षिण दिशीमें।

२ वलेन्द्रजीकी वलनचंचा राजधानी मेरुसें उत्तर दिशीमें।

चवरेन्द्रजीकी चवरचंचा राजधानीका देवताकी स्थिति ज० दस हजार वर्षकी, उ० १ सागरकी, इनके देव्यांकी ज० १० हजार वर्षकी उ० ३॥ पल्योपमकी।

दक्षिण दिशीका (९) नवनिकायका देवताकी ज० १० हजार वर्षकी उ०१॥ पल्योपमकी, इनके देव्यांकी ज० १० हजार वर्षकी उ० ॥ पौण पल्योपमकी।

वलेन्द्रजीकी वलनचंचा राजधानीका देवताकी स्थिति ज० १० हजार वर्ष जाझेरी उ०१ सागर जाझेरी, इनके देव्यांकी स्थिति ज० १० हजार वर्ष जाझेरी उ० ४॥ पल्योपमकी।

उत्तर दिशीका (९) नवनिकायका देवताकी स्थिति ज० १० हजार वर्ष जाझेरी उ० देस उणा दोय पल्योपमकी, इनके देव्यांकी स्थिति ज० १० हजार वर्ष जाझेरी उ० देस उणा १ पल्योपमकी।

वाणव्यन्तर देवताकी स्थिति।

ज० १० हजार वर्षकी उ० १ पल्योपमकी, इनके देव्याकी स्थिति ज० १० हजार वर्षकी उ०॥ आधा पल्योपमकी, भौमूमका देवताकी स्थिति भी इस माफिक ही है।

ज्योतिषी देवताकी स्थिति।

इनके भेद पांच १ चंद्रमां २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र ५ तारा। चन्द्रमांकी स्थिति ज० पाव पल्योपमकी उ० १ पल्योपम १ लाख वर्षकी इनके देव्यांकी ज० पाव पल्योपमकी उ०॥ आधा पल्योपम ५० हजार वर्षकी।

सूर्यकी ज०। पाव पल्योपमकी उ० १ पल्योपम १ हजार वर्षकी इनके देव्यांकी स्थिति ज०। पाव पल्योपमकी उ०॥ आधा पल्योपम ५०० वर्षकी।

ग्रहकी ज०। पाव पल्योपमकी, उ० १ पल्योपमकी उनके देव्यांकी स्थिति ज०। पाव पल्योपमकी उ० आधा पल्योपमकी। नक्षत्रकी ज० पाव पल्योपमकी उ० आधा पल्योपमकी, इनके देव्यांकी ज० पाव पल्योपमकी उ० पावपल्योपम जामेरी। तारांकी ज० पल्योपमके आठमे भाग उ० पाव पल्योपमकी, इनके देव्यांकी ज० पल्योपमके आठमें भाग उ० पलके आठमें भाग जाभेरी।

विमाणिक देवताकी स्थिति।

१ पहेले देवलोकमें ज० १ पल्योपमकी उ० दोय सागरकी,

इनके देव्यां दोय प्रकारकी १ परिग्रही २ अपरिग्रही ; (१) परिग्रहीकी ज० १ पल्योपमकी उ० ७ पल्योपमकी, (२) अपरिग्रहीकी ज० १ पल्योपमकी उ० ५० पल्योपमकी ।

२ दूसरा देवलोकमे ज० १ पल्योपम जाझेरी उ० २ सागर जाझेरी, इनके देव्यांका दोय भेद (१) परिग्रही (२) अपरिग्रहि ; परिग्रहीकी ज० १ पल्योपम जाझेरी उ० ९ पल्योपम की अपरिग्रहीकी ज० १ पल्योपम जाझेरी उ० ५५ पल्योपमकी ।

३ तीसरा	देवलोक	की	ज०	२	सागर	की	उ०	७	सागर	की
४ चोथा	„	„	„	२	„	जाझेरी	उ०	„	„	जाझेरी
५ पांचवां	„	„	„	७	„	की	उ०	१०	सागर	की
६ छट्ठा	„	„	„	१०	„	„	„	१४	„	„
७ सातमां	„	„	„	१४	„	„	„	१७	„	„
८ आठमां	„	„	„	१७	„	„	„	१८	„	„
९ नवमां	„	„	„	१८	„	„	„	१९	„	„
१० दसमा	„	„	„	१९	„	„	„	२०	„	„
११ इग्यारमां	„	„	„	२०	„	„	„	२१	„	„
१२ बारमां	„	„	„	२१	„	„	„	२२	„	„
१३ पहिले ग्रीवेक		„	„	२२	„	„	„	२३	„	„
१४ दूसरे	„	„	„	२३	„	„	„	२४	„	„
१५ तीसरे	„	„	„	२४	„	„	„	२५	„	„
१६ चोथे	„	„	„	२५	„	„	„	२६	„	„
१७ पांचमें	„	„	„	२६	„	„	„	२७	„	„

१८ छट्ठे ग्रीवेक की ज० २७ सागर की उ० २८ सागरकी
१९ सातमें ,, ,, ,, २८ ,, ,, ,, २९ ,, ,,
२० आठमें ,, ,, ,, २९ ,, ,, ,, ३० ,, ,,
२१ नवमें ,, ,, ,, ३० ,, ,, ,, ३१ ,, ,,
२२ च्यार अनुतर विमाणकी ज० ३१ सागरकी उ० ३३ सागर की
२३ सर्वार्थ सिद्ध की स्थिति ज० ३३ ,, ,, उ० ३३ ,, ,,

पांच स्थावर को स्थिति ज० अन्तर महोरत की उत्कृष्टी।

१ पृथ्वी काय की १२ हजार वर्ष की
२ अप्प ,, ,, ७ ,, ,, ,,
३ तेउ ,, ,, ३ अहो रात्री ,,
४ वाउ ,, ,, ३ हजार वर्ष ,,
५ वनस्पति ,, ,, १० ,, ,, ,,

तीन विकलेन्द्रो को स्थिति ज० अन्तर महोरतकी उत्कृष्टी

१ बेन्द्रीकी १२ वर्षकी।
२ तेन्द्रीकी ४९ दिनकी।
३ चौरेन्द्रीकी ६ महीनाकी।

तिर्यंच पञ्चेन्द्रोको स्थिति ज० अन्तर महोरत की उत्कृष्टी

१ जलचर सन्नी की क्रोड पूर्व की।
२ ,, असन्नी ,, ,, ,, ,,
३ थलचर सन्नी की ३ पल्योपम की
४ ,, असन्नी की ८४ हजार वर्ष की।

५ खेचर सन्नी की पल्योपमके असंख्यातमें भाग।
६ ,, असन्नी की ७२ हजार वर्ष की।
७ उरपर सन्नी की क्रोड पूर्व की।
८ ,, असन्नी की ५३ हजार वर्ष की।
९ भुजपुर सन्नी की क्रोड पूर्व की।
१० ,, असन्नी ,, ४२ हजार वर्ष की।
असन्नी मनुषय की ज० उ० अन्तर मोहरत की।

सन्नी मनुष्य की स्थिति—

५ भरत ५ इरवरत का मनुष्य को लागते पहेले आरे ३ पल्योपमकी, उतरतां पहेले आरे, लागते दुसरे आरे २ पल्योपमकी, ऊतरता दुसरे आरे, लागतां तीसरे आरे १ पल्योपमकी; उतरतां तीसरे आरे, लागतां चोथे आरे क्रोड़ पूर्वकी; उतरतां चोथे, आरे, लागतां पांचमें आरे सो वर्ष जाझेरी; उतरतां पांचमें आरे, लागतां छट्ठे आरे २० वर्षकी; उतरतां छट्ठे आरे १६ वषकी। ये अवसर्पणीकी हुई। उत्सर्पणी कालमें इसी माफिक चढ़ती कहेणी।

पांच महाविदेह क्षेत्रकी ज० अतर मोहरतकी उ० क्रोड पूर्वकी

युगलियांकी स्थिति।

५ हेमवय ५ एरणवयकी ज० देसउणी १ पल्यकी उ० एक पल्यकी
५ हरीवास ५ रमकवासकी ,, ,, २ ,, ,, २ ,,
५ देवकुरु ५ उतरकुरुकी ,, ,, ३ ,, ,, ३ ,,

५६ अन्तर द्वीपाका युगलियाकी स्थिति ज० उ० पल्यके असंख्यातमे भाग।
घणा सिद्ध आसरी आदि नहीं अन्त नहीं एक सिद्ध आसरी आदि है पण अन्त नहीं।

॥ कालको माप ॥

समे किसको कहते हैं? एक वक्त आंख खोले या टमकारे इसमें असंख्याता समा होता है।

आवलका किसको कहते हैं? एकस्वासो स्वासमें संख्याता आवलका होती है।

स्वासोस्वास किसको कहते हैं? निरोग पुरुषकी नाड़ीके एक वार चलनेको श्वासोस्वास काल कहते हैं कोडा कोडी किसको कहते हैं? एक कोडको एक कोडसे गुणा करने पर जो लब्ध हो, उसको एक कोडा कोडी कहते हैं।

महोरत किसको कहते हैं? अड़तालीस मिनटका एक महोरत होता है। अंतर महोरत किसको कहते हैं? आवलकासें उपर और महोरतके भीतरके कालको अन्तर मोहरत कहते हैं। एक मोहरतमें कितनी आवलका होती हैं? एक मोहरतमें १६७७७२१६ एक क्रोड सिड़सठ लाख सित्योतर हजार दोयसो सोला आवलका होती हैं। एक मोहरतमे (४८ मिन्टमें) कितने श्वासो-स्वास होते हैं? तीन हजार सातसे तिहतर (३७७३) होते हैं।

पल्योपम किसको कहते हैं? चार कोसको कुवो लम्बो, च्यार कोसको चवड़ो च्यार कोसको उन्डो तीन गुणी जाभे-री परधी उस कुवेको देवकुरु उतरकुरुके जुगलियोंका वालाग्र (केश) एक दिनके उगे हुवे जाव सात दिनके उगे हुवे नोट "एक भरत इरवरतके मनुष्यके वालाग्रमें देवकुरु उतर कुरुके जुगलियोंके केस ४०९६ होते हैं" उन एक एक वालाग्रका असख्याता २ खण्डवा (टुकड़ा) करे, जो आंखमें घाले तो रड़के नहीं (मालुम पड़े नहीं) चक्षुइन्द्रीके अवघेणासे अनन्त गुणा छोटा सुक्ष्म पृथ्वी कायके शरीरसें अनन्त गुणा वडा, वादर पृथ्वी वायके शरीर जितना, उने वालोंसे (केश) उस कुवेको काठा भरे, पांच ओपमा करके सहित, चक्रवर्ती की सेन्या उपर होकर निकल जावे तो भी एक खण्डवो मुचे (डोगे) नहीं, दावानल अग्नि लाग जावे तो एक खण्डवो वले नहीं, पुखरा वर्तन मेह वर्षतो एक खण्डवो भिजे नहीं, अनुकुल प्रतिकुल वायरो वाजे तो एक खण्डवो उडे नहीं, गंगा सिंधु नदीको पाट उपरकर वेह जावे तो भी एक वाल वेवे नहीं, इस तरहको काठो कुवो भरे, सो सो वरससें एक एक खण्डवो निकाले, निर्लेपपणे सव कुवो (आखो कुवो) खालो हो जावे उसको एक पल्योपम कहिये।

सागर किसको कहते हैं? दस कोडा कोड कुवा खाली हो जावे याने दस कोडा कोड पल्योपमका एक सागर होता है।

समोहया असमोहया– समोहया तो समुदघात फोड़ी

ताणा वेजो करी (कीड़ो नगरे रो कनारकी परे) मरे असमोहया—विना समुदघात ते गोलीके भड़ाकेनी परे मरे। २५ दंडकरा जीव दोनु प्रकाररा मरण करे, सिद्धामें मरण नहीं।

चवणा—उपजणेरो केयो ज्योंही चवणेरो के देणो।

गइ—पहेली नारकीसु छठी नारकी तक दोय गतरा (मनुष्य तिर्यंचरा) आवे, दोय गतमें (मनुष्य, तिर्यंचमें) जावे, दण्डक आसरी बीसमें, इकीसमेंरो आवे; बीसवें, इकीसवें में जावे; सातमी नारकीमें दोय गतरा (मनुष्य, तिर्यंचरा) आवे, एक तिर्यंच गतिमें जावे, दण्डक आसरी बीसमें, इकीसमेरो आवे, बीसवें मे जावे; भवनपति, वाणव्यतर, जोतषी, पहिले, दुजे देवलोक तक दोय गतरा (मनुष्य, तिर्यंचरा) आवे दोय गतमें जावे (मनुष्य, तिर्यंचमें) दण्डक आसरी बीसमें, इकीसमेंरो आवे पांच दण्डकमें जावे (पृथ्वि, पाणी, वनास्पती, तिर्यंच, मनुष्य) तीजे देवलोक सु आठमें देवलोक तक दोय गतरा (तिर्यंच, मनुष्यरा) आवे, दोय गतमें (तिर्यंच, मनुष्यमें) जावे। दण्डक आसरी बीसमें इकीसमेरा आवे बीसमें इकीसवें मे जावे; नवमे देवलोक सु सर्वार्थसिद्ध ताइ एक मनुष्य गतरो आवे एक मनुष्य गतिमें जावे दण्डक आसरी इकीसमेंरो आवे इकीसवें मे जावे; पृथ्वि, पाणी, वनास्पतीमें तीन गतरा आवे (तिर्यंच, मनुष्य, देवता) दोय गतमें जावे (मनुष्य, तिर्यंच) दण्डक आसरी तेइस दण्डकरा (नारकी टली) आवे; दस

दण्डकमें (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री; तिर्यंच, मनुष्य) जावे; तेउ, वाउमें दोय गतरा (मनुष्य, तिर्यंचरा) आवे एक तिर्यंच गतमें जावे, दण्डक आसरी दस दण्डकरा (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री तिर्यंच, मनुष्य) आवे, नव दण्डकमें (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, तिर्यंच) जावे असन्नी-मनुष्यमें दोय गतरा (मनुष्य, तिर्यंच) आवे, दोय गतमें (मनुष्य, तिर्यंच) जावे; दण्डक आसरी आठ दण्डकरा (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री) आवे, दस दण्डकमें (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, तिर्यंच, मनुष्य) जावे; तीन विकलेन्द्रीमें दोय गतरा (मनुष्य, तिर्यंच) आवे, दोय गतमें (मनुष्य, तिर्यंच) जावे, दण्डक आसरी दस दण्डकरा (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, तिर्यंच, मनुष्य) आवे, दस दण्डकमें (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, तिर्यंच, मनुष्य) जावे ; असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें दोय गतरा (तिर्यंच, मनुष्य) आवे च्यार गतमें जावे, दण्डक आसरी दस दण्डकरा (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्री, तिर्यंच, मनुष्य) आवे, बाइस दण्डकमें जावे (जोतपी, विमाणीक वर्ज्या) सन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें और सन्नी मनुष्यमें च्यार गतीरो आवे च्यार गतीमें जावे, दण्डक आसरी चोवीस दण्डकरा आवे, चोवीस दण्डकमें जावे ; तीस अकर्माभूमीमें दोय गतरा (तिर्यंच, मनुष्य) आवे, एक देवगतमें जावे, दण्डक आसरी दोय दण्डकरा आवे (वीसमे, इकीसमे) तेरे दण्डकमें=दस भवनपति, वाणव्यन्तर, जोतषी, विमाणीकमें (विमाणीकमें दुजे देवलोक तक) जावे; छपन

अन्तरद्वीपमें दोय गतरा (तिर्यंच, मनुष्य) आवे, एक देवगतमें जावे, दण्डक आसरी दोय दण्डकरा (बीसमें, इकीसमेंरा) आवे, इग्यारे दण्डकमें (दस भवनपती, वाणव्यन्तर) जावे, सिद्धांमें मनुष्य गतसुं जावे, दण्डक आसरी एक इकीसमें दण्डकरा जावे, गयां पीछे आवे नहीं।

प्राण—नारकी, भवनपति, वाणव्यन्तर, जोतषी, विमाणीक, गर्भेज मनुष्य गर्भेज तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें प्राण पावे दसुंही, पांच स्थावरमें प्राण पावे च्यार, वेन्द्रीमें प्राण पावे छव, तेन्द्रीमें प्राण पावे सात, चोन्द्रीमें प्राण पावे आठ, असन्नी मनुष्यमें प्राण पावे आठ अधुरा, असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें प्राण पावे नव (मन टल्यो) गर्भेज मनुष्यमें तेरमें गुणठाणे प्राण पावे पांच (मन बल प्राण, वचन बल प्राण, काया बल प्राण, श्वासो श्वास बल प्राण, आउखो बल प्राण) चवदमें गुणठाणे प्राण पावे एक आउखो बल प्राण; सिद्धांमें प्राण पावे नहीं।

योग—नारकी, भवनपति, वाणव्यन्तर, जोतषी, विमाणीक, सन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्री, तीस अकर्मा भूमी, छपन अन्तर द्वीपामें जोग पावे तीनुंही; पांच स्थावर, असन्नी मनुष्यमें जोग पावे एक कायारो; तीन विकलेन्द्री असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीमें जोग पावे दोय (मन, वचन) सन्नी मनुष्य सजोगी होय तो जोग पावे तीन, अजोगी होय तो चवदमें गुणठाणे आसरो, सिद्धांमें जोग पावे नहीं।

* इति लघु दण्डक समास *

॥ अथ सामायिकके ३२ दोष लिख्यते ॥

१० मनके दोषः—

(१) विना अवसरसें तथा अविवेकसें सामायिक करे तो दोष।
(२) जश किर्तीके अर्थे सामायिक करे तो दोष।
(३) आपरे लाभ अर्थे सामायिक करे तो दोष।
(४) गर्भ (अहंकार) सहित सामायिक करे तो दोष।
(५) डरतो, भयसें धुजतो सामायिक करे तो दोष।
(६) संशय सहित, फळ प्रते संदेह रखकर सामायिक करे तो दोष।
(७) सामायिकमें नियाणो करे तो दोष।
(८) सामायिकमें गुस्सो, रीस, क्रोध करे तो दोष।
(९) सामायिकमें देवगुरु धर्म उपगरणकी अविनो, असातना करे तो दोष।
(१०) वेगारीरी परे सामायिक करे तो दोष।

१० वचनके दोषः—

(११) सामायिकमें झूठ बोले तो दोष।
(१२) सामायिकमें विना विचारी भाषा बोले तो दोष।
(१३) सामायिकमें गाल, गीत, ख्याल, इत्यादि संसार सम्बन्धी गाणो करे तो दोष।

(१४) सामायिकमें घणो जोरसें दुसरेकु दुखे ऐसा बोले तो दोष।
(१५) सामायिकमें कलह करे तो दोष।
(१६) सामायिकमें च्यार प्रकारकी विकथा करे तो दोष।
(१७) सामायिकमें हांसी, मशकरी, ठट्ठा करे तो दोष।
(१८) सामायिकमें गड़बड़ करके उन्तावलो उन्तावलो अशुद्ध बोले, पढे, गुणे तो दोष।
(१९) सामायिकमें अयोग्य वचन, अयुक्ति भाषा बोले तो दोष।
(२०) सामायिकमें अव्रतीको सत्कार, सन्मान देवे (अव्रतीने आवो, पधारो कहे) तो दोष।

१२ कायारा दोष:—

(२१) सामायिकमें अजोग आसणसें वेठे जैसे कि ठासणी मारीने, पांव पर पांव रखीने, एसा अभिमानका आसण वेठे तो दोष।
(२२) सामायिकमें अथिर आसण बैठे तो दोष।
(२३) सामायिकमें विषय सहित दृष्टी जोवे तो दोष।
(२४) सामायिकमें सावद्य तथा घरका काम करे तो दोष।
(२५) सामायिकमें बीना कारण ओटो लेकर तथा दुसरेको आधार लेकर वेठे तो दोष।
(२६) सामायिकमें अंग (शरीर) मोड़े तो दोष।
(२७) सामायिकमें शरीर बारबार संकोचे या पसारे तो दोष।

(२८) सामायिकमें हाथ पांवरा कड़का काढे (मोड़े) तो दोष।

(२९) सामायिकमें निन्द्रा लेवेतो दोष।

(३०) सामायिकमें शरीररो मैल उतारे तो दोष।

(३१) सामायिकमें बिना पुंज्या खाज खुणे या बिना पुंज्या हालेचाले तो दोष।

(३२) सामायिकमें बिना कारण दुसरेके पास व्यावच करावे तो दोष।

* इति सामायिकके बतीस दोष समास *

॥ दोहा ॥

निवासी बीकानेरका, जैन श्वेताम्बर जाण ।
ओसवंशमें सेठीया, हैं श्रावक भैरोदान ॥
बहु ग्रंथ संचे कियो, अल्प बुद्धि अनुसार ।
भूल चूक दृष्टि पड़े, लीजो विद्वन सुधार ॥

ॐ

शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

सेवंभंते सेवंभंते गौतम बोले सही श्री महावीरकी वचनमें कुछ सन्देह नहीं । जैसा लिखा हुआ देख्या, बांच्या या सुण्या वैसा ही अल्प बुद्धिके अनुसार लिखा , तत्व केवली गम्य अक्षर, पद, ह्रस्व, दीर्घ, कानो, मात, मिंडी, ओछो अधिको, आगो पाछो, अशुद्ध पणे लिख्यो होय अथवा कोई तरहकी छपानेमें ज्ञानादिक की विराधना कीनी होय, अजाणते कोई दोष लाग्यो हाय तो सकल श्री संघकी साखसे मन वचन काया करी मिच्छामि दुक्कड़ं मीय ।

* इति पहिला भाग समाप्तम् *

पत्र व्यवहार निम्नलिखित पतेसें करे—

श्रीजैन भाईयोंकी विद्यालय,

मोहल्ला—मरोटीयों का

मगरचन्द भैरोदान सेठियाके मकानमें

बीकानेर राजपूताना (मारवाड़)

THE JAIN NATIONAL SEMINARY

Sethia Building Mohola Marotian,

Bikaner-Rajputana (Marwar.)

पानमल उदैकर्ण सेठीया,

चिट्ठीका पता—पोष्ट बकस नं० २५५

तारका पता—"सेठिया" कलकत्ता।

P. O. SETHIA & BROS.

Letter Address:—"Post Box No. 255" Calcutta.

Tele. Address:—"SETHIA" CALCUTTA.

श्रीवीतरागाय नमः ॥

ज्ञान थोकड़ा संग्रह ।

[illegible] हुआ।

संग्रह कर्ता :—

धर्मचन्द्रजी तत्पुत्र भैरोदान सेठिया,

मोहल्ला मरोटियां की गुवाड़,

बीकानेर (राजपुताना)

BHAIRODAN SETHIA,

MOHOLLA MAROTIAN,

Bikaner Rajputana.

प्रथमावृत्ति } वीर सम्वत् २४४७ { १००० प्रत
विक्रम सम्वत् १९७७
ई० सन् १९२१

दोहा

केवल ज्ञानीको सदा, वन्दु ये कर जोड़ ॥
गुरु मुख से धारण करो, अपनी ज़िद को छोड़ ॥ १ ॥
जिन वचन तह मेवसत्य, समभाव नहीं ताण ॥
जतना से वांचो सही, येही प्रभू की वाण ॥ २ ॥

। सुचना ॥

ये पुस्तक जतना से रक्खे।

उघाड़े मुंह तथा चिराग के चानणे नहीं वांचे पद, अक्षर, ओछो, अधिको, आगो, पाछो, तथा कानो मात, मिंडी, ह्रस्व, दीर्घ अशुद्ध त्रुटी भाषामें लिख्यो हुवो विद्वान कृपा कर शुधार लेवें प्रसिद्ध कर्ताको येही नम्र विनन्ति है।
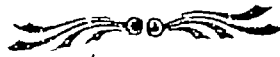
अनुक्रमणिका ।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	"	तो	को
६	१६	वैसाणिक	वैमाणिक
१८	८	अभिग्रहिया	आरंभिया
२८	१५	अवज्जवसिया	अपज्जवसिया
२९	१	लादे	लाधे
२९	३	"	"
"	४	"	"
"	५	"	"
"	"	गुणास्थान	गुणस्थान
"	६	लादे	लाधे
३२	८	गुणठाणा	गुणठाणेवालो
३२	६	वालो दुसरा	दुसरा
३२	९	समुद्घता	समुद्घात
४३	१९	वाधे	वांधे
"	२०	"	"
४४	१३	"	"
४५	१०	अनन्तनु वंधी	अनन्तानु वंधी
४६	१८	वाधे	वांधे
"	१९	"	"
५३	हेडिंग	कर्म प्रकृति	गतागत
५५	हेडिंग	" "	"
५७	हेडिंग	" "	सुबोल वगेरह

॥ श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

(श्लोक)

अर्हंतो भगवन्त इन्द्र महिताः सिद्धाश्च सिद्धिः स्थिता ।

आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायिकाः ॥

श्रीः सिद्धान्त सुपाठिकाः मुनिवरा रत्नत्रया राधिकाः ।

पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनम् कुर्वंतुनो मङ्गलम् ॥ १ ॥

॥ थोकड़ा संग्रह ॥

॥ गुणस्थान द्वार ॥

चवदे गुणस्थान पर २८ द्वार चले वो कहते हैं ।

२८ द्वारका नाम १ नाम २ लक्षण ३ स्थिति ४ क्रिया ५ सत्ता ६ बंध ७ उदय ८ उदीरणा ९ निर्जरा १० भाव ११ कारण १२ परिस्सह १३ आत्मा १४ जीवका भेद १५ गुणस्थान १६ जोग १७ उपयोग १८ लेश्या १९ हेतु २० मार्गणा २१ ध्यान २२ दण्डक २३ जीवाजोन २४ निमित्त २५ चारित्र २६ समकित २७ आन्तरा २८ अल्पाबौत (अल्पाबहुत्व)

१ नामद्वार चवदे गुणस्थान का नाम १ मिथ्यात्व २ सास्वादान ३ मिश्र ४ अविरति सम्यक्त्वदृष्टि ५ देशविरति ६ प्रमत्त

(प्रमादी) ७ अप्रमत्त संजति (अप्रमादी) ८ नियट्टिबादर (अपूर्व कर्ण) ९ अनियट्टि बादर १० सुक्ष्मसम्पराय ११ उपशांतमोहणी १२ क्षिणमोहणी १३ सजोगी केवली १४ अजोगी केवली नामद्वार समाप्त ।

२ लक्षण द्वार पहेला मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण कहते हैं श्री जिनेश्वर भगवानकी वाणी ओछि अधिक विपरीत सर्दहे परुपे श्रीजैन मार्गपर दुष्ट (खोटा) परिणाम राखे हिंसा में धर्म परुपे सर्दहे सुगुरु सुदेव सुधर्म सुशास्त्र को खोटा (झूठा) माने कुगुरु कुदेव कुधर्म कुशास्त्र को सच्चा माने उसको पहिला गुण-स्थानको मालिक कहिये । तेवारे श्रीगौतम स्वामीजी महाराज हाथ जोड़ी मान मोड़ी वंदणा नमस्कार करी श्री भगवन्तने पूछता हुआ हो स्वामीनाथ ! पहेला गुणस्थान वालाके कई गुण निपन्यो ? तिवारे श्रीभगवन्ते कह्यु, जीवरूप दड़ी ने कर्मरूप गेडीओ करी ४ गति २४ दण्डक ८४ लाख जीवा जोनि मांहि बारंबार परिभ्रमण करे (कठेहीशाता को ठिकाणो पावे नहीं) संसार को पार पावे नहीं ।

दुसरा सास्वादान गुणस्थान का लक्षण कहते हैं इस पर दृष्टान्त ३ जैसे कोई मनुष्य खीरखांड़को भोजन कियो उस समान समकित और पीछो वमन कियो उस समान मिथ्यात्व लारा से (पाछासे) गुल चट्यो स्वाद बाकी रयो उस समान सास्वादान । जैसे घंटा को शब्द निकलते गहेर गम्भीर उस समान समकित और लारासे रणकार शब्द रह गया उस समान सास्वादान । जैसे

जीवरूप आंबो प्रणाम रूप डाला समकितरूप फल मोहरूप वायरा से परणामरूप डाल परसे समकितरूप फल त्रुट्या मिथ्यात्वरूप जमीन पर पड्या नही परन्तु बचमे है वहांतक सास्वादान। तिवारे श्री गौतम स्वामी जी महाराज हाथ जोडी मान मोडी वंदणा नमस्कार करी श्रीभगवन्त प्रत्ये पूछता हुआ हो स्वामीनाथ! उस जीवको क्या गुण निपन्यो? तिवारे श्रीभगवन्त ने कहा के जैसे किसी मनुष्य के क्रोड रुपीया को देणो माथे है उसमें से ९९९९९९९॥ नन्याणु लाख नन्याणु हजार नो सो साडा नन्याणु रुपीया तो चुका दिया ॥) आठ आना देना वाकी रहा उस माफिक अर्धपुद्गल संसार भोगणा वाकी रहा।

तीसरा मिश्र गुणस्थान का लक्षण कहते हैं जैसे वसन्तपुर नामा नग्रके वहार कोई मोटा गुणधारी मुनिराज पधार्या श्रावक वंदवाने गया रास्तामें दुकान पर मिश्रदृष्टी वाला सेठजी बैठा हो जिन्होंने पुछा भाई आप कहां जाते हैं उन्होंने जवाव दिया कि भाई मोटा मुनिराज पदार्या है सो वन्दवाने जावां हां तव सेठजीने कहा मैं भी आऊं तव उनके मिथ्यात्वी गुमास्ताने कहा के आप कहां जाते हैं परदेशसे चिठ्ठीया आई है सो जवाव भुगताता है ऐसा सुनकर सेठजी काममें लाग गया फिर श्रावक साधुजीने वान्दकर पाछा उधर निकल्या तव मिश्र गुणस्थान वाला सेठजी बोल्या भाई तुम तो वन्द आए मे तो अव जाता हुं ऐसा कहकर वन्दवाने गया सो वहांसे तो मुनिराज विहार कर गया पिछा फिरा उस वक्त बाबा; सन्यासी, जोगी, वगेरा मिला तव

उन्होंने उनको बांधा और जानाके मारे तो वोभी सरीखा और ये भी सरीखा जिन मार्गने आछो समझे और अन्य मार्गने भी आछो समझे निर्णो करे नहीं॥ श्रीखंड (शीखण) को भोजन कुछ खाटो कुछ मिठो खाटा समान मिथ्यात्व मिठा समान समकित। तिवारे श्रीगौतम स्वामीजी महाराज हाथ जोडी मान मोडी वंदणा नमस्कार करी श्री भगवन्त प्रत्ये पूछता हुवा हो भगवंत! तीसरा गुणस्थान वालाके कई गुण निपज्यो? तिवारे भगवंत ने कहा के अनादि कालको उलटो थो सो सुलटो हुवो कृष्णपक्षो को शुक्लपक्षी हुवो उड़द की राश को मोगर की राश हुवो समकित के सन्मुख हुवो परन्तु पग भरवा समर्थ नहीं देशऊणो अर्द्धपुद्गल परावर्त संसार में परिभ्रमण करना बाकी रहा जिस तरह से किसी मनुष्य के एक क्रोड़ को देणो माथे हे उसमे से नन्याणु लाख नन्याणु हजार नो सो साडा नन्याणु रुप्या को देणो तो चुका दियो सिर्फ॥) आठ आना देणा रया उसी माफिक संसार में परिभ्रमण करणो बाकी रयो।

चोथो अविरति सम्यक्त्वदृष्टि गुणस्थान का लक्षण कहते हैं सात प्रकृति को क्षयोपसम करे उस वक्त जीव चोथे गुणस्थान आवे सात प्रकृति का नाम अनन्तानुबंधीको क्रोध, मान, माया, लोभ समकित मोहनी मिश्र मोहनी मिथ्यात्व मोहनी। मिथ्यात्व मोहनी किसको कहते हैं? कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुशास्त्र की आसता रक्खे। मिश्र मोहनी किसको कहते हैं? सव्वेदेवा (सब देव) सव्वे गुरुवा (सब गुरु) सव्वे धम्मा (सब धर्म)

सव्वे सासतरा (सव शास्त्र) माने समकित मोहनी किस को कहते हैं ? गुरु ऊपर स्नेहभाव रक्खे जैसे गौतम स्वामीने महावीर प्रभुपर रक्खा अथवा सुक्ष्म पदार्थ मे शंका वेदे (जाणे) सात प्रकृति का भांगा नव पहेले भांगे चार प्रकृतिको क्षपावे तीन को उपसमावे दुसरे भांगे पाच प्रकृति को क्षपावे दोको उपसमावे तीसरे भांगे छव प्रकृति को क्षपावे एकको उपसमावे इन तीन ही भांगे को क्षयोपसम समकित कहेना चोथे भांगे चार प्रकृति को क्षपावे दो को उपसमावे एक को वेदे पांचवें भांगे पांच को क्षपावे एक को उपसमावे एक को वेदे इन दो भांगोंका क्षयोपसमवेदक समकित कहते हैं छठा भांगामें छे प्रकृति को क्षपावे एक को वेदे उसको क्षायकवेदक समकित कहते हैं। सातमें भांगे छव प्रकृतिको उपसमावे एक को वेदे उसको उपसमवेदक समकित कहते हैं। आठमें भांगे सात प्रकृति को उपसमावे उसको उपसम समकित कहते हैं। नवमें भांगे सात प्रकृति को क्षपावे उसको क्षायक समकित कहते हैं। चोथे गुणस्थान आया हुवा जीव जीवादिक नो पदार्थका जानकार होवे । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का जाणकार होवे नवकारसी आदि वरसी तप जाणे, सर्दहे, परुपे, परन्तु कर सके नहीं क्योंकि अविरति सम्यक्त्वदृष्टि है। तिवारे श्री गौतम स्वामीजी महाराज हाथ जोड़ी मान मोड़ी वंदणा नमस्कार करी श्री भगवंत प्रत्ये पुछता हुआ हो स्वामीनाथ ! उस जीवको क्या गुण हुवा ? तिवारे श्रीभगवंतने कहा। हो गौतम पूर्वे आयुष्यको बंध नहीं पड्यो होवे तो सात बोलको बंध नहीं पड़े १

नारकी २ तिर्यंच ३ भवनपति ४ वाणव्यन्तर ५ जोतिषी ६ स्त्रीवेद ७ नपुंसकवेद पूर्व बन्द पड़्यो होवे तो भोगवे जैसे सेणक महाराज कृष्ण महाराज वत्।

पांचवा देशविरति गुणस्थान का लक्षण कहते हैं अग्यारा प्रकृति तो क्षयोपसमावे तब जीव पांचवे गुणस्थान आवे सात प्रकृति वो जो पूर्व कहि वो और ४ अप्रत्याख्यानीको १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ये अग्यारा। पांचवें गुणस्थान आया हुवा जीवादिक नो पदार्थ का जाणकार होवे नवकारसी आदि दईने वरसी तप जाणे सर्दहे परुपे शक्ति मुजब पच्चखाण करे (एक पच्चखान से लेकर श्रावक का बारवृत्त अग्यारा श्रावक की पडिमा आदरे जाव सलेषणा सुधी अनसन क्रिया आराधे) तिवारे श्री गौतम स्वामी जी महाराज हाथ जोड़ी मान मोड़ी वंदना नमस्कार करी श्री भगवंत प्रत्ये पूछता हुवा हो भगवन्त! उस जीव को क्या गुण हुवा? हो गौतम! जघन्य त्रीजेभव मोक्षमें जावे उत्कृष्टा सात आठ याने पनरा भवकर मोक्षमें जावे नो अतिक्रमे (उससे ज्यादा नहीं करे पनरा भवमें (सात वैमाणिक देवताका और आठ मनुष्य का) एवं पनरा।

छठा प्रमत्त संजति (प्रमादी) गुणस्थान का लक्षण कहते हैं पनरा प्रकृति को क्षयोपसम करे तिवारे जीव छट्ठे गुणस्थान आवे अग्यारा प्रकृति तो पूर्वे कही वो और चार प्रत्याख्यानी को क्रोध, मान, माया, लोभ, जीवादिक नो पदार्थ का जाणकार होवे द्रव्य क्षेत्रकाल भावका जाणकार होवे नवकारसी आदि वरसी

तप जाणै सर्दहे परुपे फरसे (करे) तिवारे श्री गौतम स्वामीजी महाराज हाथ जोड़ी मान मोड़ी वंदणा नमस्कार करी श्रीभगवंत प्रत्ये पूछता हुवा हो स्वामीनाथ ! उस जीवके कई गुण निपन्यो ? तिवारे श्रीभगवन्त ने कहा हो गौतम ज० उसी भव मोक्षमें जावे उ० सात आट भवमे मोक्ष जावे।

सातमो अप्रमत्त संजति (अप्रमादो) गुणस्थानका लक्षण कहते हैं। पांच प्रमाद छाडे उस वल्त जीव सातवें गुणस्थान आवे पांच प्रमादका नाम १ मद २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा ५ विकथा जीवादिक नो पदार्थका जाणकार होवे द्रव्य क्षेत्रकाल भावका जानकार होवे नवकारसी आदि वरली तप जाणे सर्दहे परुपे फरसे (करे) तिवारे श्रीगौतम स्वामीजी महाराज हाथ जोडी मान मोड़ी वंदणा नमस्कार करी थ्री भगवन्त प्रत्ये पूछता हुवा हो स्वामीनाथ ! उस जीवको कई गुण हुवो ! तिवारे श्री भगवन्तने कहा हो गौतम ज० उसी भवमें मध्यम तीसरे भव उ० सात आठ भवमें मोक्ष तावे।

आठमा नियट्टि बादर गुणस्थान का लक्षण कहते हैं अपूर्व कर्ण शुक्ल ध्यान आवे तव जीव आठमें गुणस्थान आवे अपूर्व कर्ण (ऐसा करण पहेले कभी नहीं आया) वहाँ श्रेणीकरे दो १ उपसम श्रेणी २ क्षपक श्रेणी उपसम (पडवाई) क्षपक (अपड़वाई) १ उपसम श्रेणीको लक्षण कहते हैं। एकीस प्रकृति को उपसमावे जव आठमा गुणस्थानसे नवमें गुणस्थान जावे पनरा तो पूर्वे कही वो और छें हास्यादिक १ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय

५ शोक ६ दुगंच्छा ॥ सतावीस प्रकृति को उपसमावे जब जीव दसमें गुणस्थान आवे अकवीस तो पूर्व कही वो और १ स्त्रीवेद २ पुरुषवेद ३ नपुंसकवेद और संजवलन (संजल) को क्रोध, मान, माया, ॥ अठावीस प्रकृति को उपसमावे जब जीव अग्यारमें गुणस्थान आवे सतावीस तो पूर्व कही वो और एक संजल को लोभ, काल करे तो अनुत्तरविमाण मेंजावे संजल को लोभ उपसम्यारो उदय हुवे तो पाछो थड़हड़े (पाछो पड़े) भारी अग्नि को दृष्टान्त कष्ट भार मुंके झल पट उठे कोठड़ी में कोठडी जाव कोठडी मे कोठडी आगे जानेका रस्ता नहीं मिले तब अग्यारमा गुणस्थानसे पाछा पड़े दसमें आवे नवमें आवे जाव पहेले आवे।

क्षपक श्रेणी का लक्षण कहते हैं, इकवीस प्रकृति को क्षपावे तब जीव नवमें गुणस्थान आवे सतावीस प्रकृति को क्षपावे तब जीव दसमें गुणस्थान आवे अठावीस प्रकृति को क्षपावे तब जीव अग्यारमों गुणस्थान उलघी वारमें गुणस्थान आवे छेला समयमें शेषका (वाकी) ३ घन घातिया कर्म (ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय अतराय) क्षयकरे तिवारे जीव तेरमें गुणस्थान आवे तेरमें गुणस्थान में दस बोलकी प्राप्ति होवे १ अनन्ति दाना लब्धी २ अनन्ति लामा लब्धी ३ अनन्ति भोगा लब्धी ४ अनन्ति उपभोगा लब्धी ५ अनन्ति वीर्य लब्धी ६ केवल ज्ञान ७ केवल दर्शन ८ क्षायक समकित ९ शुक्ल ध्यान १० यथाख्यात चारित्र ॥ यहांसे मन वचन काया को जोग रुंधकर चवदमें गुणस्थान आवे चवदमें गुणस्थान चार अघातिया कर्म (वेदनी, आयुष्य, नाम, गौत्र)

क्षेपा कर अफुसमाणगति (अफर्शतोथको) करीने एक समय को अविग्रह करीने औदारिक तेजस कारमाण शरीर छोडीने पांच लघुअक्षर की स्थिति कर सिद्ध गतिमें प्राप्त होवे (अ, इ, उ, ऋ, ऌ,) जहां जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, गुरु नहीं, चेला नहीं, भूख नहीं प्यास नहीं, जोत में जोत वीराजमान अनन्ता सुखामें तल्लीन अनन्तो ज्ञान, अनन्तो दर्शन, अनन्तो क्षायक समकित निराबाध अटल अवगाहना अमूर्ति अगुरुलघु अनन्त वीर्य सहित विराजमान होवे ।

तीसरा स्थितिद्वार (कर्मोंमें आत्माके साथ रहनेकी मियाद-को कहते हैं) का विस्तार चालेवो कहते हैं पहेले गुणस्थानमें भांगा पावे तीन १ अणाइया अपज्जवस्सिया (अनादि अनन्त आदभी नहीं और अन्त भी नहीं अभवी आश्री) २ अणाइया सपज्जव-स्सिया (अनादि सान्त आदि नहीं, अन्त है भवी जीव आश्री), ३ साइया सपज्जवसिया (सादि सांत आदि भी है और अन्त भी है पडवाई समदृष्टी आश्री) तीसरा भांगा की स्थिति ज० अन्तर मोहरत की उ० देशऊणा अर्ध पुद्गलिक कालकी दूसरा गुणस्थान की स्थिति ज० एक समयकी उ० छेव आवलिका की (एक मोहरतमें १६७७७२१६ एक क्रोड़ सड़सठ लाख सित्यन्तर हजार दो सो सोला आवलिका होती है) तीसरा वा बारमा गुणस्थानकी स्थिति ज० उ० अन्तर महोरतकी चोथा गुणस्थान की स्थिति ज० अन्तर

महोरत की उ० छासट सागर झाझेरो पांचवां व तेरवां गुणस्थान की स्थिति ज० अन्तर मोहरतकी उ० देश उणा क्रोड़ पूर्व की छट्ठा गुणस्थान की स्थिति ज० एक समय की उ० देश उणा क्रोड़ पूर्व की सातवां आठवां, नवां, दसवां, अग्यारवां गुणस्थान की स्थिति ज० एक समय की उ० अन्तर मोहरतकी चवदवां गुणस्थान की स्थिति पांच लघु अक्षर की (अ, इ, उ, ऋ, ऌ,)।

चोथा क्रियाद्वार पच्चीस क्रियाका नाम तथा भावार्थ।

१ काइया क्रियाका २ भेद—अजतनासे प्रवर्तावे घणा कालसे काया वोसराया विना पाछला रहा हुवा कायाका पुद्गल उसकी क्रिया लागे।

१ अणुवरय काइया—पापसे नहीं निवर्तने से लागे।

२ दुपउत्त काइया—इन्द्रीयोंके इष्ट अनिष्ट विषय से नहीं निवर्तने से लागे।

२ आहिगरणीया (अधिकरण)-क्रियाका दो भेद।

१ संजोजनाहिगरणीया—खड्ग मूशल हथियार कसि कुदाला इत्यादि संग्रह करे उनकी क्रिया लागे।

२ निव्वत्तणाहि गरणीया—शस्त्र हथियार वगेरा नया बनावे, तथा मरम्मत करावे उनकी क्रिया लागे।

३ पाउसिया क्रियाका दो भेद।

१ जीव पाउसिया —जीवपर द्वेष करनेसे लागे तथा मत्सर प्रणाम राखे उसको क्रिया लागे।

२ अजीव पाउसिया—अजीवपर द्वेष करे तथा मत्सर प्रणाम राखे उसकी क्रिया लागे।

४ परितावणियां क्रियाका दो भेद।

१ सहत्थ परितावणीया—आप तपे तथा दूसरा ने तपावे उसकी क्रिया लागे।

२ परहत्थ परितावणीया—दूसरा का हाथसे. आपने तथा दूसराने तपावे (परितापणा उपजावे) उसकी क्रिया लागे।

५ पाणाइ वाइया क्रिया का दो भेद—जीवरो हिंसा करे।

१ सहत्थ पाणाइ वाईयां —खुद के हाथ से खुद का तथा दूसरे का प्राण हरे उसको क्रिया लागे।

२ परहत्थ पाणाइ वाइया—दूसरे के हाथसे खुदका तथा दूसरे का प्राण हरावे उसकी क्रिया लागे।

६ अपच्चखाणिया का दो भेद—व्रत पच्चखाण किंचित मात्र पण नहीं करे चोथे गुणस्थान तक लागे।

१ जीव अपच्चखाणिया —

२ अजीव अपच्चखाणिया—

७ आरम्भिया क्रियाका दो भेद—खेती, बाग, बगीचा, मील, कल, दूकान, मकान, वगेरा को आरम्भ वधावे उसकी क्रिया लागे ।

१ जीव आरम्भिया—जीवको आरम्भ वधावे ।

२ अजीव आरम्भिया—अजीवको आरम्भ वधावे ।

८ परिग्रहिया क्रियाका दो भेद ।

१ जीव परिग्रहिया—घोड़ा, उंठ, वेल, हाथी, दास, दासी, वगेरा को परिग्रह वधावे उसकी क्रिया लागे ।

२ अजीव परिग्रहिया—अन्न, आभूषण, कपड़ा, मकान वगेराको परिग्रह वधावे उसकी क्रिया लागे ।

९ माया वत्तियाका दो भेद ।

१ आय भाव वंकणया—अपनी आत्माके वास्ते ठगाई करे व अपनी आत्मा का खोटा भाव छिपावे खोटा आचरण आचरे खोटा लेख लिखे ।

२ परभाव वंकणया—परायाके वास्ते ठगाई करे, करावे खोटा आचरण करे तथा करावे खोटा लेख लिखे तथा लिखावे ।

१०. मिथ्या दंसण वत्तिया का दो भेद

१ उणा इरित मिथ्यादंसण—ओछा, अधिका सर्दहे तथा परूपे उसकी क्रिया लागे।

२ तव्वइरित मिथ्यादंसण—विपरीत सर्दहे तथा परूपे उसको क्रिया लागे।

११ दिट्ठिया क्रियाका दो भेद देखनेसे राग द्वेष पैदा होवे।

१ जीव दिट्ठिया—घोड़ा, हाथी, वगेरा ने देख कर सरावे या विसरावे तो क्रिया लागे।

२ अजीव दिट्ठिया—चित्रामादि आभूषण देख कर सरावे या विसरावे तो क्रिया लागे।

१२. पुट्ठिया क्रिया का दो भेद राग द्वेष लाकर हाथ फेरे तथा खोटा भावसे प्रश्न करे (सवाल करे)

१ जीव पुट्ठिया।

२ अजीव पुट्ठिया।

१३ पाडुच्चिया क्रियाका दो भेद—बाहिर वस्तुके निमित्त से लागे जैसे, ओघा, पातरा, घर, हाट, इत्यादिकसे अथवा सामान्यतरे सुं राग द्वेष करने से तथा दूसरे की सम्पदा देखकर इर्षा करनेसे।

१ जीव पाडुच्चिया—जीव को खोटो वंछे तथा उसपर इर्षा करे उसकी क्रिया लागे।

२ अजीव पाडुच्चिया—द्वेष बुद्धिसे अजीवपर खोटी चिन्तवना करे उसको क्रिया लागे।

१४ सामंतोवणीया क्रियाका दो भेद—अपना भला पदार्थ देखकर लोगां आगे प्रशंसा करे याने पोमावतो फिरे तथा अपनी वस्तुने दुसरो सरावे तो राजी हुवे तथा विसरावे तो विराजी हुवे तथा नाटक, मेला, तमासा, मनुष्यको फांसी देता (चोर मारता) देखे उसको क्रिया लागे।

१ जीव सामंतो वणीया—

२ अजीव सामंतो वणीया—

१५ साहत्थिया क्रियाका दो भेद ।

१ जीव साहत्थिया—जीवने खुदरे हाथ से पकड़ कर हणे (मारे) उसकी क्रिया लागे।

२ अजीव साहत्थिया—तलवार, बन्दूक, आदि पकड़ कर हणे (मारे) उसकी क्रिया लागे।

१६ नेसत्थिया क्रिया उसका दो भेद ।

१ जीव नेसत्थिया—जीव में जीव नाखनेसे जैसे वनस्पतिमें पाणी फेंके अथवा गुरु चेलाने दूसरा सत्ता के पास व्यावच में भेजे या पुत्रने पिता दुसरी जगह भेजे या निकाल दे (वियोगसे जीव खेद पावे याने दुःख पावे) उसकी क्रिया लागे।

२ अजीव नेसत्थिया—पत्थर, तीर, अनुप इत्यादि फेंकनासे क्रिया लागे।

१७—आण वणिया क्रियाका दो भेद—जीव अजीव वस्तु कोईरे पाससे मंगावासे देवे या नहीं देवे उसपर रागद्वेष उपजे जिसकी क्रिया लागे।

१ जीव आणवणिया।

२ अजीव आणवणिया।

१८ वेदारणीया का दो भेद—जीव अजीव ने काटे तथा लाणी लेजाणेकी आज्ञा देवे तथा उनका अछ्छागुण करके वेचे तथा हिंसाकारक दलाली करे।

१ जीव वेदारणिया।

२ अजीव वेदारणिया—जैसे सुपारीका दो टुकड़ा करे।

१९ अणाभोग वत्तियाका दो भेद—उपयोग विना शुन्य पणे तथा अज्ञानतासे लागे।

१ अणा उत्तआयणता—असावधान पणे से वस्त्रादिक ने ग्रहण करे वा पेरे उसकी क्रिया लागे।

२ अणाउत्त पमज्जणता—उपयोग विना पात्रादिक पुंजे उसकी क्रिया लागे।

२० अणवकंख वितियाका दो भेद—इहलोक व परलोकसे विरुद्ध काम करे। इहलोकमें निंदाहुवे परलोक विगाड़े वैसा काम करे।

१ आय शरीर अणवकंखवत्तिया—खुदके शरीरसे पाप लागे वैसा काम करे अपघात करे उसकी क्रिया लागे।

२ पर शरीर अणवकंख वत्तिया—दूसराका शरीरसे पाप लागे वैसा काम करे परघात करे उसकी क्रिया लागे।

२१ पेज वत्तियाका दो भेद।

१ माया वत्तिया—कपटाइसे राग धरे उसकी क्रिया लागे।

२ लोभ वत्तिया—लोभसे राग धरे उसकी क्रिया लागे।

२२ दोष वत्तियाका दो भेद।

१ कोहे—क्रोधसे क्रिया लागे।

२ माणे—मानसे क्रिया लागे।

२३ पउग्ग क्रियाका तीन भेद—मन वचन कायाका जोगसे कर्म ग्रहण करे याने शुभ अशुभ प्रवर्तावे।

१ मण पउग्ग।

२ वय पउग्ग।

३ काया पउग्ग।

२४ सामुदाणिया क्रियाका तीन भेद—प्रयोग क्रिया द्वारा ग्रहण किया कर्म, सामुदाणीसे खींच्या उन कर्मा का भेद च्यार तरह से करे १ प्रकृति पणे २ स्थिति पणे ३ अनुभाग पणे ४ प्रदेश पणे दृष्टान्त जैसे मेदाको आलोय कर लोघो वणायो जव तो प्रयोग क्रिया लागे और पीछे लोधाने लेकर पेठो, निमकी, खाजा इत्यादिक नाना प्रकार पणे वणाया जव सामुदाणी क्रिया लागे।

१ अणन्तर सामुदाणिया—कालमें छेटी पड़े।

२ परंपर सामुदाणिया—कालमें छेटी नहीं पड़े।

३ तदुभय सामुदाणिया—कालमें छेटी पड जावे और कालमें छेटो नहीं पड़े दोनों साथ।

(पहेले समे भेद करे तव अनन्तर क्रिया दुजे समे तीजे समे भेद करे तव परंपर क्रिया।

२५ इरिया वहिया क्रिया—वीतरागो तथा केवली ने पहेले

समे में लागे दूजे समे वेदे तीजे
समे निर्भरे।

(नोट)—इरिया वहिया क्रिया शुभ बाकी चोवीस क्रिया
शुभ अशुभ दोनों ही ।

पहिले तीसरे गुणस्थानमें क्रिया पावे चोवीस एक इरिया वहिया टली दूसरे, चोथे गुणस्थानमें क्रिया पावे तेवीस, मिथ्यात्व तथा इरिया वहिया टली, पांचवें गुणस्थानमें क्रिया पावे बावीस, तेवीसमेंसे अवृत्त टली छट्ठे में क्रिया पावे दो अभिग्रहिया, मायावत्तिया, सातवें, आठवें, नवें, दसवें, गुणस्थानमें क्रिया पावे एक मायावत्तिया, अग्यारवे, बारवे, गुणस्थानमें क्रिया पावे एक इरिया वहिया चवदवां गुणस्थानमें क्रिया नहीं।

पांचवो सत्ताद्वार पहेला गुणस्थानसे जाव अग्यारमा गुणस्थान तक आठ ही कर्मकी सत्ता है। बारमें गुणस्थानमें सात कर्मकी सत्ता है एक मोहनी कर्म वर्ज्यो तेरमां, चवदमां गुणस्थानमें च्यार अघातिया कर्मकी सत्ता है (वेदनी, आयुष, नाम, गौत्र)।

छट्ठो बंधद्वार पहेला गुणस्थानसे सातमा गुणस्थान तक तीसरा गुणस्थान वर्ज कर सात तथा आठ कर्मोको बंध सात कर्मको बंध होवे जब आयुष्य कर्म वर्ज्यो तीसरा आठमां, नवमा गुणस्थान में सात कर्मोको बंध आयुष्य वर्ज्यो दसमां गुणस्थान में छे कर्मोको बंध मोहकर्म व आयुष्य कर्म वर्ज्या अग्यारमा, बारमा, तेरमा गुणस्थान में एक साता वेदनी को बंध चवदमा गुणस्थानमें बंध नथी (अबंध)।

सातमो उदयद्वार पहेला गुणस्थान से दसमा गुणस्थान तक आठ ही कर्मको उदय अग्यारमे, वारमें गुणस्थानमें सात कर्मको उदय एक मोह कर्म वर्ज्यो तेरमें, चवदमें गुणास्थानमें च्यार अघातिया कर्मको उदय (उदो)।

आठमो उदेरणा द्वार पहेला से छट्ठा गुणस्थान तक तीसरो वर्जकर सात तथा आठ कर्मकी उदीरणा, सात कर्म होवे तो आयुष्य वर्ज्यो तीसरा गुस्थानमे आठही कर्मकी उदीरणा, सातमा, आठमा, नवमा गुणस्थानमें छव कर्मांकी उदीरणा मोहनी कर्म व आयुष्य कर्म वर्ज्यो दसमा गुणस्थानमें छव कर्मको तथा पांच कर्मकी उदीरणा, छव तो पूर्ववत पांच होवे तो वेदनी, मोहनी, आयुष्य वर्ज्या अग्यारमा गुणस्थानमें पांच कर्मकी उदीरणा वारमा गुणस्थानमें पांच कर्मको तथा दोयकी पांच होवे तो पूर्व माफिक और दोय कर्म की, होवे तो नामकर्म गोत्रकर्म, तेरमा गुणस्थानमें दोयकी तथा नथी दो होवे तो पूर्व माफिक चवदमा गुणस्थानमें उदीरणा नहीं।

नवमो निर्भरा द्वार पहेला गुणस्थान से दसमा गुणस्थानतक आठ ही कर्मकी निर्भरा अग्यारमें वारमें गुणस्थानमें सात कर्मकी निर्भरा मोहनी कर्म वर्ज्यो। तेरमा चवदमा गुणस्थान में चार अघातिया कर्मकी निर्झरा।

दसमो भावद्वार पांच भावका नाम १ उदयभाव १ उपसमभाव ३ क्षायक भाव ४ क्षयोपसम भाव ५ प्रणामिक भाव पहिले दूसरे तीसरे गुणस्थानमें भाव पावे तीन उदय, क्षयोपसम, प्रणामिक चोथे पांचमें छट्ठे सातमें और आठमेसे अग्यारमें गुणस्थान

अन्तराय कर्मके उदयसे परिशय उत्पन्न होवे एक पनरमो बावीस परिशयका नाम १ क्षुधा २ तृषा ३ शीत ४ उष्ण ५ डांसमंस ६ अचेल ७ अरति ८ स्त्री (इत्थी) ९ चरिया १० निसिया ११ सज्जा १२ आक्रोस १३ वध १४ यांचना १५ अलाभ १६ रोग १७ तृणफास १८ जल मेल १९ सत्कार पुरुषकार (सक्कार पुकार) २० पन्ना २१ अज्ञान २२ दर्शन पहेला गुणस्थानसे नवमा गुणस्थान तक परिशय उत्पन्न होवे बावीस जिसमेंसे बीस वेदे, दोय नहीं वेदे शीत वेदे तो उष्ण नहीं और उष्ण वेदे तो शीत नहीं चरिया वेदे तो निसिया नहीं निसिया वेदे तो चरिया नहीं, दसमा, अग्यारमा, बारमा गुणस्थानमें परिशय उत्पन्न होवे चवदा (आठ मोहकर्मका वर्जकर) चवदामेंसे बारा वेदे दोय नहीं वेदे शीतवेदे तो उष्ण नही उष्ण वेदे तो शीत नही; चरिया वेदे तो सज्जा नहीं; सज्जा वेदे तो चरिया नहीं, तेरमा, चवदमा गुणस्थानमें परिशय उत्पन्न होवे अग्यारा (वेदनी कर्मका) जिसमेंसे नव वेदे दोय नहीं वेदे शीत वेदे तो उष्ण नहीं, उष्ण वेदे तो शीत नहीं, चरिया वेदे तो सज्जा नहीं, सज्जा वेदे तो चरिया नहीं ।

तेरमो आत्माद्वार १ द्रव्यआत्मा २ कषायआत्मा ३ योगआत्मा ४ उपयोगआत्मा, ५ ज्ञान आत्मा, ६ दर्शनआत्मा ७ चारित्रआत्मा, ८ वीर्यआत्मा, पहेलासे तीसरा गुणस्थानतक आत्मा पावे छव ज्ञान आ० चारित्र आ० वर्जी, चोथा पांचमा गुणस्थानमें आत्मा पावे सात चारित्र आ० वर्जी छट्टासे दसमा गुणस्थान तक आत्मा पावे आठ ही, अग्यारमासे तेरमा गुणस्थान तक आत्मा पावे सात

कषाय वर्जी, चवदमा गुणस्थानमें आत्मा पावे छव कषाय आ० जोग आ० वर्जी, सिद्ध भगवानमें आत्मा पावे च्यार ज्ञान, दर्शन, द्रव्य, उपयोग ।

चवदमो जीवका भेदद्वार पहेला गुणस्थानमें जीवका भेद चवदा पावे दूसरा गुणस्थानमें जीवका भेद पावे छव बेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रीका अपर्याप्ता और सन्नी पञ्चेन्द्री का पर्याप्ता और अपर्याप्ता, तीसरा गुस्थानमें जीवको भेद एक सन्नीको पर्याप्तो, चोथा गुणस्थानमें जीवका भेद पावे दोय सन्नीका पर्याप्ता और अपर्याप्ता, पांचमासे जाव चवदमा गुणस्थान तक जीवरो भेद एक सन्नीको पर्याप्तो ।

पनरमो गुणस्थान द्वार अपने अपने गुणस्थाने अपने अपने गुण करके संयुक्त, पहेला गुणस्थानसे चोथा गुणस्थान तक बोल पावे आठ १ असञ्जति २ अपच्चखाणी ३ अवृत्ति ४ असंबुडा ५ अपिण्डिया ६ अजागरा ७ अधम्मा ८ अधम्म ववसाइया पांचमें गुणस्थानमें बोल पावे आठ १ संजतासंजति २ पच्चखाण पच्चखाणी, ३ वृत्तावृत्ति ४ संबुडासंबुडा ५ बालपिण्डिया ६ सुत्त जागरा ७ धम्माधम्मा ८ धम्माधम्म ववसाइया, छठा गुणस्थानसे चवदमा गुणस्थानतक बोल पावे आठ १ संजति २ पच्चखाणी ३ वृत्ति ४ संबुडा ५ पिण्डिया ६ जागरा ७ धम्मा ८ धम्म ववसाइया, तीन गुणस्थान वाटे वहेतां जीवमें पावे (याने मरकरके परभवमें जावे जब) पहेला, दूसरा, चोथा; तीन गुणस्थान अमर (मरे नहीं) तीसरा, बारमा तेरमा; पांच गुणस्थान सासता लाधे पहेला, चोथा

पांचवां, छट्ठा, तेरवां; पांच गुणस्थान तिर्थंकर महाराज नही फरसे पहेला, दूसरा, तीसरा, पांचमा अग्यारमा; पांच गुणस्थानमें तिर्थंकर गोत्र बांधे चोथा; पांचमा, छट्ठा, सातमा, आठमा, तीन गुणस्थान अपडवाई बारमो, तेरमो, चवदमो; पांच गुणस्थान अणाशिकपहेला, दूसरा, चोथा, तेरमा, चवदमा; एकजीव ज० नव गुणस्थान फरस कर मोक्षमें जावे पहेला, चोथा, सातमा, आठमा, नवमा, दसमा, बारमा, तेरमा, चवदमा ए नव।

सोलमो जोगद्वार पहेले दुसरे चोथे गुणस्थान में जोग पावे तेरा, पनरामेंसे दोय वर्ज्या १ अहारिक २ अहारिकको मिश्र; तीसरा गुणस्थानमें जोग पावे दस, पनरामेंसे पांच वर्ज्या १ उदारिक को मिश्र २ वैक्रम को मिश्र ३ अहारिक ४ अहारिक को मिश्र ५ कारमाण, पाचमां गुणस्थानमें जोग पावे बारा, पनरामें से १ अहारिक २ अहारिकको मिश्र ३ कारमाण वर्ज्या, छट्ठा गुणस्थानमें जोग पावे चवदा, पनरामेंसे १ कारमाण वर्ज्यो सातमा गुणस्थानमें जोग पावे अग्यारा, पनरा मेंसे तीन तो मिश्र व एक कारमाण ये च्यार वर्ज्या आठमा गुणस्थानसे बारमा गुणस्थान तक जोग पावे नव च्यार मनका च्यार वचनका व एक औदारिक, तेरमा गुणस्थानमें पाच तथा सात पांच होवे तो १ सत्य मन जोग २ व्यवहार मनजोग ३ सत्य भापा ४ व्यवहार भापा और एक औदरिक, सात होवे तो पांच तो पूर्ववत और एक औदारिकको मिश्र व एक कारमाण, चवदमा गुणस्थानमें जोग नहीं।

सतरमो उपयोग द्वार पहेले तीसरे गुणस्थान में उपयोग पावे

छव ३ अज्ञान, ३ दर्शन, दूसरे, चोथे, पांचमें गुणस्थानमें उपयोग पावे छव ३ ज्ञान, ३ दर्शन, छट्टासे बारमा गुणस्थान तक उपयोग पावे सात ४ ज्ञान, ३ दर्शन, तेरमा चवदमा गुणस्थानमें उपयोग पावे दोय १ केवल ज्ञान २ केवल दर्शन।

अट्टारमो लेश्या द्वार पहेला गुणस्थान से छट्ठा गुणस्थान तक लेश्या पावे ६ ही, सातमा गुणस्थानमें लेश्या पावे तीन १ तेजु २ पद्म ३ शुक्ल आठमा गुणस्थान से बारमा गुणस्थान तक लेश्या पावे एक शुक्ल तेरमा गुणस्थानमें लेश्या एक परम शुक्ल चवदमा गुणस्थानमें लेश्या नहीं।

उगणीसमो हेतुद्वार हेतु सतावन ५ मिथ्यात्व १५ जोग १२ अवृत्त (१२ अवृत ६ काय ५ इन्द्रि १ मन ये बारा) २५ कषाय, पहेला गुणस्थान में हेतु पावे पचावन सतावन मेंसे १ अहारिक २ अहारिकको मिश्र वर्ज्यो दुसरा गुणस्थानमें हेतु पावे पचास पचावनमेंसे पाच मिथ्यात्व वर्ज्या, तीसरा गुणस्थानमें हेतु पावे तयांलिस पचासमेसे सात वर्ज्या अन्तानु बधीकी चोकड़ी औदारिकको मिश्र, वैक्रयको मिश्र, वकारमाण, चोथा गुणस्थानमें हेतु पावे छीयालीस, तेयालीसमें तीन योग वध्या (१ औदारिकको मिश्र २ वैक्रयको मिश्र ३ कारमाण) पांचमा गुणस्थानमे हेतु पावे चालीस छीयालीस में अप्रत्याख्यानी को चोक त्रसको अवृत्त कारमाण वर्ज्या, छठा गुणस्थानमें हेतु पावे सतावीस चवदाजोग तेरा कषाय (९ नो कषाय संजलरो चौक) सातमा गुणस्थानमें हेतु पावे चोवीस सतावीस मेंसे औदारिक वैक्रय अहारिक इन

तीनका मिश्र वर्ज्या, आठमा गुणस्थानमें हेतु पावे बावीस (चोवीस मेंसे वैक्रय व अहारिक वर्ज्या,) नवमा गुणस्थानमें हेतु पावे सोला (बावीस मेंसे ६ हास्यादि वर्ज्या,) दसमा गुणस्थानमें हेतु पावे दस ६ जोग व एक संजलको लोभ, अग्यारमा, बारमा गुणस्थानमें हेतु पावे ६ (च्यार मनरा च्यार वचनरा एक उदारिक) तेरमा गुणस्थानमें हेतु पावे पांच तथा सात (१ सत्यमन जोग, २ व्यवहार-मन जोग, ३ सत्य भाषा, ४ व्यवहार भाषा ५ औदारिक ६ औदारिक रो मिश्र, ७ कारमाण) जोग द्वार माफिक, चवदमा गुणस्थान में हेतु नहीं ।

बीसमो मार्गणा द्वार (जानेका रास्ता) पहेला गुणस्थानकी मार्गणा४; तीसरे, चोथे,पांचमें,सातमें, दूसरा गुणस्थानकी मार्गणा एक पहेले; तीसरा गुणस्थानकी मार्गणा च्यार पड़े तो पहेले चढ़े तो चोथे, पांचमें, सातमें जावे, चोथा गुणस्थानकी मार्गणा पांच, पड़े तो पहेले, दूसरे, तीसरे, चढ़े तो पांचमें, सातमें, पांचमा गुणस्थानकी मार्गणा पांच पड़े तो पहेले, दूसरे, तीसरे, चोथे, चढ़े तो सातमें आवे; छट्टा गुणस्थानकी मार्गणा छव, पड़े तो पहेले, दूसरे, तीसरे, चोथे, पांचमें, चढे तो सातमें जावे; सातमा गुणस्थानकी मार्गणा तीन,पड़े तो छट्टे,चढे तो आठमें,काल करे तो चोथे, आठमा गुणस्थानकी मार्गणा तीन, पड़े तो सातमें, चढे तो नवमें, काल करे तो चोथे, नवमा गुणस्थानकी मार्गणा तीन, पड़े तो आठमें, चढे तो दसमें, काल करे तो चोथे, दसमा गुणस्थानकी मार्गणा च्यार पड़े तो नवमें, चढे तो अग्यारमें, बारमें, काल करे तो

चोथे; अग्यारमा गुणस्थानकी मार्गणा होय; पड़े तो दूसमें, काल करे तो चोथे; बारमा गुणस्थानकी मार्गणा एक तेरमें, तेरमा गुणस्थानकी मार्गना एक चवद्में चवदमा गुणस्थान वाला मोक्षमें जावे।

अकवीसमो ध्यानद्वार (चित्तको एकाग्र पणो) पहेले दूसरे तीसरे गुणस्थानमें ध्यान पावे दोय आर्तध्यान रौद्रध्यान, चोथे पाचमें गुणस्थानमें ध्यान पावे तीन आर्तध्यान, रौद्रध्यान; धर्मध्यान; छट्ठा गुणस्थानमें ध्यान दोय आर्तध्यान, धर्मध्यान, सातमा गुणस्थानमें ध्यान पावे एक धर्मध्यान आठमा गुणस्थानसे तेरमा गुणस्थान तक एक शुक्ल चवदमा गुणस्थानमें ध्यान एक परमशुक्ल।

बावीसमो दण्डक द्वार पहेला गुणस्थानमें दण्डक पावे चोवीस, दूसरा गुणस्थानमें दण्डक पावे उगणीस, चोवीसमेंसे पांच थावरका टल्या, तीसरा चोथा गुण स्थानमें दण्डक पावे सोला, उगणीसमेंसे तीन विकलेन्द्रीका टल्या, पांचमा गुणस्थानमें दण्डक दोय वीसमो, इकवीसमो (मनुष्य, तिर्यच पञ्चेन्द्री सन्नी) छट्ठा गुणस्थानसे चवदमा गुणस्थान तक दण्डक पावे एक इकवीसमो (मनुष्यको)

तेवीसमो जीवा जोन द्वार पहेला गुणस्थानमें जीवाजोन चोरासी लाख, दूसरा गुण स्थानमें जोवा जोन बत्तीस लाख, बावन लाख एकेन्द्रीकी वर्जी (टली) तीसरा, चोथा, गुणस्थानमें जीवा जोन छावीस लाख, बत्तीस लाखमेंसे छव लाख, तीन विकलेन्द्रीकी

दली, पांचमा गुणस्थानमें जीवाजोन अठारा लाख चवदा लाख मनुष्यकी चार लाख तिर्यंचकी, छट्ठा गुणस्थानसे चवदमा गुण स्थान तक जीवाजोन चवदा लाख मनुष्यकी ।

चोवीसमो निमित्त द्वार पहेला गुणस्थानसे चोथा गुणस्थान तक ये च्यार ही दर्शनमोहनीके निमितसे पांचमा गुणस्थासे बारमा गुणस्थान तक ये आठ ही चारित्रमोहनीके निमित्तसे तेरमा चवदमा ये दो गुणस्थान योगोंके निमित्तसे ।

पचीसमो चारित्र द्वार पहेला गुणस्थानसे चोथा गुणस्थान तक चारित्र नहीं, पांचमा गुणस्थानमें देश थकी सामायिक चारित्र, छट्ठा, सातमा, गुणस्थानमें चारित्र तीन १ सामायिक २ छेदोपस्थापनिक परिहारविशुद्ध, आठमा, नवमा गुणस्थानमें चारित्र दोय १ सामायिक २ छेदोप स्थापनिक, दसमा गुणस्थानमें चारित्र एक सुक्ष्म संपराय, अग्यारमा गुणस्थानसे चवदमा गुण-स्थान तक यथाख्यात चारित्र ।

क्षायक समकित चोथे गुणठाणेसे चदवें गुणठाणे तक ।

उपसम समकित चोथे गुणठाणेसे इग्यारमें गुणठाणे तक ।

क्षयोपसम, वेदक समकित चोथे गुणठाणेसे सातमें गुणठाणे तक ।

सास्वादन समकित दुजे गुणठाणेमें मिथ्यात और मिश्र गुण-ठाणे समकित नहीं ।

पाठान्तर.

पेले तीजे गुणठाणे समकित नहीं, दुजे गुणठाणे समकित १

सास्वादन, चोथे सु सातमें तक समकित ४ क्षयोपसम, वेदक, उपसम, खायक, आठमे सु इग्यारमे तक समकित २ उपसम, खायक ।

बारमें सु चवदमें तक समकित १ खायक ।

खायक समकित एक भवमें एक वार आवे, आया पीछे जावे नहीं ।

उपसम, सास्वादन समकित एक भवमें जघन्य १ वार आवे उत्कृष्टा २ वार आवे घणा भव आसरी जघन्य २ वार उत्कृष्टा ५ वार आवे ।

क्षयोपशम, वेदक, मिश्र, मिथ्यात एक भवमें जघन्य १ वार उत्कृष्टा प्रत्येक हजार वार घणा भव आसरी ज० २ वार उ० असंख्याती वार आवे ।

खायकरी वेदक आया पीछे १ समेमे खायकरी प्राप्ती करे ।

सतायीसमो आंतरा द्वार पहेला गुणस्थानमें भांगा तीन १ अणाइया अपज्जवसिया २ अणाइया सपज्जपसिया साइया सपज्जवसिया तीसरा भांगाको आन्तरो ज० अन्तर मोहरतको उ० छासट सागर भाभेरो दूसरा गुणस्थानसे अग्यारमा गुणस्थानतक आन्तरो ज० अन्तर मोहरतको उ० देश उणा अर्ध पुद्गलिक काल को, बारमा, तेरमा चवदमा गुणस्थानको अन्तरो नहीं ।

अठावीसमो अल्पाबौत द्वार सबसे थोड़ा अग्यारमा गुणस्थान वाला उपसम श्रेणी वाला एक समयमे चोपन लादे,(पावे) तेथकी बारमा चवदमा गुणस्थान वाला संख्यातगुणा एक समयमें क्षपक श्रेणी

वाला एक सौ आठ लादे, तेथकी आठमा, नवमा, दसमा गुणस्थान वाला संख्यात गुणा क्षयोपसमश्रेणीवाला एक समयमें प्रत्येक सो लादे तेथकी सातमा गुणस्थान वाला संख्यात गुणा प्रत्येक हजार लादे तेथकी तेरमा गुणस्थान वाला संख्यात गुणा एक समयमें प्रत्येक क्रोड लादे, तेथकी छट्ठा गुणा स्थान वाला संख्यात गुणा एक समयमें प्रत्येक हजार क्रोड लादे, तेथकी पांचमा गुणस्थान वाला असंख्यात गुणा तिर्यंच श्रावक आश्री, तेथकी दूसरा गुणस्थान वाला असंख्यात गुणा तीन विकलेन्द्री आश्री, तेथकी तीसरा गुणस्थान वाला असंख्यात गुणा चार गति आश्री, तेथकी चोथा गुणस्थान वाला असंख्यात गुणा स्थिति आश्री, तेथकी पहेला गुणस्थान वाला अन्तगुणा निगोद आश्री।

* इति गुणस्थान द्वार सम्पूर्ण *

चवदाद्वारका गुणठाणा द्वार लिख्यते ।

चवदा द्वारका नाम १ नाम २ नेमाभजना ३ द्रव प्रमाण खेत्र ५ फुसणा ६ काल ७ आन्तरा ८ आकर्श ९ ओघेणा १ समुदघात ११ क्रिया १२ गतागत १३ आयुष्यबंधरा भांगा १ अलपावौत ।

१ नामद्वार चवदा गुणठाणाका नाम १ मिथ्यात्व २ सास्वादान ३ मिश्र ४ अवृत्ति सम्यक दृष्टी ५ देशवृत्ति ६ प्रमादी । अप्रमादी ८ नियट्टी बादर ९ अनियट्टी बादर१० सुक्ष्म सम्पराय १ उपसान्त मोहणी १२ क्षिण मोहणी १ सजोगी केवली १४ अजोगी केवली ।

२ नेमाभजना द्वार ६ गुणठाणारी नेमा (१, ४, ५, ६, ७, १३, ८ गुणठाणारी भजना (२, ३, ८, ९, १०, ११, १२, १४)

३ द्रव प्रमाणद्वार—पहेलो गुणठाणो अङ्गीकार करने वाल जघन्य १ लाधे उत्कृष्टया असंख्याता लाधे । दुजो तीजो चोथे पांचमो गुणठाणो अङ्गीकार करनेवाला जघन्य एकलाधे, उत्कृष्टया असंख्याता लाधे (पलरे असंख्यातमें भागमें जितना समय होवे उतना) छठो, सातमो गुणठाणो अङ्गीकार करनेवाला जघन्य एक

लाधे, उत्कृष्टया संख्याता हजार लाधे, आठमो, नवमो, दसमो गुणठाणो अङ्गीकार करनेवाला (आराधनेवाला) जघन्य एक लाधे, उत्कृष्टया १६२ लाधे, अग्यारमो गुणठाणो अङ्गीकार करनेवाला जघन्य १ लाधे, उत्कृष्टया ५४ लाधे, बारमो, तेरमो चवदमो गुणठाणो अङ्गीकार करनेवाला जघन्य एक लाधे, उत्कृष्टया १०८ लाधे। पहेलो गुणठाणो अङ्गीकार किया हुआ जघन्य अनन्ता लाधे, उत्कृष्टया अनन्ता लाधे, दुसरो, तिसरो, गुणठाणो अङ्गीकार किया हुवा जघन्य १ लाधे, उत्कृष्टया असंख्याता लाधे (पलरे असंख्यातमें भाग जितना समा होवे उतना) चोथो, पांचमो गुणठाणो अङ्गीकार किया हुवा जघन्य असंख्याता लाधे (पलरे असंख्यातमें भागमें जितना समय होवे उतना), उत्कृष्टया असंख्याता लाधे, (पलरे असंख्यातमें भागमें जितना समय होवे उतना) जघन्य असंख्यातासे, उत्कृष्टया असंख्याता, असंख्यात गुणा छट्ठो, सातमो गुणठाणो अङ्गीकार किया हुवा जघन्य प्रत्येक हजार क्रोड लाधे उत्कृष्टया प्रत्येक हजार क्रोड लाधे, आठमो, नवमो, दसमो, अग्यारमो, बारमो, चवदमो, गुणठाणो अङ्गीकार किया हुवा, जघन्य १ लाधे, उत्कृष्टय संख्यातासो लाधे, तेरमो गुणठाणो अङ्गीकार किया हुवा जघन्य उत्कृष्टया प्रत्येक क्रोड लाधे।

४ क्षेत्रद्वार १ जीव आश्री पहेलो, दुसरो, तीसरो, चोथो गुणठाणे वालो १ जीव जघन्य आंगुलके असंख्यातमें भाग क्षेत्र ओघावे उत्कृष्टया लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्र ओघावे, पांचमा गुणठाणा वालो जघन्य प्रत्येक हाथ खेत्र ओघावे उत्कृष्टया

१००० जोजन रो खेत्र ओघावे छट्ठा, सातमा, गुणठाणा वाला जघन्य एक हाथ खेत्र ओघावे उत्कृष्टया ५०० धनुषरो, खेत्र ओघावे आठमासे चवदमा गुणठाणा वालो जघन्य प्रतेक हाथ, उत्कृष्टया ५०० धनुष रोखेत्र ओघावे घणा जीव आश्री पहेला गुणठाणा जघन्य सरवलोक खेत्र ओघावे उत्कृष्ट यो सरवलोक खेत्र ओघावे वालो दुसरा गुणठाणासे चवदमागुणठाणा तक तेरमो गुणठाणो वर्जीने जघन्य उत्कृष्ट यो लोकके असंख्यातमें भाग क्षेत्र ओघावे तेरमा गुणठाणेवाला जघन्य लोकके असंख्यातमें भाग खेत्र ओघावे उत्कृष्ट या सरवलोकरो खेत्र ओघावे (केवली समुदघता आश्री)

(८) फुसणाद्वार १ जीव आश्री पहेला गुणस्थान वाला जघन्य आंगुलरो असंख्यातमो भाग फरसे उत्कृष्टया १४ राजफरसे, दुसरे तिसरे चोथे गुणठाणा वाला जघन्य आंगुलके असंख्यातमें भाग फरसे उत्कृष्टया ६ राज फरसे, पांचमा गुणठाणा वाला जघन्य प्रत्येक हाथ फरसे उत्कृष्टया ५ राज फरसे, छट्टे; सातमे गुणठाणे वाला जघन्य १ हाथ फरसे उत्कृष्टया ७ राज फरसे आठमे, नवमे दसमे अग्यारमे गुणठाणा वाला जघन्य प्रत्येक हाथ फरसे उत्कृष्टया ७ राज, फरसे, बारमे चवदमे गुणठाणे वाला जघन्य प्रत्येक हाथ फरसे उत्कृष्ट या ५०० धनुष्य फरसे तेरमे गुणठाणे वाला जघन्य प्रत्येक हाथ फरसे उत्कृष्ट या सरवलोक फरसे, घणाजीव आश्री पहेले गुणठाणे वाला जघन्य सर्वलोक फरसे उत्कृष्ट या सर्वलोक फरसे, दुसरे गुण ठाणे वाला जघन्य आंगुलके असंख्यातमें

भाग फरसे उत्कृष्ट्या १० राज फरसे, तिसरे गुणठाणे वाला जघन्य आंगुलके असंख्यातमें भाग फरसे उत्कृष्ट्या ७ राज फरसे, चोथे गुणठाणे वाला जघन्य लोकरे असंख्यातमें भाग फरसे उत्कृष्ट्या ८ राज फरसे, पांचमें गुणस्थान वाला जघन्य लोकरे असंख्यातमें भाग फरसे उत्कृष्ट्या ५ राज फरसे, छट्ठे गुणस्थानसे चवदमें गुणस्थान वाला तेरमो वर्जीने जघन्य लोकरे असंख्यातमें भाग फरसे, उत्कृष्ट्या लोकरे असंख्यातमें भाग फरसे, तेरमें गुणस्थान वाला जघन्य लोकरे असंख्यातमें भाग फरसे, उत्कृष्ट्या सरवलोक।

६ कालद्वार (स्थिति) एक जीव आश्री २८ द्वारका गुणस्थान द्वार मुजब कहदेणी, घणा जीव आश्री पहेले गुणठाणे की स्थिति सवधा, (सदाकालसासती) दुजे, तीजे, गुणठाणे की स्थिति ज० दोय समे की उ०पलके असंख्यातमें भाग; चोथे, पांचमे गुणठाणे की स्थिति ज० दोय समाकी उ० आवलका के असंख्यातमें भाग; छट्ठे, सातमें गुणठाणे की स्थिति ज० दोय समा की उ० आठ समाकी आठमें सु अग्यारमें गुणठाणे की स्थिति ज० दोय समा की उ० संख्याता समा की ; बारमें से चवदमाँ गुणठाणे की स्थिति ज० दोय समाकी उ० ८ समाकी।

७ आन्तरा द्वार१जीव आश्री २८द्वार का गुणस्थान द्वार माफिक कहेना। घणा जीव आश्री पहेला गुणस्थानको आंतरो नहीं, दुसरा गुणस्थानको आन्तरो जघन्य १ समयरो उ० आंवलीकाके असंख्यातमें भाग, तीसरा गुणस्थानको आन्तरो जघन्य १ समयको उ० पलरे असंख्यातमें भाग, चोथा गुणस्थानको आन्तरो जघन्य १ समयको उ० सात दिनको, पाचमा गुणस्थानको आन्तरो ज० १ समयरो उ० १२ अथवा १४ दिनको ; छट्ठा सातमा गुणस्थानको

आंतरो जघन्य १ समयरो उ० १५ दिनको, आठमासे दसमा गुणस्थानको आन्तरो ज० १ समयको उ० ६ महीनाको, अग्यारमा गुणस्थानको आन्तरो ज० १ समयको उत्कृष्ट्यो प्रत्येक वर्षको, बारमा, तेरमा, चवदमा गुणस्थानको आन्तरो नहीं ।

८ आकर्ष द्वार (आवाको) पहेला तीसरा चोथा पांचमा गुणस्थान वाला १ भव आश्री ज० एक वार आवे उ० प्रत्येक हजार वार आवे घणा भव आश्री ज० दोय वार आवे उत्कृष्ट्या असंख्याती वार आवे, दुसरे अग्यारमें गुणस्थान वाला एक भव आश्री ज० एक वार आवे उत्० २ वार आवे घणा भव आश्री ज० २ वार आवे उत्कृष्ट्या ५ वार आवे, छट्ठा, सातमा गुणस्थान वाला १ भव आश्री जघन्य १ वार आवे उत्कृष्ट्या प्रत्येक सो वार आवे घणा भव आश्री जघन्य २ वार आवे उत्० प्रत्येक हजार वार आवे आठमें, नवमे, दसमें गुणस्थान वाला १ भव आश्री ज० १ वार आवे उ० ४ वार आवे घणा भव आश्री ज० २ वार आवे उत्कृष्ट्या ६ वार आवे; बारमें तेरमें चवदमें गुणस्थान वाला १ भव आश्री १ वार आवे (आयां पछे जावे नहीं)

९ अवघेणा द्वार पहेला गुणस्थानकी अवघेणा ज० आंगुलके असंख्यातमें भाग उ० हजार जोजन झाझेरी; दुसरे, तीसरे, चोथे गुणस्थानकी अवघेणा जघन्य आंगुलके असंख्यातमें भाग उ० हजार जोजनकी, पांचमें गुणस्थानकी अवघेणा ज० प्रत्येक आंगुलकी उ० हजार जोजनकी, छट्ठा सातमा गुणस्थानकी अवघेणा ज० एक हाथरी उत्कृष्ट्या ५०० धनुष्यकी, आठमा गुणस्थानसे चवदमा गुणस्थान तक अवघेणा ज० प्रत्येक हाथकी उत्कृष्टी ५०० धनुषकी ।

१० समुद्घात द्वार पहेले, दुसरे, चोथे, पांचवे गुणस्थानमें समुद्घात पावे ५ (वेदनो, कषाय, मरणान्तिक, वैक्रय, तेजस) तोसरे गुणस्थानमें समुद्घात पावे ४ (ऊपर पांच कही जिसमेंसे मरणान्तिक टली) छठे गुणस्थानमें समुद्घात पावे ६ (सातमेंसे केवली टलो) सातमासे चवदमा गुणस्थान तक तेरमो गुणस्थान वर्जीने समुद्घात नहीं, तेरमा गुणस्थानमें समुद्घात पावे एक (केवली)

११ क्रिया द्वार पहेले, दुसरे, तोसरे गुणस्थानमें क्रिया पावे २४ (एक इरियावहिया टली) चोथे गुणस्थानमें क्रिया पावे २३ (उपर कही जोकी २४ मेंसे मिथ्यात्व वर्जी) पांचमा गुणस्थानमें क्रिया पावे २२ (उपर २३ कही जोकीमेंसे १ अव्रत वर्जी) छट्ठे गुणस्थानमें क्रिया पावे २१ (उपर २२ कही जीकोमें से १ परिग्रहिया वर्जी) सातमासे दसमा गुणस्थान तक क्रिया पावे १ माया वत्तिया, अग्यारमासे तेरमा तक क्रिया पावे १ इरिया वहीया, चवदमे गुणस्थानमें क्रिया नहीं।

१२ गति द्वार पहेला गुणस्थान वाला ४ गतिमें जावे, दुसरे गुणस्थान वाला ३ गतमें जावे (नारकी वर्जी) तीसरो गुणस्थान अमर, चोथा गुणस्थान वाला पहेला आयुष्य बांध लेवे जद चारही गतिमें जावे, पिछे आयुष्य बाधे जब मनुष्य, विमाणिकमें जावे; पांचमें गुणस्थानसे अग्यारमे गुणस्थान वाला विमाणिकमें जावे, बारमारो तेरमें, तेरमारो चवदमें, चवदमारो मोक्षमें जावे।

१३ आयुष्य बंधरा भांगा द्वार आयुष्य बंधरा भांगा २८ ।

	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
नारकी की पुरब अवस्था	नास्ति	नारकी को	नारकी की	४
„ „ बंध „	तिर्यंच को	„	„ तिर्यंचकी	२
„ „ „ „	मनुष्य को	„	„ मनुष्यकी	३ (१, २, ४)
„ „ उत्तर „	नास्ति	„	„ तिर्यंचकी	४
„ „ „ „	„	„	„ मनुष्यकी	४
देवता की पुरब अवस्था	„	देवता को	देवताकी	४
„ „ बंध „	तिर्यंच को	„	„ तिर्यंचकी	२
„ „ „ „	मनुष्य को	„	„ मनुष्यकी	३ (१, २, ४)
„ „ उत्तर „	नास्ति	„	„ तिर्यंचकी	४
„ „ „ „	„	„	„ मनुष्यकी	४
तिर्यंच की पूरब „	„	तिर्यंच को	तिर्यंचकी	५
„ „ बंध „	नारकी को	„	„ नारकोकी	१ पहेलो
„ „ „ „	तिर्यंच को	„	„ तिर्यंचकी	२

	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
तिर्यंच की बंध अवस्था	मनुष्य को	तिर्यंच को	,, मनुष्यकी	२
,, ,, ,, ,,	देवता को	,,	,, देवताकी	४ (१,२,४,५,)
,, ,, उत्तर ,,	नास्ति	,,	,, नारकीकी	५
,, ,, ,, ,,	,,	,,	,, तिर्यंचकी	५
,, ,, ,, ,,	,,	,,	,, मनुष्यकी	५
,, ,, ,, ,,	,,	,,	,, देवताकी	५
मनुष्य की पूर्व अवस्था	,,	मनुष्य को	मनुष्यकी	१४
,, ,, बंध ,,	नारकी का	,,	,, नारकीकी	१
,, ,, ,, ,,	तिर्यंच को	,,	,, तिर्यंचकी	२
,, ,, ,, ,,	मनुष्य को	,,	,, मनुष्यकी	२
,, ,, ,, ,,	देवता को	,,	,, देवताकी	६(१,२,४,५,६ ७)
,, ,, उत्तर ,,	नास्ति	,,	,, नारकको	७
,, ,, ,, ,,	,,	,,	,, तिर्यंचको	७
,, ,, ,, ,,	,,	,,	,, मनुष्यकी	७
,, ,, ,, ,,	,,	,,	,, देवताकी	११

पहेले गुणस्थानमें भांगा पावे २८ ही; दुसरे गुणस्थानमें २६ (२८ मेंसे २ वर्ज्या तिर्यचरी बंध अवस्थामें नारकीको बंध, मनुष्यरी बंध अवस्थामें नारकीको बंध ये २ टल्या मनुष्य तिर्यचमें दुजो भांगो टल्यो) तीसरे गुणस्थानमें भांगा पावे १६ (२८ मेंसे १२ टल्या, नारकी की बन्ध अवस्थारा २ देवताकी बन्ध अवस्थारा २ तिर्यंचरीबन्धअवस्थारा ४ मनुष्यरी बन्धअवस्थारा ४, नारकी देवतामें दुसरो तीसरो भांगो; तिर्यंच मनुष्यमे दुसरो, तीसरो, चोथो पांचवो, भांगो टल्यो) चोथे गुणस्थानमें भांगा पावे २०, १६में ४ वध्या (नारकी की बंध अवस्थामें मनुष्यको बंध, देवताकी बंध अवस्थामें मनुष्यको बंध, तिर्यंचकी बंध अवस्थामें देवताको बंध मनुष्यको बंध अवस्थामें देवताको बंध, ये च्यार वध्या) पांचमे गुणस्थानमें १२ भांगा (६ भांगा तिर्यचका तिर्यंचकी पूर्व अवस्था, तिर्यंचकी बंध अवस्था, बंध देवताको; तिर्यंचकी ४ उत्तर अवस्थाकेहदेणी, ए ६; मनुष्यका ६ भांगा तिर्यंचके माफिक कह देणा) छट्ठे, सातमे गुणस्थानमें भांगा पावे ६ (१२ मेसे ६ तिर्यंचका टल्या) आठमासे अग्यारमा तक भांगा पावे २ (मनुष्यरीपूर्व अवस्था, मनुष्यकी उत्तर अवस्था, सत्ता मनुष्य देवताकी) बारमासे, चवदमे गुणस्थानमें भांगो पावे १ (मनुष्यकी पूर्व अवस्था) पूर्वअवस्था (आयुष्य नहीं बंध्योजिते) बंध अवस्था (वर्त्तमानमें आयुष्य बांध रहा है) उत्तर अवस्था (आयुष्य बांध लियाहो)

१४ अल्पाबोतद्वार सबसे थोड़ा अग्यारमा गुणस्थानवाला; बारमा गुणस्थानवाला संख्यात गुणा आठमा, नवमा, दसमा, गुणस्थान

वाला आपसमें तुल्ला विशेषाहया; तेरमा गुणस्थान वाला संख्यात गुणा; सातमा गुणस्थानवाला सख्यात गुणा; छट्ठा गुणस्थान वाला संख्यात गुणा; पांचवा गुणस्थानवाला असंख्यातगुणा; दुसरे गुणस्थान वाला असंख्यात गुणा; तिसरा गुणस्थान वाला असख्यात गुणा; चोथा गुणस्थान वाला असंख्यात गुणा; अजोगी अनन्त गुणा; (सिद्धा आश्री) पहेला गुणस्थान वाला अनन्त गुणा ।

॥ चवदा द्वार को गुणस्थान द्वार संपूर्ण ॥

॥ कर्म प्रकृति ॥

आठ कर्मका नाम १ ज्ञानावरणीय कर्म २ दर्शनावरणीय कर्म ३ वेदनीय कर्म ४ मोहनी कर्म ५ आयुष्य कर्म ६ नाम कर्म ७ गौत्र कर्म ८ अंतराय कर्म ।

आठ कर्मका लक्षण ।

ज्ञानावरणीय कर्म आंख आडा पाटाकी तरह, सूर्य आडा बादलाकी तरह ।

दर्शनावरणीय कर्म राजका पोलिया (डोढीवान) के समान वेदनीय कर्म मधु (सहतसे खरडी हुई तलवार समान चाटे तो मीठी लागे पण जीभ कटे) । मोहनी कर्म मदिरा पान समान ।

आयुष्य कर्म खोडा वेडी समान, (वख्त पुरा हुवा विना छुटे नहीं) ।

नाम कर्म चितारा समान (विविध प्रकारका रूप वणावे) ।

गौत्र कर्म कुम्भारका चक्र समान (जिस तरह कि कुम्भार चक्रने फैरे उसी माफिक संसारमें परिभ्रमण करावे व-उच्च नीच कुलमें लेजावे, जैसे उसी चाक परसे समान कुलड़ा उतारे व उसी परसे अमृत भांड-अथवा दुजो दृष्टान्त; कुम्भारका चाकपरसे दोय कुलड़ा उतार्या वीमेंसे एकको सरवो वणायो व एकको ठुंठो; ठुंठे समान तो नीच गौत्र और सरवा समान उच्च गौत्र ।

अन्तराय कर्म राजाका भंडारी समान (शक्तिने रोक राखे) ।

आठ कर्मकी प्रकृति ।

आठ कर्मकी प्रकृति १४८ च कोइ कोई १५८ भी कहते हैं ज्ञानावरणीयकी पांच प्रकृति, दर्शनावरणीयकी नव प्रकृति, वेदनीकी दोय प्रकृति, मोहनी की अठाईस प्रकृति, आयुष्य कर्मकी चार प्रकृति, नाम कर्मकी तराणु तथा एक सो तीन प्रकृति, गौत्र कर्मकी दोय प्रकृति, अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृति ।

आठ कर्मकी प्रकृतियोंके नाम ।

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतिका नाम १ मति ज्ञाना वरणीय २ श्रुति ज्ञानावरणीय ३ अवधी ज्ञानावरणीय ४ मनः पर्यव ज्ञानावरणीय ५ केवल ज्ञानावरणीय ।

दर्शनावरणीय कर्मकी नव प्रकृति १ निद्रा (सुखे सोवे सुखे जागे) २ निद्रानिद्रा (हेलो पाडवासे जागे) ३ प्रचला (बेठो २ उंघे) ४ प्रचला प्रचला (चालता २ बोलता २ खाता २ उंघे) ५ थणो दधी निद्रामें आधा वासुदेवका बल आवे उस वख्त उसी निद्रामें उठे, उठकर पेटी खोले, पेटी खोल कर अन्दरसे गहणाको डब्बो लेवे और कपड़ाकी गांठ बांध कर नदी पर जावे उस जेवर का डब्बाने हजार मणको शिला उंची कर उसके नीचे दाट देवे व कपड़ा धोकरके घर चल्यो आवे सवेरे (फजरमें) जागे परन्तु खबर नहीं पड़े, जेवरका डब्बाने सोधे परन्तु लाधे नहीं ऐसी निद्रा छव महिनाके बाद वापिस आवे उस वख्त जेवरका डब्बा जहां रखा हो वहांसे ले आवे और जहांसे लिया हो वहां रख देवे ऐसी निद्रा मे काल करे तो नरकमें जावे इसको थणोदधि निद्रा कहिये ।

वेदनी कर्मकी दोय प्रकृति १ शाता वेदनी २ अशाता वेदनी।

मोहनी कर्मकी अठावीस प्रकृति; मोहनी कर्मका दोय भेद पहलो दर्शन मोहनी,—दुजी चारित्र मोहनी, दर्शन मोहनीकी तीन प्रकृति १ मिथ्यात्व (मिथ्यात्व मोहनी) २ सम्यक मिथ्यात्व (मिश्र मोहनी) ३ सम्यक प्रकृति (समकित मोहनी) २ चारित्र मोहनी की पच्चीस प्रकृति जिस का भेद दोय १ कषाय २ नोकषाय; कषायका सोला भेद (१) अनन्तानुबंधीकी चार प्रकृति १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ (२) अप्रत्याख्यानीकी चार प्रकृति १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ (३) प्रत्याख्यानी की चार प्रकृति १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ (४) संजलकी चार प्रकृति १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ, ये सोलह; नोकषायका नव भेद १ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ दुगंच्छा ७ स्त्री वेद ८ पुरुष वेद ९ नपुंसक वेद ये कुल मोहनी कर्मकी अठाईस प्रकृति हुई।

आयुष्य कर्मकी चार प्रकृति १ नरकायु २ तिर्यचायु ३ मनुष्यायु ४ देवायु (नारकीरो, तिर्यचरो, मनुष्यरो, देवतारो)

नाम कर्मकी तराणु तथा एक सो तीन प्रकृति; चार ग्रति (नरक, तिर्यच, मनुष्य, देवता) पाच जाति (एकेन्द्री, वेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री, पञ्चेन्द्री) पांच शरीर (औदारिक, वैक्रय, अहारिक, तेजस, कारमाण) तीन अंगोपाङ्ग (औदारिक, वैक्रय, आहरिक) पांच बंधन (औदारिक, वैक्रय, अहारिक, तेजस, कारमाण) पांच संघात (ओदारिक, वैक्रय, अहारिक, तेजस, कारमाण) छय संस्थान (संठाण) समचतुरस्र (समचोरस)

न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, कुब्ज (कुबड़ा) वामन, हुण्डक छत्र संहनन (संघेण) (वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, किलक, छेवट्या) पांच वर्ण (कृष्ण, नीलो, पीलो, रातो, धोलो) दोय गन्ध (सुगन्ध, दुर्गन्ध) पांचरस (खाटो, मीठो, कडवो, कषायलो, तिखो) आठ स्पर्श (हलको, भारी, ठण्डो, उनो, लुखो, चोपड्यो, खरदरो, सुंवालो) च्यार अनुपूर्वी (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता) एक अगुरुलघु, एक उपघात, एक पराघात, एक आताप, एक उद्योत, दोय विहायगति, प्रशस्तविहायगति (मनोज्ञ) अप्रशस्तविहायगति (अमनोज्ञ) एक उच्छ्वास, एक त्रस, एक स्थावर, एक बादर, एक सुक्ष्म, एक पर्याप्त, एक अपर्याप्त, एक प्रत्येक, एक साधारण, एक स्थिर, एक अस्थिर, एक शुभ, अशुभ, एक सुभग, एक दुर्भग. एक सुस्वर, एक दुःस्वर, एक आदेय, एक अनादेय, एक यशः किर्ति, एक अयशःकिर्ति एक तिर्थंकर, एक निर्माण येतराणवे हुई; एक सो तीनकेवे जब निचे लिखी हुई दस वधे १ औदारिक वैक्रयको बंधन २ औदारिक अहारिकको बंधन ३ औदारिक तेजसको बंधन ४ औदारिक कारमाणको बंधन ५ वैक्रय औदारिकको बंधन ६ वैक्रय तेजसको बंधन ७ वैक्रय कारमाणको बंधन ८ अहारिकमें तेजसको बंधन ९ अहारिकमें कारमाणको बंधन १० तेजसमें कारमाणको बंधन ये सब एकसो तीनप्रकृति हुई।

गोत्र कर्मकी दोय प्रकृति १ उच्च गोत्र २ नीच गोत्र।

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृति १ दानान्तराय २ लाभान्तराय ३ भोगान्तराय ४ उपभोगान्तराय ५ वीर्यान्तराय।

आठ कर्म कितनी प्रकारे बांधे, भोगवे।

१ ज्ञानावरणिय कर्म छव प्रकारे बांधे व दस प्रकारे भोगवे; छव प्रकारे बांधे १ नाणपडिणीयाए (ज्ञानीका अवर्णावाद बोले) २ नाण निन्हवणीयाए (ज्ञानीको निन्दा करे तथा उपकार भूले) ३ नाण अंतराएणं (ज्ञानकी अन्तराय देवे) ४ नाण आसाएणं (ज्ञानकी तथा ज्ञानीकी आसातना करे) ५ नाण पाउसियाए (ज्ञानी पर द्वेष करे) ६ नाण विसंवायणा जोगेणं (ज्ञानी साथे खोटा (झूठा) झगडा विखवाद करे)।

दस प्रकारे भोगवे १ श्रुतइन्द्रीको आवरण २ श्रुतविज्ञान आवरण ३ चक्षुइन्द्रीको आवरण ४ चक्षुविज्ञान आवरण ५ घ्राण इन्द्रीको आवरण ६ घ्राणविज्ञान आवरण ७ रसइन्द्रीको आवरण ८ रसविज्ञान आवरण ९ स्पर्शइन्द्री को आवरण १० स्पर्शविज्ञान आवरण।

२ दर्शनावरणीय कर्म छव प्रकारे बांधे, नव प्रकारे भोगवे; छव प्रकारे बांधे १ दसणपडिणीयाए (सुदर्शनीका अवर्णावाद बोले) २ दंसणनिन्हवणीयाए (सुदर्शनीकी निन्दा करे व उपकार भूले) ३ दंसणअंतराएण (सुदर्शनीने याने समकित पाता होवे उसको अन्तराए देवे) ४ दंसण आसाएण (सुदर्शनीकी आसातना करे) ५ दंसण पाउसियाए (सुदर्शनी पर द्वेष करे) ६ दंसण विसंवायणा जोगेणं (सुदर्शनी साथे झगडो करे)।

नव प्रकारे भोगवे १ निद्रा २ निद्रानिद्रा ३ प्रचला ४ प्रचला प्रचला ५ थणोद्धी ६ चक्षुदर्शनावरणीय ७ अचक्षुदर्शनावरणीय ८ अवधीदर्शनावरणीय ६ केवलदर्शनावरणीय।

वेदनी कर्मका दो भेद १ शाता वेदनी २ अशाता वेदनी।

शाता वेदनी दस प्रकारे बांधे, आठ प्रकार भोगवे।

दस प्रकारे बांधे १ पाणाणु कम्पियाए (बेन्द्री, तेन्द्री, चोन्द्रीपर अनुकम्पा याने दया करे) २ भूयाणु कम्पियाए (वनस्पति पर अनुकम्पा करे) ३ जीवाणु कम्पियाए (पचेन्द्री जीव पर अनुकम्पा करे) ४ सत्ताणु कम्पियाए (च्यार स्थावरपर अनुकम्पा करे) अदुःखणियाए (दुःख नहीं देवे) ६ असोयणियाए (शोक करावे नहीं) ७ अझुरणियाए (झुरावे नहीं) ८ अटिप्पणियाए (टपक २ आंसु पटकावे नहीं) ९ अपीट्टणियाए (मारे नहीं) १० अपरितावणियाए (परितापना उपजावे नहीं)।

आठ प्रकारे भोगवे १ मणुणा सद्दा (मनगमता शब्द) २ मणुणा रुवा (मन गमता रुप) ३ मणुणा गंधा (मन गमती गंध) ४ मणुणा रसा (मन गमता रस) ५ मणुणा फासा (मन गमता फरस) ६ मन सुहिता (मनरो सुख) ७ वयण सुहिता (भलो वचन) ८ काया सुहिता (कायारो सुख)।

अशाता वेदनी बारा प्रकारे बांधे, आठ प्रकारे भोगवे।

बारा प्रकारे बांधे १ पाणाणं, भूयाणं, जीवाणं, सत्ताणं दुःखणीयाए (प्राण, भूत, जीव, सत्वने दुःख देवे) २ सोयणयाए (शोककरावे) ३ झूरणयाए (झूरणा झूरावे) ४ टिप्पणियाए

(आसु नखावे) ५ पिट्टणीयाए (मारे, पीटावे) ६ परितावण याए (परितापना उपजावे) ७ बहु दुःखणीयाए (बहोत दुःख देवे) ८ बहु सोयणयाए (बहोत शोक करावे) ९ बहु झूरणयाए (बहोत झूरावे) १० बहु टिप्पणियाए (बहोत आसु नखावे) ११ बहु पिट्टणियाए (बहोत मारे, पिटावे) १२ बहु परितावणीयाए (बहोत परितापना उपजावे) ।

आठ प्रकारे भोगवे १ अमणुणा सद्दा (अमनोज्ञ शब्द) २ अमणुणा रुवा (अमनोज्ञ रूप) ३ अमणुणा गंधा (अमनोज्ञ गंध) ४ अमणुणा रसा (अमनोज्ञ रस) ५ अमणुणा फासा (अमनोज्ञ स्फर्श) ६ मण दुहित्ता (मनने अणगमता) ७ वय दुहिता (अणगमता वचन) ८ काया दुहिता (कायाने अणगमता) ।

मोहनीय कर्म छव प्रकारे बांधे, अठावीस प्रकारे भोगवे ।

छव प्रकारे बाधे १ तिव्व कोहे (तीव्र क्रोध करे) २ तिव्व माणे (तीव्र मान करे) ३ तिव्व मायाए (तीव्र कपटाइ करे) ४ तिव्व लोहे (तीव्र लोभ करे) ५ तिव्व दंसणमोहणीज्जे (तीव्र दर्शन मोहणी) ६ तिव्व चारित्तमोहणीज्जे (तीव्र चारित्रमोहणी) ।

अठावीस प्रकारे भोगवे, जिसका दोय भेद १ दर्शनमोहनीय २ चारित्रमोहनीय ।

दर्शनमोहनीका तीन भेद १ समकित मोहनीय २ मिश्र मोहनीय ३ मिथ्यात्व मोहनीय ।

चारित्र मोहनीयका दोय भेद १ कषाय २ नोकषाय ।

कषायका १६ भेद ।

अनन्तनु बंधी को चोक १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ।

१ क्रोधको स्वभाव पत्थरकी तेड़ २ मानको स्वभाव पत्थरको स्थंभ (थांवो) ३ मायाको स्वभाव वांसकी जड़ ४ लोभको स्वभाव किरमची रेसमको रंग, इन च्यारोंकी गति नरककी स्थिति जाव जीवकी, घात करे समकित की।

अप्रत्याख्यानी चोक १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ।

१ क्रोधको स्वभाव तलावको तेड़ २ मान को स्वभाव हाथी दांतको थांवो (स्थंभ) ३ मायाको स्वभाव मेंढाको सींग ४ लोभ को स्वभाव नगरको कीच, इन च्यारोंको गति तिर्यंचकी, स्थिति बारा महिनाकी. घात करे श्रावकजीका बारा वृत की।

प्रत्याख्यानी चोक १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ।

१ क्रोधको स्वभाव रेतमें लकीर (वालुमें लीक) २ मानको स्वभाव वेंतको स्थंभ ३ मायाको स्वभाव चालता बेलको माम्रो ४ लोभको स्वभाव गाडाको खञ्जन, इन चारोंकी गति मनुष्यकी, स्थिति करे च्यार महिना को घात करे साधपणेकी (सामायिक चारित्र की)

संजलको चोक १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ।

१ क्रोधको स्वभाव पाणीमें लकीर २ मानको स्वभाव तृणको स्थंभ ३ मायाको स्वभाव वांसको छोंतो (छाल) तथा डोराको वल ४ लोभको स्वभाव हल्दी पतंगको रंग, इन च्यारोकी गति देवताकी स्थिति क्रोधकी दो महिनाकी, मानकी एक महिनाकी, मायाकी पनरा दीनकी, लोभ की अंतर मोहरत की, घात करे यथाख्यातचारित्र की!

ये सोला भेद कपाय के हुवे।

नो कषायका नव भेद १ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ दुगंच्छा ७ स्त्री वेद ८ पुरुष वेद ९ नपुंसक वेद।

आयुष्य कर्म सोला प्रकारे बांधे, च्यार प्रकारे भोगवे।

नारकीको आयुष्य च्यार प्रकारे बांधे, १ महा आरम्भी २ महा परिग्रही ३ पञ्चेन्द्री की घात करे ४ मद्य मांसको आहार करे

तिर्यंचको आयुष्य च्यार प्रकारे बांधे, १ माया करे, २ गुढ माया करे ३ खोटो बोले ४ कुडा तोला कुडा मापा करे।

मनुष्य को आयुष्य च्यार प्रकारे बांधे १ प्रकृति को भद्रिक २ प्रकृतिको विनीत ३ दयाका प्रणाम ४ मद मत्सर भाव करके रहित।

देवता को आयुष्य च्यार प्रकारे बांधे १ सराग संजम २ संजमासंजम ३ बाल तपस्वी ४ अकाम निर्भरा।

च्यार प्रकारे भोगवे १ नारकीरो नारकी पणे २ तिर्यंचरो तिर्यंच पणे ३ मनुष्यको मनुष्य पणे ४ देवताको देवता पणे।

नाम कर्म आठ प्रकारे बांधे, अठाईस प्रकारे भोगवे; नाम कर्मका दोय भेद १ शुभनाम कर्म २ अशुभ नाम कर्म।

शुभ नाम कर्म च्यार प्रकारे बांधे, चवदा प्रकारे भोगवे।

च्यार प्रकारे बांधे १ कायाको शरल २ भाषाको सरल ३ भावको शरल ४ मद मत्सर भाव करके रहित।

चवदा प्रकारे भोगवे १ इट्ठा सद्दा २ इट्ठा रुवा ३ इट्ठा गंधा ४ इट्ठा रसा ५ इट्ठा फासा ६ इट्ठा गइ ७ इट्ठा ठीइ ८ इट्ठा लावणे ९

इट्ठा जसोकित्ति १० इट्ठा उठाण कम्म बल वीर्य पुरिसाकार पराक्रम ११ इट्ठा सरया १२ कांत सरया १३ पियसरया १४ मणुणा सरया।

अशुभ नाम कर्म च्यार प्रकारे बांधे, चवदा प्रकारे भोगवे।

च्यार प्रकारे बांधे १ कायाको बांको २ भाषाको बांको ३ भावको बांको ४ मद मत्सर भाव करके सहित।

चवदा प्रकारे भोगवे १ अणीट्ठा सद्दा २ अणिट्ठा रुवा ३ अणिट्ठा गंधा ४ अणिट्ठा रसा ५ अणिट्ठा फासा ६ अणिट्ठा गइ ७ अणिट्ठा ठीइ ८ अणिट्ठा लावणे ९ अणिट्ठा जसोकित्ती १० अणिट्ठा उठाण कमवल वीर्य पुरिसाकारपराक्रम ११ हीण सरया १२ दीण सरया १३ अपियसरया १४ अमणुणा सरया।

गौत्र कर्मसोले प्रकारे बांधे सोला प्रकारे भोगवे; गौत्र कर्मका दोय भेद १ उच्च गौत्र २ नीच गौत्र।

उच्च गौत्र आठ प्रकारे बांधे, आठ प्रकारे भोगवे; आठ प्रकारे बांधे १ जाइ अमपण (जातिको मद नहीं करे) २ कुल अमपणं (कुलको मद नहीं करे) ३ बल अमपण (बल को मद नहीं करे) ४ रुव अमपण (रूपको मद नहीं करे) ५ तव अमपणं (तप को मद नहीं करे) ६ सुय अमपण (सुत्रको मद नहीं करे) ७ लाभ अमपणं (लाभ याने फायदाको मद नहीं करे) ८ इसरिय अमपण (ठुकराई याने बड़ापणा को मद नहीं करे।

आठ प्रकारे भोगवे याने इन आठ प्रकारका मद नही करे तो उच्चगौत्र पावे।

नीच गौत्र आठ प्रकारे बाधे, आठ मकारे भोगवे।

आठ प्रकारे बांधें १ जाइ मएणं (जातिका मद्करे) २ कुलमएणम (कुलका मद् करे) ३ बल मएणं (बलका मद् करे) ४ रुव मएणं (रूप का मद् करे) ५ तव मएणं (तपका मद् करे) ६ सुय मएणं (सुत्रका मद् करे) ७ लाभ मएणं (लाभ याने फायदाको मद् करे) ८ इस्सरिय मएणं (ठकुराइ याने बडापना को मद् करे)।

आठ प्रकारे भोगवे याने इन आठका मद् करे तो नीच गोत्र पावे।

अन्तराय कर्म पांच प्रकारे बाधे, पांच प्रकारे भोगवे।

पांच प्रकारे बांधे १ दानान्तराय (दान की अन्तराय देवे) २ लाभान्तराय (लाभ याने फायदो होवे तो अन्तराय देवे) ३ भोगान्तराय (भोग की अन्तराय देवे) ४ उपभोगान्तराय (उपभोग की अन्तराय देवे) ५ वीर्यान्तराय (वीर्यकी अन्तराय देवे)

पांच प्रकारे भोगवे याने इन पांचोकी अन्तराय देवे तो अन्तराय पावे, अतराय नहीं देवे तो अंतराय नहीं पावे।

आठ कर्म की स्थिति व अवाधाकाल।

ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, अन्तराय कर्म. इन तीन ही की स्थिति ज० अन्तर मोहरत की उ० तीस क्रोडाक्रोड़ सागरोपम की, अवाधाकाल तीन हजार वर्ष को।

वेदनीय कर्मका दोय भेद १ शाता वेदनीय २ अशाता वेदनीय।

शाता वेदनीयकी स्थिति ज० दो समय की उ० पनरा क्रोडा क्रोड सागरोपम की, अवाधाकाल डेढ हजार वर्षको।

असाता वेदनीय की स्थिति ज० एक सागरका सात भाग करना उसमेंका तीन भाग और पलके असंख्यातमें भाग उणी, उ० तीस क्रोडाक्रोड सागरोपमकी, अबाधाकाल तीन हजार वर्ष को।

मोहनीय कर्मकी स्थिति ज० अन्तर मोहरत की उ० सीत्तर क्रोडाक्रोड सागरोपम की अबाधाकाल सात हजार वर्ष को।

आयुष कर्मकी स्थिति।

नारकी, देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष और अन्तर मोहरत अधिक उ० तेतीस सागरोपम और क्रोड पूर्वको तीजो भाग अधिक।

मनुष्य, तिर्यञ्च की स्थिति ज० अन्तर मोहरत की उ० तीन पल्योपम और क्रोड पूर्वको तीजो भाग अधिक।

नाम कर्म, की स्थिति ज० आठ मोहरत की उ० बीस क्रोडा क्रोड सागरोपम की अबाधाकाल दो हजार वर्ष को।

गौत्र कर्मकी स्थिति ज० अन्तर मोहरत की उ० बीस क्रोडा क्रोड सागरोपमकी अबाधाकाल दो हजार वर्ष को।

:※:-:※: इति कर्म प्रकृति सम्पूर्णम :※:-:※:

॥ कषाय पद ॥

सुत्र श्री पन्नवणाजी पद चवदमें में कषाय को थोकड़ो चाले सो कहे छे।

समुच्चय जीव चोवीस दण्डक में कषाय पावे च्यार १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ।

(१) च्यार कारणसे क्रोध करे १ आयपयठीये कहेता आपरे उपर क्रोध करे २ परपयठीये कहेता (पराया) दूसराके उपर क्रोध करे ३ तदुभयपयठीये कहेता आपरे तथा परायाके उपर दोनों के उपर क्रोध करे ४ अपयठीये कहेता किसीके उपर क्रोध करे नहीं।

(२) च्यार प्रकारे क्रोधकी उत्पत्ती होवे १ खेतु कहेता उघाड़ी वस्तुसे (खेत, उघाड़ी जमीन इत्यादिक) २ वत्थु कहेता ढकी हुई वस्तुसे (मकान इत्यादिक) ३ शरीर कहेता शरीरके अर्थे (वास्ते) ४ उपधि कहेता भंड उपगरण वस्त्रादिकसे।

(३) च्यार प्रकारको क्रोध १ अन्तानुबंधीको क्रोध २ अप्रत्याख्यानीको क्रोध ३ प्रत्ययाख्यानीको क्रोध ४ संजलको क्रोध।

(४) च्यार ठीकाणे क्रोध रह्यो १ आभोग कहेता जाणता थकां क्रोध करे, २ अणाभोग कहेता अजाणता थकां क्रोध करे ३ उपसम कहेता आया हुवा क्रोधको उपसमावे ४ अण उपसम कहेता आया हुआ क्रोधने नहीं उपसमावे।

ये सोले प्रकारको क्रोध समुच्चय जीव और चोवीस दण्डक ये पच्चीस पर गीणत्रा से ४०० भेद हुआ। (१६×२५=४००)

जीव क्रोध करीने आठ कर्म चीण्या २ उपचीण्या ३ बांध्या ४ उदेरया ५ वेद्या ६ निर्भरया ये छव बोल गये काल आश्री, छव बोल वर्तमान काल आश्री, छव बोल आवता काल आश्री; ये अठारे बोल एक जीव आश्री, अठारा घणा जीव आश्री ये ३६ (छत्तीस) बोल समुच्चय जीव, तथा चोवीस दण्डक इन पच्चीस पर फेरनेसे ९०० भेद हुआ, उपरका ४०० और ये ९०० मिलानेसे ये १३०० भेद क्रोधका हुया, १३०० क्रोधका कहा उसी तरह १३०० मानका १३०० माया का १३०० लोभका ये कुल ५२०० भेद च्यार कषायका हुवा।

* इति कषाय पद सम्पूर्ण *

छोटी गतागत

सुत्र श्री पन्नवणाजीका छट्ठा पदमे छोटी गतागत चले ते कहेछे

१ पहेली नारकी में अग्याराकी आगत (पांच सन्नी तिर्यंचका पर्याप्ता पांच असन्नी तिर्यंचका अपर्याप्ता, एक संख्याता काल को मनुष्य कर्माभूमि) छवको गत (पांचसन्नी तिर्यंचका पर्याप्ता, एक संख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य) ।

२ दुजी नारकीरी छवकी आगत (पांच सन्नी तिर्यंचका पर्याप्ता, एक सख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य) छव की गत (पूर्ववत) ।

३ तीजी नारकीमे पांच की आगत (सन्नीजलचर, सन्नी थलचर, सन्नी खेचर, सन्नी उरपर इन च्यारोंका पर्याप्ता, एक संख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य) गत छव की (पूर्ववत)

४ चोथी नारकीमे च्यारको आगत (सन्नी जलचर, सन्नी थलचर, सन्नी उरपर, एक संख्याता कालको मनुष्य कर्माभूमि) छव की गत (पूर्ववत) ।

५ पांचवी नारकी की तीनकी आगत (सन्नी जलचर, सन्नी उरपर, एक संख्याता कालको मनुष्य कर्मा भूमि) छवकी गत (पूर्ववत) ।

६ छट्ठी नारकी की दोय की आगत (सन्नी जलचर, सख्याता कालको मनुष्य कर्मा भूमि) छव की गत (पूर्ववत) ।

(नोट) छवकी गत कही वहां पांच सन्नी तिर्यंचका पर्याप्ता, एक संख्याता कालको मनुष्य कर्मभूमि समझना।

७ सातमी नारकीमें दोय की आगत (सन्नी जलचर, एक संख्याता कालको मनुष्य कर्माभूमि, (स्त्री वेद वर्ज्यो) पांचकी गत (सन्नी तिर्यंचका पर्याप्ता)

८ पच्चीस भवनपति, छाबीस वाणव्यन्तर, ये एकावन जाति का देवताकी सोलाकी आगत (पांच सन्नी तिर्यंच, पांच, असन्नी तिर्यंच, एक संख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य असंख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य, तीस जातिका अकर्मा भूमि मनुष्य, छप्पन जातिका अन्तरद्वीपा, खेचर जुगलिया, थलचर जुगलिया) नव की गत (पांच सन्नी तिर्यंच, संख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य, पृथ्वी, पाणी, वनस्पति)।

९ ज्योतिषी, पहेला, दुजा, देवलोककी, नवकी आगत (पांच सन्नी तिर्यंच, संख्याता कालको मनुष्य कर्माभूमि, असंख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य, तीस अकर्माभूमि मनुष्य, थलचर जुगलिया) नोट—"अकर्माभूमि मनुष्य असंख्याता कालका होवे है" नवकी गत (पांच सन्नी तिर्यंच, संख्याता कालको कर्माभूमि मनुष्य, पृथ्वी, पाणी, वनस्पति)।

१० तीजा देवलोकसे आठमां देवलोक तक छव की आगत (पांच सन्नी तिर्यंचका पर्याप्ता, संख्याता कालको मनुष्य कर्माभूमि) छव की गत (आगत माफिक)।

११ नवमां देवलोकसे बारमां देवलोक तक च्यार की आगत

(मिथ्याद्रष्टी गोशाला मति, अवृत्ति सम्यक्त्वद्रष्टी, देसवर्त सम्यक्त्वद्रष्टी, सर्ववृत्ति सम्यक्त्वद्रष्टी) गत एककी (संख्यात कालको मनुष्य कर्माभूमि)।

१२ नव ग्रीवेदमें दोयकी आगत (मिथ्याद्रष्टी लिङ्ग साधु को, सम द्रष्टी लिङ्ग साधुको) गत एककी (संख्याता काल को मनुष्य कर्माभूमि)।

१३ पांच अनुत्तर विमाणमें दोयकी आगत (ऋद्धीपता अप्रमादी, अऋद्धीपता अप्रमादी) गत एकको (संख्याता कालको मनुष्य कर्माभूमि)।

१४ पृथ्वी, पाणी, वनस्पति की चोहत्तरकी आगत-छीयांलीस तिर्यंचका (पृथ्वीकायका च्यार भेद, अपकायका च्यार भेद, तेउकायका च्यार भेद, वाउकायका च्यार भेद, वनस्पतिकाय का च्यार भेद (सुक्ष्म, वादर, पर्याप्ता, अपर्याप्ता) ये एके न्द्रीका वीस; छव विकलेन्द्रीका (वेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री, इन तीनका पर्याप्ता, अपर्याप्ता) वीस तिर्यंच पञ्चेन्द्रीका (जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, भुजपर, ये पांच सञ्ञी, पांच असञ्ञी, इनका पर्याप्ता, अपर्याप्ता ये वीस) ये कुलछीयांलीस भेद तिर्यंचका; तीन मनुष्यका (सञ्ञी मनुष्यका पर्याप्ता, अप-र्याप्ता, असञ्ञीका अपर्याप्ता) छीयांलीस तिर्यंचका, तीन मनुष्यका ये ४९ की लड़ी; दस भवनपति, आठ वाणव्यन्तर पांच ज्योतिषी, पहेलो देवलोक, दुजो देवलोक ये कुल चोह-तर। गत गुणचासकी लड़ी को (उपर कहि उस माफिक)

१५ तेउ, वाउ, मे आगत गुणचास को (उपर लड़ी कही जोकी) गत छीयालीस की (तिर्यंचका ४६ भेद उपर कहा जीके माफिक)

१६ तीन विकलेन्द्री (बेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री) की आगत गुण-चास की लड़ीकी (उपर कही जकी) गत गुणचास की (उपर कही जकी)।

१७ तिर्यंचमें आगत सीत्यासी की, ४६ की लड़ी (उपर कही जकी) ३१ प्रकारका देवता (१० भवनपति ८ वाणव्यन्तर ५ ज्योतिषी ८ देवलोक "पहेला देवलोकसे आठमां देवलोक तक") ७ नारकी, ये सीत्यासी। गत वाणवे की सीत्यासी तो आगत मुजब, असंख्याताकालकी कर्माभूमि मनुष्य, ३० अकर्माभूमि, छपन अन्तरद्वीपा, थलचर जुगलिया, खेचर जुगलिया ये वाणवे।

१८ मनुष्यकी आगत छनवेंकी ४१ की लड़ी (४६ की लड़ीमेंसे आठ तेउ, वाउका वर्ज्या) ४९ भेद देवताका (१० भवनपति ८ वाणव्यन्तर ५ ज्योतिषी १२ देवलोक ६ ग्रीवेर्द ५ अनुत्तर वेमाण) छव नारकी (पहेलीसे छठ्ठी तक) ये छनवे। गत एक सो इग्यारा की—४६ की लड़ी, ४६ जाति का देवता, ७ नारकी, असंख्याताकालकी कर्माभूमि मनुष्य, अकर्माभूमि, अन्तर द्वीपा, थलचर जुगलिया, खेचर जुगलिया, और मोक्ष गति ये एक सो इग्यारा।

* इति छोटी गतागत का अठारे बोलसम्पूर्णम् *

सवैया

अपने स्वार्थ धन देत हैं, शकल दिशाके लोग ।
परहितमें जो देतहैं वही प्रशंसा योग ॥
या धनकी गति तीन है, दान भोग अरुनास ।
दान भोगमें ना लगे, तो निश्चय होय विनास ॥
वो विरलो संसार, नेह निरधनसे पाले ।
वो विरलो संसार, लाभ और खर्च संभाले ॥
वो विरलो संसार, दीठा करे अदीठा ।
वो विरलो संसार, जीभसे बोले मीठा ॥ १ ॥
आपो मारे हरि भजे, तन मन तजे विकार ।
औगुण उपर गुण करे, वो विरलो संसार ॥ २॥

सुबोल

मोटा वो जो जाणे पर पीड, धनवंत वोजो भांजे भीड़ ।
पण्डित वो जो न आणे गर्व, ज्ञानी वो जो जाणे सर्व ॥
पक्षी वो जो तिर्थंकर तणी, मति वो जो उपजे आपणी ।
समकित वो जो सांचु गमे, मिथ्या वो जो भूल्यो भमे ॥
कामी नर वो कहिये अन्ध, मोह जाल वो मोटो फंद ।
मित्र खरो वो श्रीनवकार, देव खरो वो मुक्ति दातार ॥
आज्ञा वो जहां कही दया, मुनिवर वो जो पाले क्रिया ॥
संतोषी वो जा सुखियाथया, दुःखीया वो जो लोभे फस्या ॥

तृष्णा समान व्याधी नहीं, झूठ समान डर नहीं ।
चिन्ता समान दुःख नहीं, विश्वासघात समान पाप नहीं ॥
आलस्य समान शत्रु नहीं, संतोष समान सुख नहीं ।
सत्संग समान साधन नहीं, शियल समान सिणगार नहीं ॥
दया समान धर्म नहीं, उद्यम समान मित्र नहीं ।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

सेवंभते सेवंभते गौतम बोले सही श्री महावीरके वचनमें कुछ संदेह नहीं । जेसा लिखा हुआ देखा, वांच्या या सुण्या, वैसा ही अल्प बुद्धिके अनुसार लिखा है. तत्व केवली गम्यम् । अक्षर, पद, ह्रस्व, दीर्घ, कानो, मात, मिंडी, ओछो, आधिको, आगो पीछो, अशुद्ध पणे लिख्यो होय व कोई तरहकी छपानेमें ज्ञाना दिक की विराधना कीनो होय तो सकल श्री संघके साखसे मन वचन काया करी मिच्छामि दुक्कडं ।

---

* इति द्वितीय भाग समाप्तम् *

॥ महावीरं वंदे ॥

॥ प्रातःस्मरणीय ॥

॥ स्तवनावली ॥

संग्रहकर्त्ता

हरखचंद निहालचंद गदीया

मु- बेलापुर जी- नगर

प्रगटकर्त्ता

सौ० केसरबाई जवेरी अमृतलालरायचंद

की धर्मपत्नी

तथा

चंपाबाई स्वर्गीय जवेरी रतनचंद

गगलचंद की धर्मपत्नी

संवत् १९८४ आसोज सुदि ५

पंचमआवृत्ति

(मूल्य नित्य पठन)

॥ श्री ॥

ोइ जीव चाहत दारिद्र्यहर जवाहर को,

कोइक कंगाल मालामाल होवे लाल को।

ार मेरे दिल में न चाह जड़ जवाहर की,

चाहता न नेक यह विघ्नमूल लाल को।

मगर सुकृत मैंने कभी कोई किया हो तो,

चाहता हूँ बदले में जवाहरलाल को।

इस पूज्यपाद के पवित्र पदपङ्कज में,

"हरख" समेत रखता हूँ निज भाल को।

श्री वर्धमानजिनं वंदे.

मंगलाचरण.

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमः प्रभुः ॥
मंगलं स्थूलिभद्राद्या जैनधर्मस्तु मंगलं ॥ १ ॥

अथ मंगलाष्टक (छंद)

(चाल—नमो अनंत चोविसी)

ब्राह्मी शुभ मुहूर्त, उठो प्रातःकाल, मंगलाष्टक जपते, कष्ट टले तत्काल। रिषभादि जिनवर, चोविसों जिनराज, मुझ मंगल देते, मिले सभी सुखसाज ॥१॥ नाभिराजादि, तीर्थंकर सब तात, मंगलकर होवो, रिद्धि सिद्धि मुझहात। मरु देवी त्रिशला, चतुरविंश जिन-मात, मंगल मुझकरती, टले मेरी दुखघात ॥२॥ वससेणाजी गौतम, आदि गणधरराज, श्रुतकेवलीके-

बल, हो शुभमंगल काज । लब्धितपधारी, सती संत-महाराज, निर्मलमनसुमरे, पावे मंगलराज ॥ ३ ॥ ब्राह्मीचंदनादि, सोले सती सिरताज, शरणा मैं पाया, खुले भाग्य मुझ आज । जिननामप्रसादे, मंगल मुझ भरपूर, चक्रेश्वरी आदि, करती मुझ दुखदूर ॥ ४ ॥ जिनधर्मप्रभावे, यक्षादि अनुकूल, समदृष्टि देव मुझ करते मंगल मूल । धनधान्य संपदा,मुझघर निधीसार, विघ २ सुख देखुं, भरा रहत भंडार ॥५॥ चिंतामणि सम यह, पूरे मंगल आस, रोग शोक दलिदर, मिटे सभी मुझ त्रास । यह कल्पतरूपम,महिमा अपरंपार, मंगलफल प्रसवे,वरते मुझ जयकार ॥६॥ यह कामधे-नुवत्, पारस सम सुखकार,मुझ हृदयकमल में, हूवा सुखसंचार । यह चंद्रकिरणसम, चित्तचकोर सुहाय, देखी दुश्मनखल, पडते सब मुझ पाय ॥७॥ इस के शुभ तेजे, जहीं कहीं में जाऊं,घरलक्ष्मीलीला, मनमाने सुख पाऊं । मंगलाष्टक जपते, वरते मंगलमाल,तास-गांव वसंते गावे घासीलाल ॥८॥

॥ ध्यानाष्टक ॥

अद्य मे विगतं पापं । कषायो विवशोऽभवत् ॥ रोगाद्यजगरा नष्टाः । जिनेंद्रा ध्यानतस्तव ॥१ ॥ यथा

सुरतरोः संगाद्दारिद्र्यं प्रपलायते। अस्तं गच्छन्ति दुःखानि। जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥२॥ ऋते रवे रुचो ध्वान्तं। हन्ति कोऽपि न सर्वथा। सर्वकर्माणि नश्यन्ति। जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥ ३ ॥ अद्य मिथ्यातमिस्रं मेऽजस्रं दुःखप्रचारकम्। नष्टं कष्टं सहस्रांशो! ॥ जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥४॥ आश्रवाः प्रलयं याताः, संवरा उदिता मयि। भोगा विषमिवाऽऽभान्ति। जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥५॥ आत्मक्षेत्रे गुणा देव!, म्लाना मूलोत्तराख्यकाः। ते सर्वे हरिता जाता जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥ ६ ॥ बोधिधेनुर्ममाद्यैव, समुत्तीर्णेष्टपूरणी। भव्यराजीव सूर्यस्य। जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥ ७ ॥ दीनस्य निधितोऽन्धस्य, नेत्राद् भिक्षोश्च राज्यतः। यथा सौख्यं तथाऽस्माकं। जिनेंद्र! ध्यानतस्तव ॥ ८ ॥

वसंततिलकावृत्तम्–

॥ सुस्तोत्रमेतदनुवासरमानताङ्गो,
भक्त्या पठेज्जिनपदाम्बुजलग्नया यः॥
ध्यानोद्भवां स समुपैति विशेषलक्ष्मी–
मित्थं प्रवक्ति च जवाहिरलालयोगी॥ १ ॥

महावीर स्वामीका स्तवन.

श्रीमहावीर स्वामीकी सदा जय हो; सदा जय। टेर।

पवित्र पावन जिनेश्वरकी, सदा जय हो सदा जय हो, तुम्ही हो देव देवन के,तुम्ही हो पीर पैगंबर,तुम्ही ब्रह्मा तुम्ही विष्णू॥ स० ॥१॥ तुम्हारे ज्ञान खजाने की,महिमा बहुत भारी है , लुटाने से बढे हरदम ॥ स० ॥२॥ तुम्हारी ध्यान मुद्रासे, अलौकिक शांति झरती है, सिंहभी गोदपर सोते ॥ स० ॥३॥ तुम्हारी नाम महिमासे जागती वीरता भारी ॥ हटाते कर्म लष्करको ॥ स० ॥४ ॥ तुम्हारा संघ सदा जय हो; मुनि मोतीलाल सदा जय हो॥ जवाहिरलाल पूज्य गुरुराय, सदा जय हो ॥ स० ॥ ५ ॥ इति ॥

पार्श्वप्रभु का स्तवन,

मंगल छायाजी म्हारे प्रार्श्वप्रभुजी मन में आयाजी ॥ टेर ॥ फटिक सिंहासन आप विराजे, देव दुंदुभी बाजेजी ॥ इंद्राणियां मिल मंगल गावे, यश जिन गाजेजी ॥ मं० ॥ १ ॥ चामर छत्र पुष्प की वृष्टि, भामंडल चमकावेजी ॥ अशोक वृक्ष शीतल छायातल भवी सुख पावेजी ॥ मं० ॥ २ ॥ सागर क्षीर का नीर मधुर अति, रसायन अधिक सुहावेजी ॥ अमृत से अति मधुरी वाणी,प्रभु वरसावेजी ॥ मं० ॥ ३ ॥ नम्र देवता मुकुट हरितमणि, किरण चरण जिन छावेजी ॥

अजिय छटा मृग तृणहि समज, जिन चरणे लुभावेजी ॥ मं० ॥ ४ ॥ सिंहनाद करे यदि योद्धा वृंद,सुन हस्ती घबरावेजी ॥ सिंहाकार नरपीठ लिखित, हस्ती रोग मिटावेजी ॥ मं० ॥५॥ तैसे प्रभु के नाम को सुन मेरे, विघ्न सभी भग जावेजी, रिद्धि सिद्धि नवनिधी संपदा। मुझ घर आवेजी ॥ मं० ॥६॥ आप नाम मेरे घर में मंगल, बाहिर मंगल वरतेजी ॥ सदाकाल मेरा सुखमें बीते, वांछित करतेजी ॥ मं० ॥७॥ कामधेनु मुझे अमृत पिलाती, सुखसिद्धि प्रगटावेजी ॥ चिंतामणि मुझ हाथ चढा है, चिंता जावेजी ॥ मं० ॥८॥ बालसूर्य तमअंकुर कल्पतरु, सब दारिद्र्य मिट जावेजी ॥ वैसे आप के नाम मात्र से, दुख टल जावेजी ॥ मं० ॥ ९ ॥ ॐ ॥ ह्रीं श्रीं कामराज क्लीं जप में सबसुख पायाजी । मोतीलाल मुनि जवाहीर· लाल पूज्य, चित्त सुहायाजी ॥ मं० ॥१०॥ उगणीसे अष्टोत्तर साल में तासगांवमे आयाजी ॥ घासीलाल मुनि गद्दी पडिवा दिन, मंगल पायाजी ॥ मं० ॥११॥

गौतम स्वामी का स्तवन

मंगल वरतेजी म्हारे गौतम गणधर, मन में बसतेजी ॥ टेर ॥१॥ धन्ना शालिभद्रकी ऋद्धि,और अष्ट-

महासिद्धीजी, गौतम नाम से प्रगटे म्हारे, नवविध निधिजो ॥ मं. ॥२॥ लब्धि के भंडार ज्ञान के गौतम हे आगारेजी, आप नाम म्हारे सबसुख वरते मंगलाचारेजी ॥ मं. ॥३॥ आप नाम अति आनंदकारी ॥ चिंता दुःख झट भाजेजी, सुख संपत का मंगलवाजा, मुझघर वाजेजी ॥ मं. ॥४॥ नाम कल्पतरु म्हारे आंगन, दारिद्र्य भग जावेजी, मनवांछित म्हारे रिद्धि संपदा, घर में आवेजी ॥ मं. ॥ ४ ॥ अमृतकुंभ मैं पाया चिंतामणि, दुःख गया रुव भागीजी; अमृतसम मीठे गौतम तुम, मनशा लागीजी ॥ मं. ॥ ५ ॥ मन कमल तुमनाम हंस है, बेठा अति सुखकारेजी, हर्षित प्राण हुवे सब मेरे, अपरंपारेजी ॥ मं. ॥ ६ ॥ किसी बात की कमी न मेरे, गौतम गणधर पायाजी, तीन लोककी लक्ष्मी मुझ घर, वास वसायाजी ॥ मं. ॥ ७ ॥ मोतीलाल मुनि श्री. श्री. जवाहीरलालजी मन भायाजी, छटेपाटपर आप विराजे, मंगलछायाजी ॥ मं. ॥ ८ ॥ समत उगनीसे साल मितहंतर शहर सतारे आयाजी, घासीलालमुनि सप्तमी सावण, गुरुशुभ पायाजी ॥ ९ ॥

शांतिनाथजी का स्तवन.

शाता वरतेजी श्रीशांतिनामसे, मम मन हर्षेजी,

शातावरतेजी ॥ शांति नाम है कल्पतरुसम, मनवांछितफल पावेजी ॥ रोग शोक दालिदर चिंता झट मिट जावेजी ॥ शा. ॥१॥ मेघ पानी से जंबू वृक्षका सब फल जो गल जावेजी, वैसे आपके नाम जपनसे दुख टल जावेजी ॥शा. ॥ २ ॥ मनके लिये जैसे मेरु आदिक, दूर कभी नहिं भासेजी, आपनामसे ऋद्धि संपदा, आवे पासेजी ॥ शा. ॥ ३ ॥ सागरक्षीर समंदर मीठो, रसायन अमृत मीठोजी, इनसे अधिको मीठो शांति जिन, नामज दीठोजी ॥ शा.॥ ४ ॥ आप नाम दिवाली दसरो, सुखसंपतके दाताजी, आप नाम धन तेरस म्हारे; घरमें शाताजी ॥ शा. ॥ ५ ॥ शांति नामसे म्हारे घरमें, अति आनंद जो छावेजी, लक्ष्मी देवी म्हारे घरमें दौडी आवेजी ॥ शा. ॥ ६ ॥ आप नाम चिंतामणि पावे, चिंता सब भग जावेजी ॥ कामधेनु म्हारे आंगन दूझे, सबसुख आवेजी ॥ शा. ॥ ७ ॥ संमत उगणीसे साल छियंतर; चिंचवड गांवमें आयाजी ॥ कार्तिक मास धनतेरस दिनमें, हर्ष वधायाजी ॥ शा . ॥ ८ ॥ मोतीलाल मुनि मोहन-मूरत, युवाचार्य सुखकारेजी ॥ घासीलाल मुनि, वंदन करता बारंबारे जी । शा. ॥ ९ ॥

पार्श्वनाथ प्रभुका स्तवन

पारसप्रभु तुमनाम पारस पाया। म्हारे घरमें मंगल छाया ॥ पा. ॥ टेर ॥ आप बसे मेरे मनमें प्रभुजी चिंताजालको दूर भगाया ॥ पा. ॥ १ ॥ पगपग पाया निधान प्रभु मैं। रस कुंभिका मन हुलसाया ॥ पा. ॥ २ ॥ क्षीरसमुद्रका नीर पिया जिमि। मैं अमृत पी हर्षाया ॥ पा. ॥ ३ ॥ नाम चिंतामणि कल्पतरूसम ॥ नवनव होत वधाया ॥ पा. ॥ ४ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं ऐं. नाम मिलाकर। जप मैं रिद्धिसिद्धिघरपाया ॥ पा. ॥ ५ ॥ घरमें मंगल बाहेर मंगल। भरारहत भंडार सवाया॥ पा. ॥ ६ ॥ नाममंत्रसे डाकण साकण, भागे दुश्मन पडे मुंज पाया ॥ पा. ॥ ७ ॥ सित्तहत्तरसाल शिष्य घासीलाल। शहर सतारे आया ॥ पा. ॥ ८ ॥ मावण तेरस मोतीलाल मुनिजी । जवाहिरलाल पूज्य शुभदाया ॥ पा. ॥ ९ ॥

शान्तिनाथ प्रभुका स्तवन.

शांति जिनेश्वर शाताकारी, मुझ तन मन हितधारी ॥ टेर ॥ शांतिनाम मुझ तनमें अमृत-रस सम है सुखकारी, मनकी वेदना गई सब मेरी, मुझ तन है

अविकारी ॥ शांति ॥ १ ॥ रोम रोममें हर्ष भरा मेरे, जो चाहूं घरद्वारी, फला कल्पतरु निज आंगन प्रभु, खुली मुझ सुख गुलक्यारी ॥ शां. ॥ २ ॥ आत्मध्यान प्रगटा मुझ तनमें, मिटी दशा अंधियारी, गगन चंद्र संयोग मिटाता, निजगत तम जिमभारी ॥ शांती ॥ ३ ॥ ॐ ह्री ँ त्रैलोक्य वशं कुरु कुरु शांति सुखकारी, इसविध जाप जपे जिनवरका, कोटि विघ्न निवारी ॥ शांति ॥ ४ ॥ डाकिनी साकिनी तस्कर आदि, भागत भय परपारी, पिशुन मान मर्दन मेरे प्रभुजी, सेवक नवनिध धारी ॥ शांति ॥ ५ ॥ पूज्य जवाहिरलाल विराजे, छठे पाट सुखकारी, घासीलाल गुरुवार ज्येष्ठमें, पारनेर किया त्यारी ॥ शांति ॥ ६ ॥

शांतिनाथ भगवान का स्तवन.

संपत पायाजी म्हारे शांति नाम से, सबसुख छायाजी; लक्ष्मी पायाजी, म्हारे शांति नाम नव निधे घर आयाजी ॥ टेर ॥ आप पधारे गर्भवास, तीनों लोकमें बहू सुख छायाजी, माता महल चढी निरखे नाथ, मृगिमार मिटायाजी ॥ सं. ॥ १ ॥ शांति करी सब शांति नाम प्रभु, महावीरजीने गायाजी ॥ अमृत

सम भावे हृदय कमलमें, आप सुहायाजी ॥ सं. ॥ २ ॥ शांति नाम चिंतामणी मुझघर, वांच्छित सर्व सुख करतेजी ॥ लक्ष्मीसे भंडार प्रभूजी, मुझघर भरतेजी ॥ सं. ॥ ३ ॥ गरूडपत्ती सम शांति नाम, मुझ घर हृदयमें बसतेजी, दुःख रोग सम भुजंग भागते मंगल वरतेजी ॥ सं. ॥ ४ ॥ शांति नाम मैं पाया तभी से, मुझघर अमृत वरषेजी, मंगल बाजा मुझ घर बाजे, मुझ मन हरषेजी ॥ सं. ॥ ५ ॥ चिंतामणि पुनि कामधेनू मुझ, आंगन दूध पिलावेजी, मुझ घर नवनिध पारस प्रगटे, संपत आवेजी ॥ सं. ॥ ६ ॥ ॐ ह्रीँ त्रैलोक्य वशं कुरु कुरु मुझ कमला आवेजी ॥ दिन दिन मुझ घर सब सुख वरते दुश्मन जावेजी ॥ सं. ॥ ७ ॥ शांति नामसे जहाँ जाता मैं, काम सिद्धकर आताजी, सुखही सुख में देखूं निश दिन शाता पाताजी ॥ सं. ॥ ८ ॥ शांति नामको जो नर गावे, रोग शोक मिट जावेजी, राज लोकमें महिमा मंत्र जप, सुख घर पावेजी ॥ सं. ॥ ९ ॥ मोतीलाल मुनि पूज्य जवाहिरलाल मुनि मन भावेजी, सदाकाल दीवाली मुझघर, सब सुख आवेजी ॥ सं. ॥ १० ॥ संवत उगणीसे साल अठोत्तर, चारोली सुख पायाजी, घासीलाल मुनि दीवाली दिन, मन हर्षायाजी ॥ ११ ॥

॥ अथ सर्वसिद्धिप्रदं स्तोत्रम् ॥

विमल सयल मणोहरं, नमिऊणं चरणं जिनवराणं ॥
घइस्सं तणुतणुत्तं, सुद्दसिद्धिं भविहियट्टाए ॥ १ ॥
ॐ ह्रीँ श्रीँ उसभो सिर- मवउ ॐ ऐँ क्रोँ
वि अजिओ भालं, ॐ श्रीँ संभवो नेत्तं पाउ सया
सव्वसम्मदो य ॥ २ ॥ घाणिंदियं सव्वया, ॐ ह्रीँ
श्रीँ क्लीँ सिरि अभिनंदणो ॥ वच्छअं पाउ सुमई
ॐ , कण्णं ॐ ब्लौँ च पउमप्पहो ॥ ३ ॥ कंठसं-
धि तु रक्खउ,ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ सुपास जिणवरो
मे ॥ खंधं पुण पाउ मज्झ, ॐ ह्रीँ श्रीँ जिणचंद-
प्पहो ॥ ४ ॥ ॐ क्रोँ सुविधि बुद्धि, अवउ सिज्जंस
वासुपुज्जो करजं ॥ विमल- जिणो उयरं मे ॐ ह्रीँ
श्रीँ वण्णसंकलिओ ॥ ५ ॥ ॐ ह्रीँ धम्मो जंघ
पिट्ठ मल्लि मल्लिकुसुमकोमलो ॥ सदय मुणिसुव्वयो
हियं, कुंथू करे गीवं अरो श्रीँ ॥ ६ ॥ ॐ आँ श्रीँ
नमी कक्खं नासा रोगं हरउ ह्रीँ श्रीँ नेमी ॥ अणंत
पासो गुज्झरोगं ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ सुकलियो
॥ ७ ॥ ॐ श्रीँ तिल्लोकवसं, कुरु कुरु वद्धमाणो महा-
वीरो ॥ सव्वमंगलसुहकरो चिंतामणि सुरतरुव्व
फलओ ॥ ८ ॥ सव्वे जिणगणहरा, अंगरोमाइं मज्झ

रक्खंतु ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ सीयल पहु, सव्वसत्तु चयं सिढिलं कुरु ॥ ९ ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ह्रीँ, संती सुयसंपयं मज्झ कुणउ समिद्धिं॥ ॐ ह्रीँ ऐँ मंदरपमुहा होंतु कामधेणु व्व ॥ १० ॥ पुज्ज जवाहिरसालो गुणविसालो गणप्पहू गरिमो य ॥ तउ सव्व सिवमंगलं भवउ मज्झाणं जिण गुरुचंदो ॥ ११ ॥

यह स्तोत्र १०८ अथवा २७ बार प्रातः काल निरंतर जपना चाहिये.

अथ गृह (घर) शान्ति स्तोत्रम् ॥

संति सुधा वरिसकरं, गुण रयणरोहणाचलं सव्वन्नुं मणोहरं सोक्खधरं, नमंसामो सार आलयं ॥ १ ॥ ॐ ली ँ श्राँ नेमी मज्झ, गेहं सुहसिद्धीया परि आलउ॥ क्रैँ आगच्छह संनिहि, संभवो ॐ ह्रीँ श्राँ सुहदो ॥ २ ॥ पुत्तकलत्तगिहमूहं, पाउ ॐ क्लौँ क्लौँ ह्राँ सुविहिणाहो । धणमणि कुडुंब बाहू, अवउ सव्वविग्घसंहतीउ ॥ ३ ॥ ॐ ॐ श्रीँ धम्मपहू, हियय कुच्छि रक्खउ निगेतणस्स । दयउ दासाइ चलणे ॐ क्रौँ श्रीँ संति किवालवो॥ ४ ॥ पिट्ठत्तो अणंत जिणो ह्राँ ह्रूँ ॐ श्रीँ वण्णावलिगुत्तो । ॐ श्रीँ क्रोँ मुणि सुव्वओ, पुरओ रक्ख रक्ख केवल विउलो

॥ ५ ॥ ॐ ह्रीँ क्रॉ क्रीँ ह्लूँ ह्लाँ, नमोत्थु ककुहत्तो पाउ गिहं। रक्ख रक्ख ह्रूँ अजिओ, पायालेहिं सुहणिहिं कुणउ ॥ ६ ॥ चंदत्तो निम्मलयरु, ॐ ह्रीँ चंदप्पहू प्पयासे करउ ॥ ॐ ऐँ श्रीँ क्लौँ क्लीँ ह्लौँ, उसभो रक्खउ विदिसत्तो मे ॥७॥ ॐ ह्रीँ सुपास जिणो, सास कास सूलस्स सवायाइ, गुज्झरोग कंडु अत्तो, पाउ ॐ श्रॉ श्रीँ विमलजिणो ॥ ८ ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ मल्लिप्पहू सुहमल्लिकुसुमाइं विआसउ मे। दुहदरिद्दं पणासउ, पणवीसयधणुमित्तदेहो ॥ ९ ॥ सचक्क परचक्क भय, छिंदउ ॐ क्रॉ क्रीँ अरो सुहदो य। वद्धमाणो सव्वन्नू, ॐ ह्रीँ श्रीँ सिवलच्छि देउ ॥ १० ॥ सुगई पउमपहो मम, ह्रीँ श्रीँ क्लीँ वणसेणिसंकलिओ विस विसहर सलिलाणं, भयं हरंतु अमरमहिओ ॥ ११ ॥ कप्पतरुवरिवाडियं, नंदण वणसमं मम गिहं कुणंतु। वसुपुज्ज सीयल जिणा, ॐ ऐँ श्रीँ ह्रीँ ह्लूँ सव्वया ॥ १२ ॥ सिज्जंसो ॐ ऐँ श्रीँ, सप्पमिथारि सावयगणे वारउ। ॐ कुंथू रिउं दलउ, आरुग्गं दीहाउसं मे ॥ १३ ॥ डाइणी साइणीओ, रिंकिणी दुट्ठाउ कीलिया होंतु। ॐ ह्रूं फड फड साहा ह्रीँ ह्राँ पास अभिनंदणो य ॥ १४ ॥

विहरमाणा जिणा मुणी जक्खा लोगपाला गहा देवी । पुज्ज जत्राहिरलालो, कप्पतरुव्व इच्छियं फलंतु ॥१५॥

नवग्रहशांति.

गुरुदेवं नमस्कृत्य, ग्रहशांतिं वदाम्यहम् ॥ विधिवज्जपमात्रेण, समाधिं लभते नरः ॥ १ ॥ जन्मस्थानेऽथवा राशौ, ग्रसंति ग्रहराशयः ॥ तदैक भक्तजपतः समाराधयतु खेचरान् ॥ २ ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ ह्रुं ऋषभादि, वर्धमानजिनेश्वराः ॥ रक्षंतु मां सदा देवा, मन्दादिग्रहविघ्नतः ॥ ३ ॥ शनी राहुश्च केतुश्च, कुस्थानं भजते यदा ॥ मुनिसुव्रतनेमीनां, सुखं बीजाक्षरैर्जपात् ॥ ४ ॥ मंगले विमलं ध्यायेत्, गुरौ ध्यायेच्च पार्श्वकम् ॥ शुक्रे सुमतिदेवं च, चन्द्रे चन्द्रप्रभं मुदा ॥ ५ ॥ बुधे सुविधिनाथं च, सूर्येऽरं मनसा जपेत् ॥ शेषा जिनवराः सर्वे, रक्षन्तु मम गात्रकम् ॥ ६ ॥ भाले वामभुजे नाभौ, दक्षिणे करयोः पुनः ॥ पश्चादष्टदले चित्ते, ध्यायेद् बीजैर्जिनेश्वरम् ॥ ७ ॥ रोगशोकौ च दारिद्र्य चित्तविक्षेपकारकम् ॥ आधिव्याधी उपाधिश्च क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ८ ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ ह्रुँ ह्रँ चैतानि, संयोज्य प्रभुनामतः ॥ जपेत् त्रिसंध्यं संगोप्य, चाष्टोत्तरशतं मुदा ॥ ९ ॥ डाकिनीशाकि-

नीतयादि, दुष्टसर्पाश्च सर्वथा ॥ ग्रहैः कृतानि विघ्नानि, नश्यन्ति ध्यानतो जिने ॥ १० ॥ चक्रेश्वर्यादिदेव्यश्च, दिव्यं दीव्यन्तु मेऽनिशम् ॥ देवी काली महाकाली, सानुकूला जिनाऽख्यतः ॥ ११ ॥ ग्रहश्रेणी प्रभुध्याना-दनुगृह्णाति सर्वथा ॥ सप्रतिज्ञं ब्रवीतीदं घासीलालो मुनिव्रतीः ॥ १२ ॥ शनि रवि शशिभौमाः सौम्य जीवौ च शुक्रः, गगनचरगणोऽयं, सिद्धिसौभाग्यसौख्यम् । जिनपतिजपनान्मे तुष्टिपुष्टी ददातु, मम जय विजय स्वाहान्तमों ह्रीँ पुनः श्रीँ ॥ १३ ॥

अथ ग्रहशांति भाषान्तर.

(छन्द)

गुरु देव नमी कहुं, ग्रहशान्ति सुखकार, विधिवत जपनेसे, पावे समाधिसार ॥ १ ॥ जन्मस्थाने राशौ पीडे ग्रहोंकी राश, एक भक्त जपादि, आराधे तव खास ॥२॥ ओँ ह्रीँ श्रीँ ह्रुँ ऋषभादि, वर्धमान जिनराज, शनि आदि विघ्नको, दूर करे महाराज ॥ ३ ॥ शनि राहु केतु जब, दुष्टस्थानमें जावे ॥ मुनि सुव्रत नेमि जपि, बीजवर्ण सुखपावे ॥ ४ ॥ विमलनाथ मंगलमें, गुरुमें पारसनाथ, सुमतिजिन शुक्रे, सोमे चंद्र-प्रभु साथ ॥ ५ ॥ बुधमें जिनसुविधि,रविमें अर जि-

नराज, अवशेष जिनेशा, रखो तनु मुज साज ॥ ६ ॥ भाले भुज बासे, दक्षिण नाभी साथ, कर अष्ट दल चित्ते, जपे बीज जिननाथ ॥ ७ ॥ ओँ ह्रीँ श्रीँ ह्रुँ ह्राँ, बीजसाथ जिननाम, त्रिकाल एकान्ते, अष्टोत्तर शत काम ॥ ८ ॥ रोगशोक दलिद्दर, कफ आदिक दुख दूर, आधिव्याधि उपाधि, विघ्न हुए चकचूर ॥ ९ ॥ डाकिनी साकिनी, दुष्ट सर्प ग्रहरोग, जिनजापसे नाशे, पावे वांछित भोग ॥ १० ॥ चक्रेश्वरी आदि, देती मम सुख साज ॥ काली महाकाली, सानुकूल जिनराज ॥ ११ ॥ धनधान्य संपदा, पावे सौख्य रसाल ॥ जिनध्यानसे ग्रहसुख, गावे घासीलाल ॥ १२ ॥ नवग्रह जिननामे पूरे वांछित आश ॥ अष्टोत्तर अहमद, नगर किया प्रकाश ॥ १३ ॥ इतिशम् ॥

श्री महावीर स्वामी का स्तवन ।

सुखाकर श्री वीर भगवान हैं । सदा जिनकी महिमा प्रभावान है ॥ टेर ॥ सबलों के सहायक सभी नाथ! हैं । अबलों के त्राता जगन्नाथ हैं ॥१॥ विना पानी आत्मा रूपी मीन है । कृपाकर जिलादो हुई दीन है ॥२॥ विना ज्ञान मस्तान हुई जान है । दो ज्ञान मुझ को जगत्प्राण है ॥३॥ किश्ती करो पार मझधार

है। अर्जी यही वस जगत्तार है ॥४॥ मुनि मोतीलाल सुसुखकार है। युवाचार्य करते सदुपकार हैं ॥५॥

पूज्य श्री१००८ श्रीश्री श्री लालजी महाराज का गुणस्तवन।

पूज्य श्रीलाल गुणधारी। सितारे हिन्द में दीपे॥ जपो नर नार तन मन से। सितारे हिन्द में दीपे ॥ टेर॥ तजा संसार जान असार। लिया संयम भार महाव्रत धार। चले संजम में खांडा धार। सितारे हिन्द में दीपे ॥१॥ धन्य आचार्य पद पाये। चतुर्विध संघ दीपाये। पश्चसें पाट शोभाये। सितारे हिन्द में दीपे ॥२॥ आत्मा रूप सोने को। तपस्याग्नि में शुद्ध करके। अतिशय धारि बन करके। सितारे हिंद में दीपे॥३॥ देश विदेश विचर करके। श्रीसंघ रूप बगीचे को। ज्ञान घट शान्ति जल से सींच। सितारे हिंद में दीपे ॥४॥ जहाँ जाते वहाँ लगती धूम। जय २ धर्म की होती। विचर कर आए जैतारन। सितारे हिंद में दीपे ॥५॥ अंतिम वाणी अमी देकर। आषाढ़ सुदि तीज दिन आया। सिधाये स्वर्ग पूज्य श्रीलाल। सितारे हिन्द में दीपे ॥६॥ जपो श्रीलाल गुणमाला। पाप का मुँह होवे काला। दुर्गति के लगे ताला।

सितारे हिन्द में दीपे ॥७॥ कल्पतरु स्थान कल्प तरु ही । हीरे की खान में हीरा । छठे पाट पूज ज्वाहिर-लाल । सितारे हिन्द में दीपे ॥८॥ उन्नीसै साल चौरासी । मास आसाढ़ शनिचर तीज । मुनी घासी-लाल बीकानेर । सितारे हिन्द में दीपे ॥९॥

प्रभाती स्तवन ॥

सभी छोड़ मन जिनवर भजले, प्रात समय सुखकारी ॥टेर॥ काम तुझे है प्रभू ध्यान का, और काम दे टारी । धीरज धर मत डर विषयों से, खड़ा रहे तूं द्वारी ॥१॥ कुमुद रूप तू विकसित होजा, जिनेन्द्र चन्द्र है भारी । आतम स्वरूप सुगंधी प्रगटे, महिमा अपरम्पारी ॥२॥ क्रोधी भुजंग चंडकोशी भी, हुवा विषम विषधारी । प्रभु संगति से सुरपद पाया, हुवा एका भवतारी ॥३॥ मिट्टि पुष्पकी संगति पाकर, होय सुगंधी धारी । यद्यपि दोषी तूं है ध्यानवल, हो जा विगतविकारी ॥ ४ ॥ जीव समुद्र बुद्धि सीप सम, भाव स्वाति हितकारी । ध्यान वृष्टि निज गुण मुक्ताफल, निपजे अनँत अपारी ॥५॥ भ्रमरध्यान से कीट कीटपन, करता दूर निवारी । वैसे ध्यान से प्रभुपद पाकर, पहुँचे मोक्ष मझारी ॥६॥ पूज्य हमारे जवाहिरलालजी

गणिगुण रत्न भंडारी। घासीलाल अब शरणे आया, भव-जल से दो तारी ॥ ७ ॥

॥ प्रभाती ॥

पुण्य उदय नर भव में जिनवर! शरणा तेरा पाया है। सोने में सुगंधी प्रभु जी, आज प्रतक्ष दर्साया है॥ टेर ॥ पारस फरसे लोहा पलटे, कंचन रूप बन जावे है। निर्मल भाव जिन हृदय फरसे, काय कंचन हो जावे है॥१॥ पानी पूर सर्प बिल आते, भुजंग निकल भग जावे है। ध्यान रूप जल आत्म समावे, कर्म भुजंग पलावे है॥२॥ सूर्य तेज वहाँ तिमिर न रहता, चिन्ता-मणि चिन्तित देवे है। जिनवर तेज दुख तिमिर हटावे, सुख सिद्धि मुझ आवे है॥३॥ जिनवर शरण कल्पतरु शीतल,छाया मुझ मन आया है। आधि व्याधि उपाधि मिटाकर,इच्छित गुणनिधि पाया है॥४॥ तुम हो चन्द्र चकोर मैं प्रभु जी, तुम जल मच्छ मुझ काया है। लोहा चुम्बक लगन लगी मुझ, मन तुम चरणे आया है॥५॥ जिस का सीस प्रभू चरणों में, वही अमर पद पावे है। ऋद्धि सिद्धि है दासी उनकी, जग में नाथ कहावे है ॥६॥ तुम चरण बिन कोइ नहीं तिरता, ग्रन्थ पन्थ यति गावे है। नाव बिना नर सिंधू किस विधि, तिरके तट

पर जावे है ॥७॥ प्रथम ध्यान पुनि मनन दूसरे, मौजी लय लगावे है । रेचक पूरक सहजावस्था, सिद्धी जोग जगावे है ॥८॥ पूज्य जवाहिरलाल विराजे, नयाशहर सुख पाया है । घासीलाल दीवालि तियांसी, जिन पद जोड़के गाया है ॥९॥

राग प्रभाती स्तवन ॥

सब सुख वर्तेजी, जिन नाम चिन्तामणि मुझ मन बसते जी । कल्पवृक्ष के तले बैठ जन, वंछित वस्तु पावे जी । नाम कल्प तरु फला है मुझ घर, संपत आवे जी ॥१॥ नाम रूप नन्दन वन में मैं, सब ही आनन्द पाऊँ जी । सभी मनोरथ पूरे करके, दुःख मिटाऊँ जी ॥ २ ॥ जिह्वा देहली नाम रूप मणि, दीपक जोत जगावे जी । बाहर भीतर दुःख रूप अन्धकार मिटावे जी ॥ ३ ॥ नाम समंदर बुद्धि सीप है, भाव स्वाति कहलावे जी । ध्यान वृष्टि सुख मंगल मोती बहु निपजावे जी ॥ ४ ॥ नाम रूप अद्भुत फुलवाड़ी, गुण के फूल फुलावे जी । स्वर्ग मोक्ष के अति मीठे फल, चेतन पावे जी ॥ ५ ॥ नाम मंत्र को जपते मन में, कर्म रिपु भग जावे जी । डाकिन साकिन भूत पिशाचिन, नहीं सतावे जी ॥ ६ ॥ सुख सम्पत अरु

रिद्धी सिद्धी, नाम से मुझ जस गाजे जी। सुख ही सुख का मंगल बाजा, मुझ घर बाजे जी ॥ ७ ॥ पारसमणि को लोहा फरसे, स्वर्ण रूप हो जावे जी। वैसे जिनवर नाम जपन से, प्रभु पद पावे जी ॥८॥ आप नाम से आधि व्याधी, कोई दुःख नहिं आवे जी। सुख निधान मुझ घर में प्रगटा, मन हरषावे-जी ॥९॥ मोतीलाल मुनि पूज्य श्रीश्री, जवाहिरलाल मन भावे जी। छठे पाट पर सूर्य तेज सम, सब जन गावे जी ॥१०॥ सम्वत् उनासी साल त्रिपासी, बेलपूर में आया जी। घासीलाल मुनि दीवाली दिन, मंगल पाया जी ॥ ११ ॥

।चतुर्विंशतितीर्थङ्कर–स्तुति।

(मालिनीवृत्तम्.)

प्रथम **ऋषभनाथः** केवलज्ञानयुक्त.,
सुरवरमुनिवृन्दैः पूज्यपादो **ऽजितश्च**[2]।
निखिलसुरनिकायैः **संभवो**[3] ऽभूत्तृतीयोऽ-
पि च विभुरभिरूर्वा **नन्दनो**[4] ऽऽख्यस्तुरीयः ॥१॥
अथ **सुमति**[5] रुदारः किञ्च **पद्मप्रभो**[6]ऽभूत्.
गुणततिमहितान्तरस्तस्य पार्श्वे **सुपार्श्वः**[7]।

सकलसुखनिदानं वस्तुतः सार्थनामा,
जिनपतिरतिधामा नाम **चन्द्रप्रभ**[8] श्च ॥ २ ॥
सुविधि[9] रथ च धीमान् **शीतलः**[10] शीतलान्तः,
करुणकिरणराशिः **वैष्णुसेनि**[11] * गुणाब्धिः ।
सुरपतिचयपूज्यो द्वादशो **वासुपूज्यो**[12],
विमल[13] इति विशिष्टोऽन्वर्थनामा ततश्च ॥ ३ ॥
स्वविहितजनुरन्तोऽनन्ततेजा **अनन्तो**[14],
विहितभवहितार्थो **धर्मनाथो**[15] यथार्थः ।
निहितनिखिलशान्तिः **शान्तिनाथो**[16]ऽथ **कुन्थुः**[17],
शिवपति **ररनाथो**[18] **मल्लिनाथो**[19] मुनीशः ॥ ४ ॥
अधिभुवि **मुनि** पूर्वः **सुव्रतः**[20] सुव्रतोऽभूत्,
प्रभुरिह **नमिनाथो**[21] **नेमिनाथो**[22] यतीशः ।
कलुषकुलकुठारः **पार्श्वनाथो**[23]ऽस्य पार्श्वे,
समजनि निविडोजा **वर्धमानो**[24] जिनेन्द्रः ॥ ५ ॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम् .

इति महोत्तममहारससौरभो– ल्लसितसद्गुणसूनसमावृताम् ।
श्रयत रे भविनो भ्रमराः! भृश,भवभिदं जिननामलता हिताम् ॥ ६ ॥
गुणगणप्रवणान् भविनो जना–नथ **जवाहिरलाल** मुनिर्गणी ।
विनयितो दयितोऽर्थयतेतरा– मतितरां जिननाम निशम्यताम् ॥ ७ ॥

---

* श्रेयांस इति ।

श्री महावीर संकटमोचन अष्टक

(मत्तगयंदछन्द)

(१)

धर्मसरूप विलीन भयौ जग, में अरु पापसरूप पसारो ।
राज्य अखण्डित पापन को जब,धर्महिं दीन सुदेश निकारो ॥
जीवन जीवनि को जब संकट-पूर्ण तबै तुम ने पग धारो ।
को नहिं जानत है प्रभु वीर ! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

(२)

पापविनाशन दर्शन को जब, सेठ सुदर्शन आय तुम्हारो ।
मारग अर्जुनमालि मिलौ निज,देह विषैं खल यक्षहिं धारो ॥
मारन तत्पर मालि भयौ तब, ध्यान सुदर्शन ने तब धारो ।
को नहिं जानत है प्रभु वीर ! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

(३)

दुर्जन अर्जुन पाप किये नर, नारि हने वन के हतियारो ।
मारक को भि दियो तुमने शिव, तारक है प्रभु ! नाम तिहारो
जन्मजरादिक चोर सतावत, है यह संकट दूर निवारो ।
को नहिं जानत है प्रभु वीर ! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

(४)

भीषण कौशिक वास करे अरु, त्रास करे वनजीवहिं भारो ।
ध्यान धरा उसके चित्त ऊपर, डंक दियौ तुम को अति खारो ॥
आप दियो उपदेश - सुधा सब, कौशिक को दुख संकट टारो ।
को नहिं जानत है प्रभु वीर ! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

---

१ तुम्हारा। २ अर्जुनमाली। ३ हत्यारा। ४ चण्ड कौशिक साँप।

(५)

गौतम गर्वनिमग्न हुए प्रभु!, जीतन आयहु पास तुम्हारो
देखत शान्त मनोहर सूरत, गर्व गयौ सब भाग विचारो
आपहिं कीन निशंक उन्हें जिन शासन भार लियौ प्रभु! सारो
को नहिं जानत है, प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

(६)

पीर हरो मुज वीर! करो, भवसागर तीर तरंड हमारो
हे जगनाथ! जगत्पति! पावन! मार कि भीषण मार निवारो।
जा विध आप कियौ वश में प्रभु! सो हम ऊपर तेज पसारो
को नहिं जानत है प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो।

(७)

सूर्य बसे निज मण्डल में पर, फैल रहौ जग में उजियारो
आपहिं तार दिये बहु लेकिन, नामहिं तार दिये नहिं पारो ॥
क्या खगराज के मंत्रन से नहिं, शीघ्र विलात भुजंग विकारो?।
को नहिं जानत है प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

(८)

तो फिर क्योंकर होय रही अब, देर जबै मुझ आयहु वारो।
पारस कंचन लोह करे पर, आपहिं तो अपने सम धारो ॥
पूज्य जवाहिरलाल प्रभु!, शरणागत को अब क्यो नहिं तारो।
को नहिं जानत है प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो ॥

इति स्तवनावलि सम्पूर्ण.

---

१ इन्द्रभूति गौतम। २ सुग्व्यगणधरपद। ३ टोंगी (छोटीजहाज)।
४ कामविकार। ५ गरुड़।

। शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१२	ह्रीँ	ह्रीँ
१८	१०	तूं	प्रभु
१८	१२	हुआ	अति
१६	१७	जिसका सीस	जिस के सीस
		प्रभू चरणों में	चरण प्रभु तोरे
१९	१८	उन को,	उसको,

। इति ।

(५)

गौतम गर्वनिमग्न हुए प्रभु!, जीतन आयहु पास तुम्हारो
देखत शान्त मनोहर सूरत, गर्व गयौ सब भाग विचारो
आपहिं कीन निशंक उन्हें जिन शासन भारे लियो प्रभु सारे
को नहिं जानत है, प्रभु वीर! कि, सकंटमोचन नाम तुम्हारो।

(६)

पीर हरो मुझ वीर! करो, भवसागर तीर तरंड हमारो
हे जगनाथ! जगत्पति! पावन! मार कि भीषण मार निवारो-
जा विध आप कियौ वश में प्रभु! सो हम ऊपर तेज पसारो
को नहिं जानत है प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो,

(७)

सूर्य बसे निज मण्डल में पर, फैल रहौ जग में उजियारो
आपहिं तार दिये बहु लेकिन, नामहिं तार दिये नहिं पारो;
क्या खगेराज के मंचन से नहिं, शीघ्र विलात भुजंग विकारो?
को नहिं जानत है प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो।

(८)

तो फिर क्योंकर होय रही अब, देर जबै मुझ आयहु वारो
पारस कंचन लोह करे पर, आपहिं तो अपने सम धारो।
पूज्य जवाहिरलाल प्रभु!, शरणागत को अब क्यों नहिं तारो।
को नहिं जानत है प्रभु वीर! कि, संकटमोचन नाम तुम्हारो॥

इति स्तवनावलि सम्पूर्ण.

---

१ इन्द्रभूति गौतम। २ सुन्दरगात्रगाढ़। ३ टोंगी (होसीअदाज)।
४ कामविकार। ५ गरुड़।

ॐ

श्रीवीतरागाय नमः

श्रावक स्तवन संग्रह।

द्वितीय भाग।

संग्रहकर्ता—

भैरोंदानजी तत्पुत्र पानमल सेठिया।

बीकानेर निवासी।

PANMULL SETHIA,

MOHOLLA MAROTIAN WARD,

BIKANER, *Rajputana*

J. B. Ry

मूल्य प्रेमसे पठनम्

प्रति ३०००

वीर संवत २४४९

विक्रम संवत १९७९

ई० सन १९२३

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रावक स्तवन संग्रह।

द्वितीय भाग।

संग्रहकर्ता—

भैरोदानजी तत्पुत्र पानमल सेठिया।

बीकानेर निवासी।

PANMULL SETHIA,

MOHOLLA MAROTIAN WARD,

BIKANER, *Rajputana*

J B Ry

मूल्य प्रेमसे पठनम्

प्रति ३०००

वीर संवत् २४४९

विक्रम संवत् १९७९

ई०

श्रीवीतरागाय नमः

श्रावक स्तवन संग्रह।

द्वितीय भाग।

संग्रहकर्ता—

भैरोदानजी तत्पुत्र पानमल सेठिया।

बीकानेर निवासी।

PANMULL SETHIA,

MOHOLLA MAROTIAN WARD,

BIKANER, *Rajputana*

J. B Ry

मूल्य प्रेमसें पठनम्

प्रति ३०००

वीर संवत् २४४९

विक्रम संवत् १९७९

ई० सन १९२२

पानमल्ल सेठिया।

जन्म दिवस सम्वत् १९५७ मिती चैत्र सुदी १३

तारीख १२ अप्रैल सन् १९००
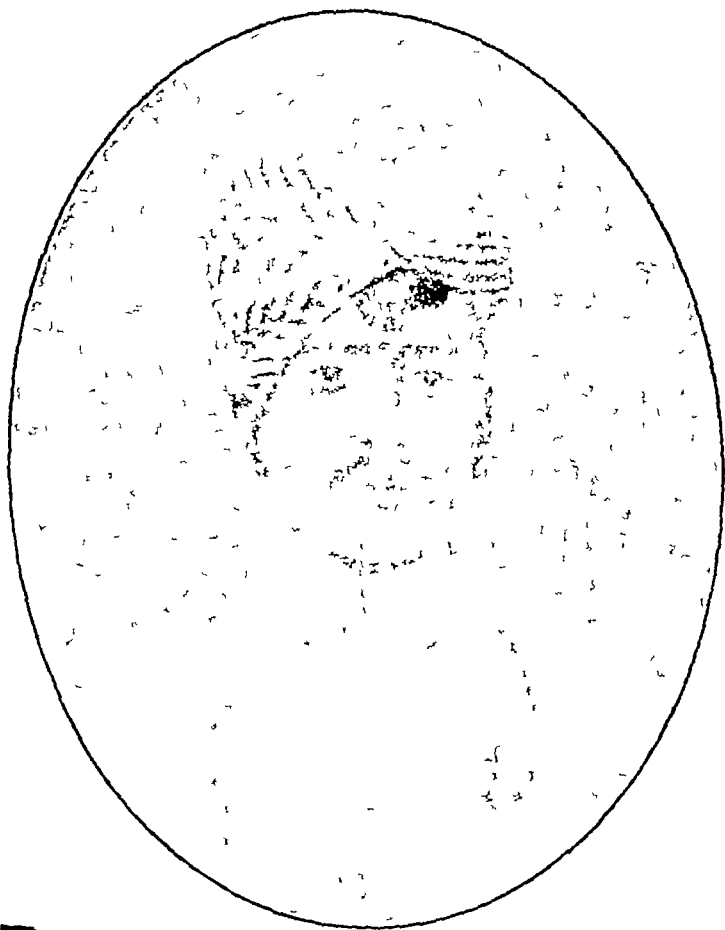
Panmull Sethia

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रावक स्तवन संग्रह।

द्वितीय भाग

मंगलाचरण

मंगल—श्लोक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धि
आचार्या जिनशासनोन्नति कराः पूज्या उपा
श्री सिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा

महावीर जी स्वामी आप विराजो चंदण
चौकमें ॥ एदेशी ॥

म्हारी बंदणा झेलो मैं छु श्राविका सुन्दर शहर की, बांध मुखपति करु सामायिक, राखूं पुंजणी आच्छी। प्रतिक्रमण वे वरियां करती, तो मैं श्राविका साची जी ॥ म्हारी० ॥ १ ॥ वास व्रतमें करू तपस्या नहीं करणीमें काची। पक्खि पर्वका पोषद करती तो मैं श्राविका साची जी ॥ म्हारी० ॥ २ ॥ भाणे बैठी भांउ भावना, साची शियलमें राची। स्थानक जाऊं वेगी उठने, तो मैं श्राविका साची जी ॥ म्हारी० ॥ ३ ॥ देवगुरुकी किनी ओलखना लीनी जांची जांची। हिंसा धर्म के संग न जाऊं, तो

में श्राविका साची जी ॥ म्हारी० ॥४॥ हीरालाल कहे एहवी बाई, भणी गुणी पुस्तक वांची । विनयवंत गुणवंत गिणावे, सोही श्राविका साचोजी ।। म्हारी बंदणा झेलो मैं छु श्राविका सुन्दर शहर की ॥ ५ ॥

॥ इति पदम् ॥

स्तवन

बाईजी म्हारा प्रभुजी पधारया उतरया बागमें, बंदवाने चालो दर्शण करस्यां जो होसी भागमें । दर्शण करलो प्रश्न पूछलो वांणी सुणलो प्यारी, भांत भांतका मुनि देखलो, खुली केसर की क्यारी जी ॥ बाईजी० ॥ १ ॥

इन्द्र इन्द्राणी देवी देवता मिल मिल मंगल गावे । निरख नयणा नाथ न हिये हरष नहीं भावे जी ॥ बाईजी० ॥ २ ॥ तीन लोकमें मोहन गारा प्यारा प्रभुजी लागे । मृगी मारने रोग नहीं आवे, सौ सौ कोशा आगे जी ॥ बाईजी० ॥३॥ हाथी घोड़ा रथ पालखी केई गज ऊपर चढ़िया, अभूषण सोहे भारी पड़दा रत्न जड़िया जी ॥ बाई जी० ॥ ४ ॥ आपां चालो करो वंदणा करो प्रश्नका निरणा । हीरालाल कहे हरष धरी ने, भेटो जिनवर का चरणा ॥ बाईजी० ॥ ५ ॥

॥ इति पदम् ॥

श्री आदीसरस्वामी हो प्रणमुं
शिर नामी तुम भणी ॥ एदेशी ॥

अथवा

❋ढाल सहर तलो सिरीयारी जी❋

सामाइ सुखदाईजी चित लाई कीजै चूंप सुं, कांई आतम रो आधार। दोय घड़ी प्रमाणे जी वातां नहीं कीजे दूसरी, धर्म शुक्ल मन धार ॥ सा० ॥ १ ॥ समता भाव सामाइ जी बताई सूत्रमें सही, कांई ममता देवो मार। प्रेम धरी नव कोटी जी नहीं खोटी रूड़ी पालजो, कांई पाप सकल परिहार ॥ सा० ॥ २॥ सायव समरण कीजे जी पीजे रस समता शीलरो, कांई उलट घणो मन आंण। जन्म मरण मिट जावे जी जोखो नहीं थावे जीवने,

कांई कोड़ां होवे कल्याण ॥ सा० ॥ ३॥ प्रभु घररी बातां जी गुण दाता कीजे प्रेम सुं, कांई तवन सझायां तंत। सुणजे भणजे गुणजे जी सीखीजे चरचा गुरु कने, कांई खरी धरी मन खंत ॥ सा० ॥ ४ ॥ निंद्या विकथा आलस जी कषाय च्यार निवार जो, कांई परहरो पंच परमाद । झूठी बातां छोड़ो जी मन मोड़ो झगड़ा झोड़ सुं, कांई वरजो फोगट वाद ॥ सा० ॥ ५ ॥ वर्षा चैन बखानी जी जाणी गुण वादल बीजली, कांई नृपति चैन निशाण। आच्छी रीत सामाइ जी सुखदाई रूड़ी आदरो, ए श्रावकरा अहनाण ॥सा० ॥६॥ कोड़ भवांरा कीधाजी उड़ावे पातक आपणा, अवल सामाइ एक। सुरनर पदवी पावेजी शिवपुर रा सुख लहे सासता, आणंद लील अनेक ॥ सा० ॥ ७॥ सफल दीहाड़ा जावेजो आवे नहीं पाछा आपरा, कांई धर्म विना किसो धन सफल

दीहाड़ा तेही जी चित्त देई धर्म समाचरे, कांई जपो वीर एक मन ॥ सा० ॥ ८ ॥ करणी रूड़ी कीजे जी लावो भल लिजे कोड़ सुं, कांई अवसर लाभो आज। काल अनंतो दोरो जी नहीं छै सोरो जिण कह्यो, कांई सारो आतम काज ॥ सा० ॥ ६ ॥ समत अठारै गुणसठैजी सुदी माह तिथि भली सातमी, कांई सोमवार सुखदाय। ऋषि चन्द्रभाण सराइ जी सामाइ रूड़ी रीत सुं, कांई चारित्र सुं चित्त लाय ॥ सा० ॥ १० ॥

॥ इति ॥

कर्म तणी गति वांकुडी, सुणजो भवि-लोको ॥ कर्म० ॥ टेर ॥ बड़ा पुरुष वे राम लिछमण, ज्यां सेव्यो वनवास । सती सीता कूं रावण ले गयो, राम भयो उदास हो ॥ सुणजो० ॥ १ ॥ कर्म धको दीयो रावणकूं, सीताने घाल्यो हाथ । जीव संपदा सबही खोई तीन खेड को नाथ हो ॥ सुणजो० ॥ २ ॥ वन भुगत्यो है पांचे पांडव, जिनकी सुणजो बात । जूवा मांहि हारी संपदा, दुर्योधनके साथ हो ॥ सुणजो० ॥ ३ ॥ धातकी खंड़को राय पद-मोत्तर, वडी करी उत्पात । समुद्र उल्लंघ द्रौपदी ले गयो, हुई असम्भव वात हो ॥ सुण जो० ॥ ४ ॥ सती शिरोमण वड़ी अंजना,

उत्तम वांकी जात। विखो तूं भुगत्यो, बीस वर्ष, दो संग दासीके साथ हो ॥ सुण० ॥ ५ ॥ देखो जी कम्मन की या स्थिति, वड़ा वड़ामें होय। मुनिराम कहे समजाय ने सजी, कर्म बांधो मति कोय हो ॥ सुण जो० ॥ ६ ॥

॥ इति उपदेशी पद समाप्तम् ॥

अथ वैरागी पद

वरजूं वरजूं रे पापीडा निंदा छोड दे ॥टेर॥ तूं क्रोध पूतलो शुद्ध न थारे, बोले आल पंपाल। क्रोड पूरवकी तपस्या करने, छिनमें देवे जाल ॥ वरजूं ॥ १ ॥ विना पूंजीको निकमो कंगलो, वृथा जन्म गुमावे। साधु

गृहस्थ दोनु में नाहीं, अचविच गोता खावे ॥ वरजू० ॥ २ ॥ तूं औगुण सुं भरीयो पापी, जिणने तूं नहीं देखे । मनसूं वैरागी बणने वैठो वास व्रत नहीं लेखे ॥ वरजू० ॥ ३ ॥ पर्वत सेती माथा फोड़े, भिष्टामें मुख घाले । लोभ तणो तूं लाय पली तो, ज्ञान विना तूं चाले ॥ वरजू० ॥ ४ ॥ इण भवमें तो लाज गमोई परभव देसी खोय । दोनुं भव तुज विगड्यां पापी, मेल पराया धोय ॥ वरजू० ॥५॥ गांव गांवरा टुकड़ा मांगे, धर्म ठगाई करतो । रसनेंद्री के वश तूं पडियो, लाजे नहीं झगड़तो ॥ वरजू० ॥ ६ ॥ एम सुणी शुद्ध रीतमें चले, तो सुधरे परलोक । मुनिराम कहे शुद्ध पंथे चलता, पामे सगलां लोग ॥ वरजू० ॥ ७ ॥

॥ इति वैरागी पद समाप्तम ॥

—:※:—

उपदेशी पदम्

बीती रात हुयो अब तड़को ।
अब जागणकी वारा रे ॥ टेक ॥

कोई नहीं तेरा तूं नहीं किसको । तूं सब सेती न्यारा रे ॥ बीती० ॥ १ ॥ मोह मिथ्यात की नींद घणेरी । सोया काल अपारा रे ॥ अब जागण की वार भई है । जागो चेतन प्यारा रे ॥ बीती० ॥ २ ॥ कुण तेरा तात कोण तेरी माता । कोण तेरी घरको दारा रे ॥ अंत समे तेरा कोई न साथी । झूठा सकल पसारा रे॥ बीती० ॥ ३ ॥ क्या तूं लाया क्या तेंने खाया । क्या जीता क्या हारा रे ॥ हिसाब लेवेगा परभव में । करलो जन्म सुधारा रे ॥ बीती० ॥ ४ ॥ कोड़ी कोड़ी माया जोड़ी । तृष्णा अनन्त अपारा रे ॥ अन्त समे तेरे संग न चाले । जावे हाथ

पसारो रे ॥ बीती० ॥ ५ ॥ कर कुछ ज्ञान ध्यान तप संजम । ये अवसर अब थारा रे ॥ कहे धनदास खेतड़ी मांही । ये थारे ईखत्यारा रे ॥ बीती० ॥ ६ ॥

॥ इति उपदेशी पदम् समाप्तम् ॥

॥ स्तवन ॥

गौतम गणधर वंदिये ।

पूरण लब्धि भंडार ॥ गौतम० ॥ टेक ॥

चौवीस मां बर्द्धमान के चेला चतुर सुजान ॥ सब साधां में शिरोमणी । हुवा जगत में भाण ॥ गौतम० ॥ १ ॥ चवदे पुरवना पाठीया । ज्ञान चार वखांण ॥

तपस्या कीधी हो चित्त नीर मली नहीं मन गलयाण ॥ गौतम० ॥ २ ॥ पर्वत में मेरू बड़ो सीता नदीयां के मांय ॥ स्वयंभुरमण दधियां विषे । ऐरावत गज जाण ॥ गौतम० ॥ ३ ॥ सब रस में इखुरस बड़ो । दानमें बड़ो अभय-दान ॥ ऐम अनेक ही ओपमां । कहा लग करूं बखाण ॥ गौतम० ॥ ४ ॥ सर्व बानुं वर-सनो आउखो । दस जुग रया घर वास ॥ पीछे एवा गुरु भेटीया । चौवीसमा जिन-राज ॥ गौतम० ॥ ५ ॥ तीस बरस छदमस्थ-रया पीछे केवल ज्ञान । दुवा दस वरसनें पारनें । पहुंच्या अमर वीमाण ॥ गौतम० ॥ ६ ॥ अनंत सुखां में विराज्या । माता पृथ्वी का नंदन ॥ खूबेचन्द कहे थारा नाम सुं भयो मगन आनंद ॥ गौतम० ॥ ७ ॥

॥ इति स्तवन समाप्तम् ॥

—:॰:—

अथ बुढ़ापो लिख्यते
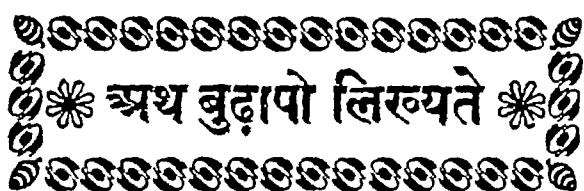
(ए देशी फाटकारी या तेरा काठीयारी)

एजी बालपणो हस खेल गमायो, जोवन त्रिया वसको। बुढ़ापा में जरा सतावे, खातां पीतां टसको रे ॥ बुढ़ा० ॥ वैरी किण विधथासी थासु छूटवो रे ॥ आकड़ी ॥ १ ॥ एजी जोत भइ नेणाकी मंदी, दांत पड्या सव ढीला। नाक झरे सुणवा में घाटो, केश भया सब पीला रे ॥ बुढ़ा० ॥ २ ॥ एजी गोडा हाथ देईने उठे, कमर करडी कीनी। डांग पकड़ने डिगतो चाले, सुद बुद्ध सब खो दीनी रे ॥ बुढ़ा० ॥ ३ ॥ एजी बहुवां छोड्या कांण कायदा, कद मरसी तूं डाकी। खाय सकां नहीं पहर सकां नहीं, हीड़ा कर-कर थाकी रे ॥ बुढ़ा० ॥ ४ ॥ एजी बोले तो बोलण नहीं देवे,

सीखन माने घर का। साठी बुद्ध नाठी कहे सरे, पड्यो रहनी चरखा रे ॥ बुढ़ा० ॥ ५ ॥ एजी दोय पडां की हांडी मांय, खीर रावड़ी होवे। बेटा सबड़े खीर खांडने। बाबो टुग मुग जोवे रे ॥ बुढ़ा० ॥ ६ ॥ एजी बैठा खावो हुक्म चलावो, हमपर जोर जमावो। पुरसां जैसो खायलो सरे, नहीं तर जाय कमावो रे ॥ बुढ़ा० ॥ ७ ॥ एजी पीसां पोवां करा रसोई, टाबर टुबर रोवे। जाय पूकारो बेटां आगे, म्हासु काम न होवे रे ॥ बुढ़ा० ॥ ८ ॥ एजी बेटा बात सुणे नहीं तिलभर, बहुवां रा भरमाया। घर में बैठा माला फेरो, कांइ कमायने लाया रे ॥ बुढ़ा० ॥ ९ ॥ एजी अठी उठीरा धक्का लाग्या, पुरो होय गयो कायो। कुण सुणे किणने कहुं रे, जाणे काग उडायो रे ॥ बुढ़ा० ॥ १० ॥ एजी एकंत खाट पिछो-कड़े पटकी, कोयन आवे नेड़ो। कूरां कूरां

कर मूड पचावे, डोसेने मत छेड़ो रे ॥ बुढ़ा० ॥ ११ ॥ एजी घर सुं रोटी करड़ी आवे, नरम खीचड़ी भावे। दांतांसुं चावी नहीं जावे, मन दिल गीरी लावे रे ॥ बुढ़ा० ॥ १२ ॥ एजी दोरो खरच चलावां घरको, टावर छै परणाणा। थाने माल मसाला भावे, म्हाने मांग नहीं खाणा रे ॥ बुढ़ा० ॥ १३ ॥ एजी सीख्यो ज्ञान गयो गेबाउ, पड्यो ध्यान में घाटो। भरया बजारां धाडो पाड्यो, लूंट लियो सब लाटोरे ॥ बुढ़ा० ॥ १४ ॥ एजी पूर्व पूंजी खाय खुटाई, उमर लंबी पावे। जम-दूत जब घांटी पकड़े, अंत समे पिस्तावे रे ॥ बुढ़ा० ॥ १५ ॥ एजी पाप करीने माया जोड़ी, घरका फिर फिर जोवे। रोग असाता उदे होय जब, आप एकेलो रोवे रे ॥ बुढ़ा० ॥ १६ ॥ एजी रोया गरज सरे नहीं भोला, हुसीयारी का काम। भव भव मांए साथे

चाले, एक प्रभु रो नाम रे॥ बुढ़ा० ॥ १७ ॥ एजी ज्ञानी होय सो गत सुधारे, मूर्ख मरण बिगाड़े। बाल मरण ने पण्डित मरणो, केई जीते केई हारे रे॥ बुढ़ा० ॥ १८ ॥ एजी आया जाया सगा सनेई, चित्त नहीं देवे परणी। दोष नहीं देणो किसीने, जोवो आपरी करणी रे॥ बुढ़ा० ॥ १९ ॥ एजी जीव-तड़ा री सारन पूछी, विदविद पाड्यो बेला। मुंवां पछे जात जीमावे, रोवे देदे हेला रे॥ बुढ़ा० ॥ २० ॥ एजी सिख सु वनीत सुपात्र बेटा, विरला जुगमें पावे। जीवत मरण सुधारे दोनुं, ते उसरावण थावे रे॥ बुढ़ा० ॥ २१ ॥ एजी उगणीसे इकसट्ठ भाद्रवे, गोगानमी वखाण। जैपुर मांए जड़ावने सरे, जरा कियो हैरांण रे॥ बुढ़ा० ॥ २२ ॥

॥ इति बुढ़ापो समाप्तम् ॥

—:॥:—

❋ साधु शिक्षण ❋

(कृपानाथ विनतड़ी अवधार ए देशी)

मोरा गुरुजी हवे करो आप विहार ॥ टेर ॥
आप गुरु हुं श्राविकाजी केवा नथी अधिकार, तोपण कहुं गुण जाणने जी, सीधो मननो विचार मोरा गुरुजी हवे करो आप विहार ॥ १ ॥ एक स्थान रहता नथी जी मुनि गुणाना भंडार, गाम नगर में विचरता जी, करे नवकलपि विहार ॥ मोरा० ॥ २ ॥ ज्ञान घटे परचे थकी जी, वली वधे अपमान, संचय परचय वधे घणो जी, घटे मुनि जननो मान ॥ मोरा० ॥ ३ ॥ शील तणी संका पड़े जी, बाधे मोहनो जोर, त्याग करी संसारनो जी, दृष्टि नें करो तस ओर ॥ मोरा० ॥ ४ ॥ राग द्वेष दोय चोरटा जी, लाग्या छै

तुम लार, नाश करे संजम तणो जी, अग्नि-कण तृण भार ॥ मोरा० ॥ ५ ॥ थोड़ो पण घणो मानजो जी, माफ करी अपमान, हुं अव गुणनी कोथली जी, आप गुणनी खान ॥ मोरा० ॥ ६ ॥ गुरु कहे सुण श्राविका जी थारी सफल जबान, तें सूताने जगाड़ीयोजी, मान प्रभुजी आण, हवे जल्दी करसुं आज विहार ॥ ७ ॥ धन धन ते नर नारी ने जी, जे साचा करे वखाण आत्म लक्ष्मी पद वरेजी, वल्लभ हरष अमान, हवे जल्दी करसुं आज विहार ॥ ८ ॥

॥ इति साधु शिक्षण समाप्तम् ॥

❋ अथ उपदेशी पद ❋

चालो चालो चतुरनर नीचा झांक झांकने, ॥ ए टेर ॥ लीलण फूलण और लीलोती, कीड़ीयां मकोड़ीयांको टाल टालने ॥ चालो० ॥ १ ॥ और भी चवदे जीव ठीकाणे, उसका भी रखो खूब ख्याल ख्याल में ॥ चालो० ॥ २ ॥ किसी जीवको नहीं रे सताना चढ़ता प्रणाम राखो तार तारके ॥ चालो० ॥ ३ ॥ बदला किया सो देना पड़ेगा, मैं भी चेताउं हेला पाड़ पाड़ के ॥ चालो० ॥ ४ ॥ गुरु नथमलजी चोथ मुनिका केणा, होले होले चालो दया पाल पालके । धीमा धीमा चालो जयणा राख राखने ॥ चालो० ॥ ५ ॥

॥ इति उपदेशी पद समाप्तम् ॥

—:❋:—

अथ एलापुत्र की सज्झाय

नाम एलापुत्र जाणीये, धनदत्त सेठरो पुत। नटवी देखीरे मोहियो नहीं राख्यो घर तणो सुत॥ कर्म न छूटे रे प्राणीयां ॥१॥ ए आंकड़ी ॥ कोईक पूरव नेह विकार, निज कुल छांडी रे नट थयो। न आणी शर्म लिगार॥ कर्म० ॥ २ ॥ आप कमाया रे कर्मड़ा, दीजे केहने रे दोष। कर्म विपाक भुगत्या विना, नहीं होवे जीवने मोक्ष ॥ कर्म० ॥ ३ ॥ नटवर आयोरे नांचवा, ऊंचो वांस विशेष। तिहां राय जोवाने आवीयो, मिलीया लोक अनेक ॥ कर्म० ॥ ४ ॥ सेठ कुंवर पण तिहां आवीयो, जोयो नटवी नो रूप। पूरव नेह जो जागीयो, लाग्यो वचन अनूप ॥ कर्म० ॥ ५ ॥ नाटकने नारी निरखतो, उपज्यो हर्ष अपार। दान मान

देई करी, पहुंच्यो घर मझार ॥ कर्म० ॥ ६ ॥ महलां जाईने रे पोढीयो, मन आर्त अधिक अपार । जोर कोई चाले नहीं, चित्तमें चिंतवे कुंवार ॥ कर्म० ॥ ७ ॥ भोजन की विरीया हुई, जननी जोवे रे बाट । अजहुं न आयो रे न्हानडो, लाग्यो मन उचाट ॥ कर्म० ॥ ८ ॥ माता दासी परते यों कहे, जाय जोवो नगर मझार । सोधी ने लावो कुंवर ने, ज्युं होय हिवडै हर्ष अपार ॥ कर्म० ॥ ६ ॥ दासी महलां में आयके, लागी कुंवरके पाय । भोजन की विरीया हुई, करो भोजन चित्त लाय ॥ कर्म० ॥ १० ॥ एक वे वार बुलावीयो, बोले नहीं रे लिगार । फिर दासी माता पे आयके, नाखती आंसुडे री धार ॥ कर्म० ॥ ११ ॥ काम धाम छोडी करी, माता आई कुंवरने पास । थाने काई मन चिन्ता उपनी, थे कहो कुंवर हुलास ॥ कर्म० ॥ १२ ॥ हाथ जोड़ कुंवर करतो

विनति, लाग्यो माता ने पाय । आज सुणो मुझ मायड़ी, जो आवे तुझ दाय ॥ कर्म० ॥ १३ ॥ नाटक देखने रे मैं गयो, देखीयो नटवी रूप जो सार । वह मुझने परणाय दो, म्हारे मन राग अपार ॥ कर्म० ॥ १४ ॥ माता तेहने रे समझावती, सुण सुण म्हारा अंग जात । नटवी साथे जांवतां, लाजे मायने तात ॥ कर्म० ॥ १५ ॥ पिता तेहने समझावतो, सुण सुण प्यारा पुत । व्याहुं रंभा रे सारखी, इससे अधिक स्वरूप ॥ कर्म० ॥ १६ ॥ स्त्री तेहनी समझावती, सुण सुण बालम शीख । थोड़ा सुखांरे कारणे, मती लगावो कुल लीख ॥ कर्म० ॥ १७ ॥ समझायो समझे नहीं; मिलीयो कुटुंब परीवार । बात न मानी जी म्हानड़े, पूरव कर्म विकार ॥ कर्म० ॥ १८ ॥ सेठजी घरथी चालीयो, आयो न वाने पास । या पुत्री तुम्हारी दीजिए, मुझ मन पूरोजी

आस ॥ कर्म० ॥ १६ ॥ मणि माणक मोती घणा, हीरा लाल जवहार। तुल तोलीने रे लीजीए ढील न करो रे लिगार ॥ कर्म० ॥ २० ॥ कर जोड़ी नटवो कहे, सेठजी सुणो मुझ बात अन्य जात न देवां नहीं, देस्यां अपनी जात ॥ कर्म० ॥ २१ ॥ नट बचन सेठजी सांभल्यो, जाने लागी शस्त्र नी धार। कुलमें कपुत जो उपन्यो, तो वचन कह्या निरधार ॥ कर्म० ॥ २२ ॥ फिर सेठ इम बोलीयो, सुण सुण नटवा मेरी बात। पुत्री तुम्हारी निरखके, मुझ पुत्र करे घात ॥ कर्म० ॥ २३ ॥ कर जोड़ी नटवो कहे, सुणो सेठ अरदास। भोजन हम घर जीमवे, कुंवर रहे हमारे जी पास ॥ कर्म० ॥ २४ ॥ हम साथ हिल मिल रहे, नाटक सिखे चित्तलाय। मुझ मन हुवे जी मानतो, तो पुत्री देऊं परणाय ॥ कर्म० ॥ २५ ॥ नट वचन सांभल आवीयो, कहे कुंवरने समझाय। बात

कुंवर पितानी सांभली, हिवड़ै हरषित थाय ॥ कर्म० ॥ २६ ॥ मात पिता रे समझावीया, अवर कुटुंब परीवार । बात न मानीजी कुंवरने, मोह कर्म दुःख दाय ॥ कर्म० ॥ २७ ॥ मणि माणक मोती तज्या, हीरा लाल जवहार । कोड़ारा धन छोड के, गयो नटवा रे लार ॥ कर्म० ॥ २८ ॥ कर्म थकी कोई छूटे नहीं, कर्म महा रिपु जोर । नटवी रे घर जाय वस्यो, छोड्यां लाख क्रोड़ ॥ कर्म० ॥ २९ ॥ माता तेहनी रे रोवती, नैना नीर झराय । पुत्र बहुत दुखां कर पालीयो, अब क्यों चाल्यो छिटकाय ॥ कर्म० ॥ ३० ॥ कर जोड़ी कामण भणे, कंत सुणो मन लाय । तुम चाल्यां संग नटवी तणे, हम कीस सरणे जाय ॥ कर्म० ॥ ३१ ॥ घर सब विध छिटकाय ने, और कुटुंब परीवार । कह्यो पुत्र मान्यो नहीं, सब छांड़

दियो निरधार ॥ कर्म० ॥ ३२ ॥ कांधे लीधो
रे बांसड़ो, नटवी लीधी जी लार। तात
मात नो मोह आणयो नहीं, झुरे सगलो
परीवार ॥ कर्म० ॥ ३३ ॥ फिर नटवो ईम
बोलीयो, सुणो कुंवर मन लाय। धन कमाई ने
लावस्यो, तो पुत्री देसुं परणाय ॥ कर्म०
३४ ॥ नहीं तरतो व्याहुं नहीं, करजो कोड़
उपाय। कुटुंब परीवार सब लजावसो, नहीं
घर पाछो जी जाय ॥ कर्म० ॥ ३५ ॥ बारां
वरस तिहां वित गया, रहता नटवी के साथ।
नाटक चेटक सीखीया, हुवा सारण धार ॥
कर्म० ॥ ३६ ॥ एक पुर आव्यो रे नांचवा,
ऊंचो वांस विशेष। तिहां राय आव्यो रे
जोववा, मिलीया लोक अनेक ॥ कर्म०
॥ ३७ ॥ दोय पग पेहेरी रे पावड़ी, वांस
चढ्यो गज गेल। निराधार ऊपर नांचतो,
खेले नया नया खेल ॥ कर्म० ॥ ३८ ॥

ढोल बजावे रे नटवी, गावे किन्नर साद ।
पाय तले घुघरा घम घमे, गाजे अम्बर
नाद ॥ कर्म० ॥ ३६ ॥ नटवी रंभा रे सारखी,
नैना निरखी रे राय । जो अंतेउर में ए
रहे, तो जन्म सफल होय जाय ॥ कर्म०
॥ ४० ॥ फिर राजेन्द्र मन चिंतवे, लुबध्यो
नटवी ने साथ । जो नट पड़े रे नाच तो,
तो नटवी मुझ हाथ ॥ कर्म० ॥ ४१ ॥ कर्म
वसे रे हुं नट हुवो, नाचुं छुं निराधार ।
मन नहीं माने रे राय रो, तो कीजै कौन
विचार ॥ कर्म० ॥ ४२ ॥ दान न आपे रे
भूपति, नट जानी नृप बात । हुं धन
बंच्छु रे राय नो, राय वंच्छे मुझ
घात ॥ कर्म० ॥ ४३ ॥ दान लेऊं
जो हुं रायरो, तो मुझ जीवित सार । युं
मन मांहि चिंत के, चट्यो चोथी वार ॥
कर्म० ॥ ४४ ॥ बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी

थोड़ी बी जाय। ईस थोड़ीके कारण, क्युं रहा तान चूकाय ॥ कर्म० ॥ ४५ ॥ वांस चढ्यो डम डम करे, देखे आयने लोक। नाटी से नटणी हुई, नट से नटवर होय ॥ कर्म० ॥ ४६ ॥ थाल भरी शुद्ध मोद के, पद्-मणी उभी छै द्वार। ल्यो ल्यो केहता लेता नहीं, धन धन निर्लोभी अणगार ॥ कर्म० ॥ ४७ ॥ एम तिहां मुनिवर देखीया, धन धन साधु निराग। धिग् धिग् विषयी जीवने, इम पाम्यो वैराग ॥ कर्म० ॥ ४८ ॥ संवर भावे रे केवली, थयो मुनी कर्म खपाय। केवल महिमा रे सुर करे, लब्धि विजय गुण गाय ॥ कर्म० ॥ ४९ ॥

॥ इति एलापुत्र की सज्झाय समाप्तम् ॥

ये पोलासपुर नृप विजयसेन भूपाला, महाराज कुंवरकी करूं बडाई जी । धन ऐवंता अणगार, नीरसें नाव तिराई जी ॥ ए टेक ॥ राणी श्रीदेवी कूख जन्म जो लीना, महाराज जीन्होंका पुन्य सवाया जी । श्रीत्रिशला दे जीना नंद, विचरतां बागमें आयाजी । गौतम गणधर आज्ञा जिनवरसे मांगी, महाराज आवे बेलाके पारणेजी । निज नगर गोचरी काज, चले भव्यजीव तारणे जी । मारगके मांहि खेल रह्यां ऐवंता, महाराज कुंवर पूछै हुलसाई जी ॥ धन ऐवंता० ॥ १ ॥ तब इन्द्रभूतिजी कहे गौचरी कारण, महाराज आहार निर्दोषण

है राजी । तब कुंवर कहै सुणों आप, चलो महिलामें लै राजी । मुनि अवसर देखी दिलमें ज्ञान लगायो, महाराज कुंवरजी साथे आया जी । अंगुली ऐवंता पकड़ आज निज महेला लायाजी । तब माता कहे धन भाग जहाज घर आणी, महाराज आहार पाणी वैराई जी ॥ धन ऐवंता० ॥ २ ॥ तब इन्द्र भूतिजी आया बागके मांही, महाराज संग ऐवंता आया जी । श्री त्रिशला दे जीना नंद, तणां वे दर्शन पाया जी । ऐवंता वाणी सुणी आप जिनवरकी, महाराज अति संयम चित्त चाया जी । श्री जिनवर चरणां माय कुंवरने शिश नमाया जी । घर आय कुंवर ईम कहै सुणी मैं वाणी, महाराज मुझे आज्ञा दो माई जी ॥ धन ऐवंता० ॥ ३ ॥ कुंवर की वाणी सुणकर अचरज कीधो, महाराज वहोत हित-कर समझाया जी । नहीं माने वात लगार,

कुंवर दिल संयम लाया जी अति हर्ष भाव ऊच्छव कर दीक्षा लीनी, महाराज प्रभुका चरण भेटीया जी। ए चतुर गति संसार तणां सब दुःख मोटिया जी। वर्षा ऋतुमें मुनि मील कर थंडिले चाल्या, महाराज कुंवर जी है संग मांईजी॥ धन ऐवंता॥४॥ सब और संततो गया दूर जंगलमें, महाराज ऐवंता मारग मांहि जी। पाणीको धोरो जाय रह्यो वहां पाल बणाई जी। थोड़ी वेरामें पाणी आय भराणो, महाराज कुंवर पालरी तिरावे जी। या नाव तरे जल मांहि खुसी हो शब्द सुणावे जी। सब साधु जंगल जई आवतां देख्यां, महाराज अति शंका मन मांहि जी॥ धन ऐवंता० ॥५॥ सब ही वृतांत कयो त्रिशलानंदन आगे, महाराज रीत साधुकी नांहि जी। देखो ऐवंता समजाय, करे हीलणां सब आई जी। या सुणी बात त्रिशलानंदन ईम फुरमावे, महा-

राज सबीसे कही या वाणी जी। ये चरम शरीरी जीव पंचमी गतिका प्राणी जी। जिन-वरकी वाणी सुणकर मन सुलटाया, महाराज सबीने शिश नमाय जी॥ धन ऐवंता० ॥ ६॥ ऐसे मुनिवरका निसि दिन ध्यान लगाना, महा-राज आप शिवपुर सुख पाया जी। किया आगम मांहि वखाण, श्री मुखसे फुरमाया जी। ऐवंता मुनिवर हुआ बाल ब्रह्मचारी महा-राज ध्यान एक चित्तसे धरना जी। मैं अर्ज करु' कर जोड़ गुरु देवनके चरणां जी। ये नंद-रामने जोड़ लावणी गाई महाराज साल अड-सटके मांहि जी॥ धन ऐवंता० ॥ ७॥

॥ इति श्री ऐवंताकुंवरकी लावणी समाप्तम्॥

॥ दोहा ॥

शासन नायक सुरतरु वर्द्धमान सुखकंद ।
प्रणमि कहुं तिणनो चरित सुणतां परमानन्द ॥१॥
समकीत आई जीहांथी भव सत्तावीस मूल ।
पंचकल्याणक वरणवुं आगम वयण कबूल ॥२॥

॥ ढाल पहली ॥

॥ धर्म पावे तो कोई पुन्यवंत पावे ॥ ए देशी ॥

जय जय शासन स्वामी दयाला, परमपति उपगारी जी । नयसार प्रथम भव मांही, उपशम समकित धारी जी ॥ जय० ॥ १ ॥

तिहां थी सुरभव स्थिति क्षय करीने, थयां भरतजीका नंदो जी। मीरिची नाम कहाणो तिण भव, संजम मद स्वच्छंदो जी॥ जय० ॥ २॥ तापसव्रत पाली भव चोथे, लीनो सुर अवतारो जी। तिहांथी तापस निर्जरा भाव, वली तापस व्रत धार्यो जी॥ जय० ॥ ३॥ तिहांथी अंबड़ तापस किरिया, वली गया देव विमाने जी। तिहांथी तापस सुरपद पाया, तापसना कने ठाणे जी॥ जय० ॥ ४॥ ए सोलां भव मोटा करीने, रूलीयो बहु संसार जी। विश्वभूति भवे करे नीयाणो, तिहांथी सुर अवतारो जी॥ जय० ॥ ५॥ उगणीसमें भवे हरिपद पाया, नामे त्रिपृष्ठ कहाणो जी। सातमी पृथ्वी नीकली तिहांथी, सिंह तणो भव जाणोजी ॥ जय० ॥ ६॥ नरक गया तिहांथी कर्मावश, चक्रवर्ती पद पाया जी। संजम पाल्यो कोडीवर्ष लगे, अंते अणसण ठाया जी॥ जय० ॥ ७॥ तिहांथी

सातमें स्वर्ग सिधाया, चोविसमें भव मांही जी। तिहांथी पचीससमां भव मांही, हुवा नंद महाराय जी ॥ जय० ॥ ८ ॥ संजम लेकर तप आदरीओ, मास मास तप ठाया जी। एकसठ सहस्स ने लाख इग्यारा, दोसे अधिक वखाणा जी ॥ जय० ॥ ९ ॥ वीस बोल सेवन करी बांध्यो, गोत्र तीर्थंकर नामो जी। तिहांथी दशमें स्वर्ग सिधाया, वीस सागर स्थिति ठामो जी ॥ जय० ॥ १० ॥ तिहांथी भव स्थिति चय करी स्वामी, मास अषाढ मजारो जी। शुक्ल पक्ष छठ मध्यनी सामे, फाल्गुणी उत्तरा विचारो जी ॥ जय० ॥ ११॥ क्षत्री कुल सिद्धारथ राजा, त्रिशलादे राणी सुं जाणो जी। चउदे सुपना देईने उपना, पुन्य तपो परमाणो जी ॥ जय० ॥ १२ ॥ चैत सुदि तेरस आध रयणी, जनम्यां अंतरजामी जी। चोसठ इन्द्र मीली महोच्छव करके, मेल गया शिर नाजी जी ॥ जय०

॥ १३ ॥ सिद्धार्थ नृप महोच्छव कीधो, निज सहु जाति जिमाईजी । नाम दियो श्रीवर्द्धमान, दिन दिन अधिक बढाई जी ॥ जय० ॥ १४ ॥ तीस वरस गृहवासमें वसीयो, पुत्री एकज जाणो जी । मात पिता पोहता सुरलोके, अभिग्रह ताम पुराणो जी ॥ जय० ॥ १५ ॥ वरसी दान दियो नित्य साहिब, भाव संजमका आया जी । तिलोक ऋषि कहे पहेली ढालमें भव सत्तावीस दरसावीया जी ॥ जय० ॥ १६ ॥

॥ दोहा ॥

मिगशिर वदी दशमी तिथि छठ तपस्या प्रभु धार ।
एकाकी साहस पणे लीनो संजम भार ॥ १ ॥

॥ ढाल दूजी ॥

हमीरीया की ॥ एदेशी ॥

धन्य धन्य त्रिशला नंद जी, सिद्धार्थ कुल-चंद जिनेश्वर। तप तप्यां प्रभु आकरो, तोड्यां कर्म ना वृन्द जिनेश्वर॥ धन्य०॥ १॥ नव चौमासी तप कियो, एक करी छवमास जिनेश्वर। अभिग्रह दूजी छवमासी में, तेरा बोल विमास जिनेश्वर॥ धन्य०॥ २॥ एकसो पचोत्तर दिवसमें, चंदनबाला हाथ जिनेश्वर। जोग मिल्यो कोसंबी में, पारणो कियो जगनाथ जिनेश्वर॥ धन्य०॥ ३॥ मास क्षमण द्वादश किया, पक्ष बहोत्तर कीध जिनेश्वर। आसन विविध प्रकार नां, सुतरमें सहु विध जिनेश्वर। धन्य०॥ ४॥ अढाई मासी तीन मासी दो, दोय मासी षट् जाण जिनेश्वर। देढ मासी वली दो करी, दोसे गुणतीस बेला मान जिने-

श्वर ॥ धन्य० ॥ ५ ॥ भद्र महाभद्र शिवभद्र तपे, सोलह दिन इम जोय जिनेश्वर। भिक्खु पडिमा अष्टम तणी, कीनो द्वादश सोय जिनेश्वर ॥ धन्य० ॥६॥ साडी इग्यारा वर्षने उपरे, पचीस दिन तपधार जिनेश्वर। एक कम साडा तीनसे पारणो तार्या दातार जिनेश्वर ॥ धन्य० ॥७॥ देश अनारज विचरीया, सह्यां परिसह कठोर जिनेश्वर। कुत्ता लगाया डरामणा, बंध बखण कह्यां चोर ॥ धन्य० ॥८॥ श्रवणे खीला खोडीया, पग-पर रांधी खीर जिनेश्वर। डंक दियो चंडकोसिये, रह्या अचल गिरि धीर जिनेश्वर ॥धन्य ॥९॥ अभव्य संगमो देवता, आणो दुष्ट परिणाम जिनेश्वर। छमास लगे दुःख दिओ, राखी समता खाम जिनेश्वर ॥ ध० ॥१० ॥ नर सुर तिर्यंच नां सहु, सह्यां परिसह सर्व जिनेश्वर। शम दम उपशम भावसु, रंच न आणयो गर्व जिनेश्वर ॥धन्य०॥ ॥ ११ ॥ चउविहार तपस्या सहु, निंद्रा मुहूर्त

एक जिनेश्वर। तिण मांही सपनां दश लह्यां गो दुज आसन टेक जिनेश्वर ॥ धन्य ॥ १२॥ धन्य धीरज प्रभुजी तणी, धन करणी करतुत जिनेश्वर। धन्य कुल जिहां प्रभु जनमीया, धन्य जाया एहवा पुत जिनेश्वर ॥ धन्य ॥ १३ ॥ मायडी जायो एहवो, दूजो नहीं संसार जिनेश्वर। क्षमा शूरा अरिहंतजी उपमा सूत्र मझार जिनेश्वर ॥ धन्य० ॥ १४ ॥ करम भरम चक चूरीया, दूजी ढाल मझार जिनेश्वर। तिलोक ऋषि कहे धन्य प्रभु, प्रणमुं वारंवार जिनेश्वर ॥ ध० ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

शुक्ल दशमी वैशाखनी दिन उगत परिमाण।
वीर जिनेश्वर पामीया निर्मल केवल नाण ॥१॥

—:❀:—

॥ ढाल तीजी ॥

कर्म समो नहीं कोई ॥ एदेशी ॥

जाणी लोकालोक की रचना, षट् द्रव्य-गुण पर जायो। चोतीस अतिसय पेंतीस वाणी, जग तारक जिनरायो रे भविका श्रीजिन पर उपगारी, तार्या बहु नरनारी रे॥ भ० ॥ १ ॥ चोसठ इन्द्र आया तिण अवसर त्रिगड़ो रच्यो तिण वारे। फिटक सिंहासन उपर विराजे, अमृत वेण उचारे रे। भविका श्री० ॥ २ ॥ मध्य पावापुरी में तिण वेला, यज्ञ रचाणो छे भारी। बहु पंडितो नो थयो समागम, जावे सूर गगन बिहारी रे। भविका श्री० ॥ ३॥ महिमा देखी मान विशेषे, पंच-सया परिवार रे। इन्द्रभूति आया प्रभु पे, संशय गर्व नीवारी रे। भविका श्री० ॥४॥ संयम ले गणधर पद लीनो, अग्नि भूति

चल आवे। ते पिण संशय दूर भयाजी, संजमसुं चित्त लावे रे। भविका० ॥ ५ ॥ इम इग्यारा गणधर रचना, चमालीससे संख्या जाणो। एकज दिन में लीनी दीक्षा, गुणरत्नागर खाणो रे ॥ भविका श्री० ॥ ६ ॥ तीन से चउदापूर्व धारक, तेरासे ऋषि ओहिनाणी। पांच से मनःपर्यव मुनि जाणो, बोले यथारथ वाणी रे ॥ भविका श्री० ॥ ७ ॥ सातसे वैक्रिय लब्धिना धारक, चारसे चर्चावादी। आठसे अनुत्तर विमाने विराज्या, सातसे ऋषि शिव साधी रे ॥ भविका श्री० ॥ ८ ॥ चउदा सहस्र ऋषि संपदा सारी, ज्येष्ठ गौतम गणधारी। चंदन बालादिक सहस छत्तीसी, थई श्रमणी सु विचारी रे ॥ भविका श्री० ॥ ९ ॥ एक लाख गुणसठ सहस श्रावक, आणंदादिक व्रतधारी। अठारा सहस्र तीन लाख श्राविका, सुलसादिक अधिकारी रे॥

भविका श्री० ॥ १० ॥ विचर्या गाम नगर पुर पाटण, तार्या बहु नरनारी। प्रथम चोमासो अस्थिगाममें, दूजो प्रष्ठ चंपा मझारी रे॥ ॥ भविका श्री० ॥ ११ ॥ तीजो चंपा चतुर सावत्थी, विशाला वाणीय कह्यां बारा। चउदा चोमासा राजगृहीमें, मथुरा षट् सारा रे॥ भविका श्री० ॥ १२॥ भद्दिलपुरीमें दाय दीपाया आठ तीस एम जाणो। एक आंबिलका एक सावत्थी, एक अनारज थाणो रे॥ भविका श्री० ॥ १३ ॥ तार्या बहु भवियण नरनारी, विचरतां श्रीजिनराया। अनुक्रमे आया पावा-पुरीमें, हस्तिपाल जिहां राया रे॥ भविका श्री० ॥ १४ ॥ कर जोड़ी प्रभुसे करे अर्जी, रथ शालाने मझारो। अवके चोमासो इहां करो प्रभुजी, विनति ए अवधारो रे ॥ भविका श्री० ॥ १५ ॥ क्षेत्र फरसना जाणी दयानिधि, किनो चरम चोमासो। धर्म दिवाकर धर्म दीपायो,

पूरी भविजन आसो रे ॥ भविका श्री० ॥ १६ ॥
तिलोक ऋषि कहे तीजी ढाले, धन्य धन्य
अंतरजामी, गुण रत्नाकर परम उपगारी, वंदु
नित शिरनामी रे ॥ भविका श्री० ॥ १७ ॥

—:※:—

॥ दोहा ॥

चोथो मास वरसाद नो, पक्ष सातमो ठाण।
तेरस आधी रात सु, अणसण धार्यो जाण ॥१॥
देश अठारनां भूपति, छठ तप पौषध कीध।
सोल प्रहर लग देशना, स्वामी निरंतर दीध ॥२॥
सूत्र विपाकज उच्चर्यो, उत्तराध्ययन छत्तीस।
भवि जीवां हित कारणे, पूरी एह जगीस ॥३॥
गौतम मोहने टालवा, जो इ अवसर सार।
पर उपगारी परम गुरु, शिव सुखना दातार ॥४॥
कार्तिक वदि अमावस्यां, कहे गौतमसु स्वामी।
देवशर्मा विप्र बोधवा, जाओ तिणने ठाम ॥५॥

तहत्ति करी तिहां संचर्या, पिछे दीन दयाल ।
जाय विराज्या मोक्षमें, भव फेरा दिया टाल ॥६॥

—:o:—

॥ ढाल चौथी ॥

क्षमावंत जोय भगवंतनो रे ज्ञान ॥ ए देशी ॥

श्रीजिन शिवपुर संचर्याजी, थयो जगमें अंधकार । गौतम स्वामी जाणीयो जी, आरत आइ अपार जिनेश्वर ॥ हिवे मुज कवण आधार ॥ ए टेक ॥ धसीकी पड्यां धरणी तदा जी, शुद्धि न रही लिगार । धिक धिक मोहिनी कर्मने जी, देखो कर्म विकार, जिनेश्वर ॥ हिवे मुज कवण आधार ॥ २ ॥ एक मुहूर्त्तने आंतरे जी, आइ चेतना ताम । मोह वसे करे झुरणा जी, छोड़ी गया केम स्वाम जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ३ ॥ अंतेवासी हुं आपको जी, रहे तो

जिम तन छाय। छेले समे कियो आंतरो, ए तुम जुगतुं नाय जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ४ ॥ हुं पलो नहीं झालतो जी, जाता मोक्ष मझार। जाण्या पण नहीं रोकतो जी, किम आयो तुम लार जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ५ ॥ बाल ज्युं अड्डो न माड़तो जी, भाग न मांगतो ज्ञान। अणख न करतो आपसुं जी, लाग्यो तुमसुं ध्यान जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ६ ॥ कारमो राग होतो नहीं जी, तुमसुं महारो नाथ। तुम सम माहरे दूसरो जी, होती नहीं आथ जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ७ ॥ एक पखी जे प्रीतडी जी, पार पड़े नहीं तेह। आ जाणी परतखमें जी, इणमें नहीं संदेह जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ८॥ गोयम गोयम नाम ले जी, कुण बोलावसी मोय। कुण कने लेस्युं आज्ञा जी, चिंता मुजने सोय जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ९ ॥ जो मुज मन शङ्का हुंती जी, पुछता सहु ततकाल। श्रम

सहु तुमे टालता जी, प्रत्यक्ष दीनदयाल जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ १० ॥ तुम दर्शन अविलोकता जी, रोम रोम उलशंत। हिवे दर्शन किहां आपना जी, भय भंजन भगवंत जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ ११ ॥ तुम वाणी अमृत समीजी साकर दुध सवाय। हिवे किणनी सुणसुं गुरांजी, जगतारक जिनराज जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥ १२ ॥ वली मनमांहि चिंतवेजी, धिक धिक मोहिनी कर्म। धन धन श्री जिनरायने जी, साध्यो आतम धर्म जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥१३॥ तुच्छ कर्म प्रभावथी जी, रुलीयो बहु चउगति माय। एका कि तिहुं काल में जी, ए जिनशासन राय जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥१४॥ वीतराग साचा प्रभु जी, शंका नहीं लिगार। तूं किम भूल्यो भर्म में जी शमदम उपशम धार जिनेश्वर ॥ हिवे० ॥१५॥ ध्यान शुक्ल तिहां ध्याइयो जी, दीनां कर्म

खपाय। केवल ज्ञान प्रगट थयो जी, आरत रही नहीं काय जिनेश्वर॥ हिवे०॥ १६॥ केवल महोच्छव सुरपति कियो जी, निर्वाण पिण तिण ठाम। चार तीर्थ मीली थापीया जी, पाटे सुधर्मा स्वाम जिनेश्वर॥ हिवे० ॥१७॥ शिष्य थया जंबूजीसा जी, राते परणीया नार। कोडी नीनाणुं त्यागने जी, दिन ऊगा व्रत धार जिनेश्वर॥ हिवे०॥ १८॥ तीन पाट थयां केवली जी, श्रीजिन आगम वयण। जे धारे भवि प्राणियां जी, उघड अंतर नयण जिनेश्वर॥ हिवे०॥ १६॥ दिपायो जिन धर्मने जी, पूर्व वर्ष हजार। हिवे तो सूत्र व्यवहार छे जी, हमणा परम आधार जिनेश्वर॥ हिवे प्रभु वचन आधार॥ एटेक ॥२०॥ इण परमाणे चालसी जी, टालसी आतम दोष। तो भवि प्राणी जीवडां जो, अनुक्रमे जासी मोच जिनेश्वर॥ हिवे प्रभु०

॥ २१ ॥ संवत उगणीसे जाणीये जी, तेतीस वर्ष मजार। दीपमाला दिने ए कह्यो जी, तिलोक ऋषि सुविचार जिनेश्वर ॥ हिवे प्रभु० ॥ २२ ॥ अहमदनगर देश दक्षिणे जी, सुखे रह्यां चोमास। भणसे गुणसे भावसु जी, लेहेशे शिव सुख वास जिनेश्वर ॥ हिवे प्रभु० ॥ २३ ॥

॥ कलश ॥

समकित पाया भव घटाया सत्तावीस थूल जाणीया, तेह वरण्व्या श्रावक हेते चार ढाल वखाणीया। शासन नायक सुख दायक प्रणमुं वारंवारए, तिलोक ऋषि कहे नाथ अरजो करजो भव नीस्तारए, प्रभु दीजो जय जयकारए ॥ १ ॥

॥ इति ढाल चौथा समाप्तम् ॥

अथ चतुर्विंशति जिन पच्चीसी
❋ प्रारंभ ❋
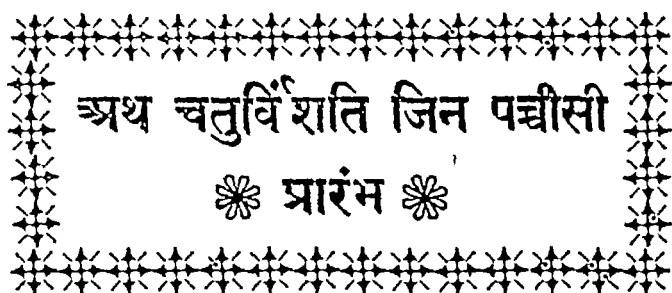
॥ दोहा ॥

सुरतरु जिन समरुं सदा, चार वीस जिनचंद ।
गिरवारां गुण गायवा, उपनो मन आणंद ॥१॥
प्रणमुं चउवीसे प्रेमसुं, सखरो अर्थ सुजाण ।
आपण पर उपगारने करवा कोड कल्याण ॥२॥

—:❋:—

॥ सवैया ३१ सा ॥

नाभिमरुदेव्या नंद, छोड़ दिया सहु फंद, जोग लियो जिणचंद, ममता मिटाई है। करी ने कर्म हांण, लियो है अनंत नाण, भविक कमल

भाण, कुमति उडाई है ॥ तिरण तारण स्वाम, पाम्यां शिवपुर धाम, तिहुं लोक ठाम ठाम, कीरत सवाई है । भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान, आदि अरिहंत ध्यान, महासुख दाई है ॥ १ ॥

छोड़ीने सर्व आथ, जोग लियो जगनाथ, शिवने चलायो साथ, अमीरस वाण है । सुण सुण राय राण, साचो मत लियो जाण, निस दिन जिन आण, करी परमाण है ॥ बालियो कर्म वंश, राख्यो नहीं एक अंश, उत्तम परम-हंस, पाम्या निरवाण है । भणे मुनि चद्रभान, सुणो हो विवेकवान, अजितजिणंद ध्यान, महा सुख खांण है ॥ २ ॥

वमण आहार जिम, अंगनाने गिणी एम, ततक्षण कियो नेम, तज्यां राजकाज है । घातियां करम धाय, केवली ते ज्ञान पाय । उपकोरी जिनराय, बांधी धर्म ज्याज है । जीव

घणां किया दृढ़, क्षपक की श्रेणी चढ, पामियां मुगति गढ, अविचल राज है ॥ भणे मुनी चंद्रभान, सुणो हो विवेकवान, संभव जिनेंद्र ध्यान, अखंड जहाज है ॥ ३ ॥

देखीने अधिक रूप, परशंसे सुर भूप, करी चित्त धर चूप, वार वार वंदणं । जगनी अस्थिर जाण, सुपन संजारो जाण, भवहर भगवान, तोड्या मोह फंदणं ॥ अखंड चारित्र पाल, मोक्ष गया कर्म टाल, शास्वता सदाई काल, लिया सुख कंदणं । भणे मुनि चंद्रभान, सुणो हो विवेकवान, अंगमें उलट आण, वंदो अभिनंदनं ॥ ४ ॥

सुमति सुमति धार, कुमति ने देई टार, सुमति भोजन सार, जीम्यां गुण पात है । सुमति में रह्या झूल, सुमतिरा पेर्यां फूल, सुमति भूषण मूल, दीठां दुःख जात है ॥ सुमति दातार सूर, अन्धकार कियो दूर, सुमति

रा रिणतूर, वाजे दिनरात है। भणे मुनी चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान, सुमति रा किया ध्यान, सुमताइ आते है ॥ ५ ॥

हिंगलु वरण गात, लीलामणि दिन रात, जोग लियो जगतात, तजी राज रिद्ध है। तप जप खप कर, षट मास जिनवर, पाम्यां है केवल वर, हुवा परसिद्ध है॥ सुरनर इन्द्र पास, कियो ज्ञान परकाश, कलेश करम नाश, करी थया सिद्ध है। भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान, पद्म जिनेन्द्र ध्यान, किया नवनिद्ध है ॥ ६ ॥

लोकांतिक सुर आय, प्रतिबोध्या जिनराय, वैठा किम घरमाय, जगत वबूर है। काम भोग तजी कीच, मार लियो मोहनीच, वारे पुरुषदा वीच, गाजे ज्युं शार्दुल है ॥ राव रंक पर मुक, काहुकी न राखे रुख, शिवपुर पाम्यां

सुख, साश्वता अतुल है। भणे मुनि चंद्रभान, सुणो हो विवेकवान, सुपार्श्व जिणंद ध्यान, महा सुख मूल है ॥ ७ ॥

चंदसी वरण देह, लागे दीठां धर्म नेह, उत्तम चारित्र लेह, तज्यां लोभ वैरी है। मार लिया मोह पाप, भारी तेज परताप, तीनु ही भवन आप, निज आण फेरी है। सुरनर करे सेव, रात दिन नितमेव, हुवा निरंजन देव, वाजी जश भेरी है। भणे मुनि चंद्रभान, सुणो हो विवेकवान, चंद्रप्रभु जिन ध्यान. सुगतिकी सेरी है ॥ ८ ॥

सुगरीव रायनंद देही फूल अरिवृन्द, परहरे सहु फंद, थया अणगार है। करणी करीने हद, मार लियो मोह मद, पालिया केवल पद, जगत आधार है ॥ उपकार कियो अति, मेठ दियो मिथ्यामति, पामि अविचल गति, सुखां को न पार है। भणे मुनि चंद्र-

भान, सुणो हो विवेकवान; सुविधि जिणंद ध्यान, महासुख कार है ॥ ६ ॥

दाघ ज्वर रोग तात, गयो मात तणे हात, नाम थ्यो शीतल नाथ, दियो माय बाप है। जगत दुखांसु डर, मनमें वैराग धर, काम भोग पर हर, तज्यां सब पाप है ॥ भलो उपदेश दीध, जगत शीतल कीध, अविचलगढ सिद्ध, मेटिया संताप है। भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान, शीतल जिणंद ध्यान, टाले भव ताप है ॥ १० ॥

ज्ञान घोड़े भगवान, चढ्या बहु बलवान, शील सैना सावधान, समगत शेल है। धीरज कटारी धार, तपस्या की तरवार, गुणांकी गुरजसार, पाप दिया पेल है ॥ जीत हुई जिन राय, सुरनर लाग्यां पाय, मुगत विराज्या जाय, सदा सुख रेल है। भणे मुनि चन्द्रभान सुणो हो विवेकवान श्रेयांस जिणंद ध्यान, आपे सखवेल है ॥ ११ ॥

वासु पूज्य जायापूत, शिवपुर दिया सूत, ओपे घणां अद्भुत, संवरी कशाय है। अठलख दशवास, लीलामणी गृहवास, परिहरे मोहपास तजी लोभ लाय है॥ धरीने शुकल ध्यान, पाम्या पद निरवाण, सुरनर राय राण, वंदे शिर नाय है। भणे मुनि चन्द्रभान सुणो हो विवेकवान, वासुपूज्य जिन ध्यान, महा सुख-दाई है॥ १२॥

विमल विमल वेण अमल कमल नेण, सकल जीवारा सेण, दीठा जागे प्रेम है। समतासु रहा सोभ, लाभे नहीं मूल लोभ, साचर ज्युं आण खोभ, निरमल नेम है॥ सुरनर काज सार, जनम मरण जार, निरमल निराकार, लया सुख पेम है। भणे मुनि चन्द्रभान सुणो हो विवेकवान, विमल विमलवेण चिन्तामणि जेम है॥ १३॥

अयोध्यापुरी ना ईश, आयुः वर्ष लखतीस, जोग लियो जगदीश दया दिल आणी है। काम कुंभ जेम स्वाम, सारिया जगत काम, जीव घणा ठाम ठाम, किया गुण खाणी है॥ सुखदाई सुरतरु, पारस जिम गुण करु, अजर अमरपुर थया निरवाणी है। भणे मुनि चंद्र-भान, सुणो हो विवेकवान, अनंत केवल ज्ञान, शिवकी निशाणी है॥ १४॥

धरम धरम धार, कीधां घणा उपकार, उप-देश दियो सार, मोटा किरपाल है। उघाड्या अंतर नेत्र, किया घणा सावचेत, पर उपकार हेत बांधी धर्मपाल है॥ धर्मको व्यापार कीध, अनुपम चीज लीध, तिहुं लोक परसिद्ध, कीरति विशाल है। भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान, धरम जिणंद ध्यान, काटे भव जाल है॥ १५॥

षट् खंड शिरदार, चोसठ हजार नार, हयगय परिवार, अखूट भंडार है। अनुंतर काम भोग आय मिल्यो पुन्य जोग, खमा खमा करे लोग, कीरति अपार है ॥ ऐसी ऋद्धि तणा ठाट, तजी लियो शिव वाट, आठुं ही करम काट, थया सिद्ध सार है । चंद्र भान चित्त धार, शीख कही हितकार, शांतिनाथ तंतसार, जप्यां जै जै कार है ॥ १६ ॥

चउदे रतन सार, अद्भुत गुणाकार, नर चर आज्ञाकार, बत्तीस हजार है। षोडश हजार सुर, आज्ञाकारी तंतपर, षटखंड नरवर, सारा शिरदार है॥ नाटक बत्तीस विध, ऋद्धि सिद्धि नवनिधं, सऊ छोड़ी हुवा सिद्ध, लाया सुख सार है। भणे मुनि चंद्रभान सुणो हो विवेकवान, कुंथु नाथ तंतसार, तिरत संसार है॥ १७ ॥

चउरासी लख बाज, रथ रुडा गजराज, पाय दल सर्व साज, छिंनवे करोड है । छिनवे करोड गांव, चोसठ हजार वाम, पासवान दुणी ताम, रहे कर जोड़ है ॥ एसी ऋद्धि तज कर, जोग लियो जिनवर, अजर अमरपुर गया कर्म तोड़ है । भणे मुनि चंद्रभाण, सुणो हो विवेकवान, अरिनाम तंतसार, कटे कर्म कोड है ॥१८॥

विरगत रया आप, जगको न लागो पाप, परहर सउताप, बैठा धर्म पोत है । दयावंत खंत दंत, गुणां तणो नहीं अंत, उपगारी अरिहंत, टाली मिथ्या छोड है ॥ घट मांहि ज्ञान घाल, काटिया कर्म साल, धर्ममें रह्यां लाल, लई शिव जोत है । भणे मुनि चन्द्रभाण, सुणो हो विवेकवान, मल्लिजिन किया ध्यान, निरमल होत है ॥ १९ ॥

वीसमा जिणंद्राय, सांवली सुरत काय, चारित्र सुं चित्त लाय, तज्या राज ठाठ है ॥ आरिस्या ज्युं यथातथ जिनमत परमत, उपदिशा जिनपथ, माया तणा मेट है ॥ पातिक पडल हर, घटमें उद्योत कर, जीव घणां जिनवर, घाल्यां शिव वाट है। भणे मुनि चंद्रभान सुणो हो विवेकवान, मुनि सुव्रत ध्यान सेती मिटे कर्म काट है ॥ २० ॥

राजऋद्धि परिहर जोग लियो जिनवर, डोले नहीं तिल भर, मेरु ज्युं अडिग है। मिथ्यामत अति घोर, फेल रह्यो चिहुं ओर, ताही कुं हरण जोर निरमल स्वर्ग है। थोपिया तिरथ च्यार तार्या घणां नरनार, शिवपुर पाम्यां सार, सुखांको न थाग है। भणे मुनि चन्द्रभान सुणो हो विवेकवान, नमिजिन किया ध्यान, नासे कर्म ढंग है ॥ २१ ॥

समुद्र विजय नन्द, बावीसमा जिनचंद, सोहत सुरत इंद, बाल ब्रह्मचारी है। पशु वेंण सुणी कान, ततक्षण बोली जान, वार वार कह्यो कान, ऐसी क्युं विचारी है॥ नारी तणो मारे नेम, मुगतिसुं लाग्यो प्रेम, राजमती रिद्ध-नेम, हुवा जोग धारी है। भणे मुनि चन्द्रभान सुणो हो विवेकवान, नेम प्रभु किया ध्यान, महा सुखकारी है ॥ २२ ॥

नव कर तन मान, सोहत सुरत भान, षट् काया दियो दान, तजी धनराश है। बडभागी वीतराग, गुणां तणो नहीं थाग, जथा तथ जिनमार्ग, कीयो परकाश है। मोक्ष गया कर्म तोड़ जगमें कीरत जोर, सुरनर ठौर ठौर, सुमरत पास है। भणे मुनि चंद्रभान, सुणो हो विवेकवान पार्श्व प्रभु किया ध्यान, शिवपुर वास है ॥ २३ ॥

चोईसमा महावीर, सुरवीर महाधीर, वाणी मीठी दूध खीर, सिद्धारथ नंद है। नागिणीसी नारी जाण, घटमें वैराग्य आण, जोग लियो जग भाण, तज्या मोह फंद है। चवदे हजार संत, तार दिया भगवंत, करमा को करि अंत, पाया सुख फंद है। भणे मुनि चंद्र-भान सुणो हो विवेकवान महावीर किया ध्यान, उपजे आणंद है॥ २४॥

तीर्थंकर वीस च्यार, गुणां तणो नहीं पार, मेरी वुद्धि अनुसार, किया मैं वखाण है। सवैया पचीस गाया, गुण जगदीश राया, भणे गुण निशदिन करत कल्याण है। संवत अठारे वास, पंचावन माघ मास, शुदी पांचमी फली आस, वार भलो भानु है। भणे मुनि चंद्रभान सुणो हो भविकवान, चोविस जिणंद ध्यान, महा सुख खाण है॥ २५॥

॥ इति चतुर्विंशति जिन पच्चीसी समाप्तम्॥

॥ अथ मेघरथ राजानो स्तवन प्रारम्भ ॥

॥ देशी ख्याल री रंगरेज रंगीला कांचूतो रंग दे म्हाने केसरचा ए चालमें ॥

श्री मेघरथ राजा राख्यो परेवो सरणे भासूं ॥ श्री० ॥ टेर ॥ जंबुदीपरा भरत में स कांइं, जिणपद देश रसाल । मृगावति राणी जनमीयो स कांइं धन मेघरथ दयाल हो ॥ श्री० ॥ १ ॥ एक दिवस पोसा माहीं स कांइं, राय गुणै नवकार। दृढ धरमी दृढ आतमा स कांईं, हिरदे ज्ञान अपार हो ॥ श्री० ॥ २ ॥ इंद्र परसंसा करे स कांइं, भरी सभारे मझार। मेघरथ राजो जाणीयो स कांइं, हिरदे दया अपार हो ॥ श्री० ॥ ३ ॥ दोय मिथ्याती

देवता स कांइ, सरध्या नहीं लगार । राजाने छलवा भणि सकांइ, आया छे ततकार हो ॥ श्री० ॥ ४ ॥ एकवर्णीयो परेवड़ो स कांइ, दूजो पारधी जाण । अति धूजे अति कांपतो स कांइ, जाय पड़ीयो गोदमें आण हो० ॥ श्री० ॥ ५॥ लारे हुवो पारधी स कांइ, आयो राजाके पास । म्हारा खज म्हांने देवो स कांइ, राम करे अरदास हो ॥ श्री० ॥ ६ ॥ लेले रे तूं खांड खजूरां, ले ले दाडिम दाख । लेतूं मेवा-सूंखड़ी स कांइ, थारे दाय आवै सो चाख हो ॥ श्री० ॥७॥ नहीं लूं खारक खांड खजूरां, नहीं लूं दाडिम दाख, म्हारा खज म्हांनै देवो स कांइ, एम करे अरदास हो ॥ श्री० ॥ ८ ॥ रे रे पारधी तूं अछे स कांइ, बोलो वचन विचार । सर-णागत आयो किम दीजे, बोले राय तिवार हो ॥ श्री० ॥ ९ ॥ अचित वस्तु देउं तने स कांइ, पोखूं थारी काय । सरणागत किम

दीजीये स कांइं, म्हारो छत्रीकुल कहवाय हो ॥ श्री० ॥१०॥ अचित वस्तु नहीं लेउं स कांइं सुणतूं मोरा राय, तोकतराजू तालके स कांइं, आपो अपनी काय हो ॥ श्री० ॥ ११ ॥ इतनी बात राजा सुणी स कांइं, शस्त्र लिया मंगाय। तोकतराजू तोलवा स कांइं, खंडण लागो काय हो ॥ श्री० ॥ १२ ॥ तोक तराजू तोलतां सकांइं, चढ़ गयो सकल शरीर। ढलति दांडी तोलसूं स कांइं, राजा नहीं दिल गिर हो ॥ श्री० ॥ १३ ॥ इतनि वात सूणी राजानी, महलां पड़ी पुकार। राजाको राणी घणी स कांइं, करे विलाप अपार हो ॥ श्री० ॥ १४ ॥ हाटवाट सूना पड़ा स कांईं, सूना सरवर आज। अति यो मोटो राजवी स कांइं, राय करे अकाज हो श्री० ॥ १५ ॥ राय मुसद्दी आवीया स कांइं, अरज करे कर जोड़। सुन्दर काया केम खंडाये, सब दुनिया के

मोड़ हो ॥ श्री० ॥ १६ ॥ राय कहे सब लोकने स कांइ, मत करो वृथा झोड़। मांसकाट तन नहीं देउं स कांइ, लागै मोटी खोड़ हो ॥ श्री० ॥ १७ ॥ देव अवध उपयोग सूं स कांईं, जाण्या शुद्ध परणाम। देव रूप परगट कीयो स कांइ, अरज करे सिर नाम हो श्री० ॥ १८॥ कांने कुंडल सोभता स कांइं, माथे मुकट विराज। घूघरीया घमकावता स कांइं, आय नम्या सिरताज हो॥ श्री० ॥ १६ ॥ देव गया निज थानके स कांइं, राय दयारी खाण। गोत तिरथंकर बांधीयो स कांइं, अभय दान परधान हो ॥ श्री ॥ २०॥ संजम ले करणी करी स कांईं, गयास्वारथ सिद्ध मझार। तिहांथी चवि श्री सांतिनाथजी, हुवाछे पदवी धार हो ॥ श्री ॥ २१ ॥ लाख वरस नो आउखो सरे, धनुष चालीस काया जाण। तिलोक रिषीजी इम कहे स कांईं,

पाम्या पद निरवाण हो ॥ श्री० ॥ २२ ॥ उन्नीसे उणतीसमें स कांइ, आद फागुण सुध नोम । परतापगढ़ मांही कह्यो स कांई, उपज्यो दया रस सोम हो ॥ श्री० ॥ २३ ॥

॥ इति मेघरथ राजानो स्तवन समाप्तम् ॥

अथ ऋषभदेवजी की लावणी

शीसनमाके करू रे वीनती, चरणकमल में चितलाउं हे जीरेचर० ऋषभ देव महाराज, करो सिद्धकाज, आज मैं जसगाऊं (टेर) अवल हकीगत कहूं रे आपकी सरवार्थसिद्धथी चविया, माता कूखे आया, वहोत सुखपाया उदर मैं वासलिया, चवदे सुपना आयारे मातानैं माताका हुलसा जोहिया, गई पतीकै

पास, अर्थ दैवो भास, सुनो तुम मेरा पिया, (उड़ावणी) हे अब कहता राजा सुपना भला तो है आया, एहां आया, तुम वहोत खुसीसैं रहो हुसी जिनराया, एहां राया, माता मनमैं हरख पांमियो जायके मंगल गवाउं ॥ ऋ० १ ॥ शुभ बेला में जन्म लियो प्रभु, इन्द्रादिक मिलकर आये, मेरू परबतपर जाय, देव सब आय, महोच्छव करवाये, आठजातके कलस मंगाकै, सुगंधजलसैं भरवाये, प्रभुजीका जस-गावै, चमर ढोलावै, प्रभूजीकूं नवाये, (उडो-वणी) हे इंद्राण्यां मिलकै भगती सैं मंगल गावै, एहां गावै, अठाई महोच्छव करकै पीछा जावै, एहां जावै, इन्द्र प्रभूजीसैं करै वीनती स्वर्ग लोकमैं मैं जाऊं, ॥ ऋ० २॥ कंचन वरणी देह प्रभूकी वृषभ लंछन है सुखदाई, धनुष पांचसै है काया मेरे मन भाया यही है अधि-काई, जुगला धर्म निवारै प्रभुजी कला बहो-

त्तर सिखलाई, वरसी दांन प्रभु दिया, जगमैं जसलिया, फेर दीचा पाई, (उडावणी) हे सब देवी देवता दीचा महोच्छवमैं आये, एहां आये, हे प्रभुजीके चरनमैं लुल २ सीस नमाये, एहां नमाये, च्यार सहससें लीनी है दीचा जिनकूं मैं नित उठ ध्याऊं, ॥ ऋ० ३ ॥ लाख चौरासी पूरब आयू बीस लाख रह्या कुँवर पदे, पूर्व लाख दीचा पाली, शास्त्रमें चाली, एवं भगवंत वदे; सहस्र वरस छदमस्तरया प्रभुवाकी रह्या केवली स्वामी, तीरथ थाप्याचार, भवी हितकार, मोच नगरी पांमी, (उडावणी) हे कहे श्रावड महात्मा प्रभुजीका जसगातै, एहां गातै, हे देवो आवागमण निवार यही हम चातै, एहां चातै, सुखसंपत आपो मेरेकूं आपका दरशण मैं पाऊं ॥ ऋ० ४ ॥

॥ इतिपदं ॥

—:❀:—

कहती है राजुलनार ह्मारी सहियां है इसडो हठीलो ह्मारो दिलजानी, नेम गये गिरनार सखीरी एक बात मोरी नहीं मानी, (टेर) विधसैं जांन वणाय मोरी सहियां है जूनेगढ प्रभू आये हैं, छपन कोड़ जादवकी जोड़ मिल जांन सजाकर लाये हैं, इन्द्रादिक सब साथ ह्मारी स० सखियन मंगल गाये हैं, तरेतरेका बाजा बाजता सुनकर सहु हरखाये हैं, (उडावणी) हे अब कहती सखियां सारी रे, हमारो वनड़ो फूल हजारी,हे क्या जानवणी हदभारीरे, जिनकी शोभा लगती प्यारी, हाथी घोड़ा रथ ऊंठ ह्मारी सहियां हे, घूम रह्या चारूं कानी॥ ने० १ ॥ सुणकै पशुकी पुकार ह्मारीस० नेमजिनंद कियो

वोचारी, जांनवास्ते लाये पसुकूं भोजन होसी तइयारी, पशुवांकों दिये छोडाय ह्मारी स० छोडदीवी राजुलनारी, तोरणसें रथ फेर प्रभूजी संजमकी दिलमैं धारी (उडावणी) हे प्रभु जाय चढै गिरनारी रे वहांपर पंच महाव्रतधारी, हे अब सुणलो वचन हमारेरे, प्रभुजी छोड दियो संसारे, करी हसीकी वात ह्मारी स० राजुल होरही दीवानी, ॥ ने० २ ॥ सब सखियां मिल आई ह्मारी स० राजुलदेकूं समझावै, नेम गयो तो जावो वाईजी और वींद तोहे परणावै, जुगमें वींद अनेक ह्मारी स० जोथांरे चितमैं चावै, परसनकर मनोगमवरलो यूं सखियां सब वतलावै, (उडावणी) हे जब राजुल यूं फुरमांईरे, ह्मारे और पुरुष सवभाई, हे मैं किसीकूं परणूं नांईरे, ह्मारे एक वींद जादुराई सुण राजुलकी वात ह्मारी स० सखी लगी सब पिछताने ॥ ने० ३ ॥

सब सखियां लेलार ह्मारी स० चाली राजुलगढ गिरनारे, उठी घटा घनघोर मारगमें मेहवरस्यो मुसलधारे, सब सखियां गई विछड़ ह्मारी स० न्यारी २, हुयगई सारे, चीर सुकावण काज सती जब गई है गुफाके मझारे (उडावणी) हे सती रहनेमी समझायोरे, उनकूं धर्मको राह वतायो, हे जब रहनेमी सरमायोरे, सतीकूं वारंवार खमायो, आवड़ महात्मा गावे ह्मारी स० पिऊसे पहली गई निरवानी, ॥ ने० ४ ॥

॥ इति पद ॥

—:❀:—

॥ प्रभु जाय चढै गिरनारी रे, वानैं छोड़ी है राजुलनारी, सुनी पशु पुकारी दयाचित्तधारी वारी ममताकूं मारी विसारी, (टेर,) जलचरी खेचरी मरतांउवारी वानें मिरगाकी सुनी पुकारी, पशुवांको छोडदीना ॥ प्रभुजा० १॥ सहसारी वनमें संजमलीनो वाने पंचमहाव्रतधारी,

ऋद्धिना त्यागकीना ॥ प्र० २॥ चौतीस अतिशय पैतीसवानी, प्रभु भये हैं केवल ज्ञानी, श्राव-ड़नैं छंद कीना ॥ प्रभु जा० ३ ॥

॥ इति पदं ॥

शिव रमणीको स्तवन
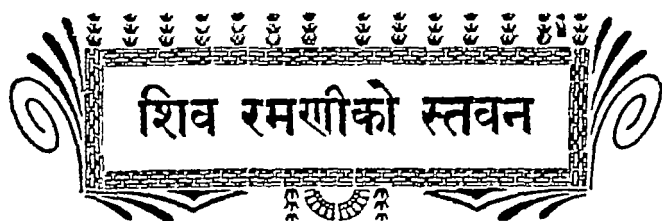
मुक्ति खूब वणी छे जी, देखण हुंस घणी छे जी । ज्यांरा सिद्ध धणी छेजी, आगम वैण सुणीजे जी ॥ मुक्ति खूब वणीछेजी देखण हुंस घणी छे जी ॥ टेर ॥ १ ॥ सम भूमि तल्ल थी ऊंची अलगी, सात राज प्रमाणे । लाख पेंता-लीस जोजन चिहुं दिस, ज्ञान विना नवी जाणे ॥ मुक्ति० ॥ २ ॥ फिटक रतन में हार

मोत्यांरो, संख सम उज्वल दाखी। अरजन सोना मांही मनोहर, वीर जिनेसर भाखी॥ मुक्ति०॥ ३॥ सुर नर इन्द्र असुर सुं अधिका, मुनिवर नो सुख जाणो तिणथी अनंत अचल सुख जिणमें, कर्म हणीने माणो॥ मुक्ति०॥ ४॥ दस दरवाजा हिवडे जडीया, पांच रहे नित्य खूटा। करो किलो कायम एक छिनमें आठ कर्म थी छूटा॥ मुक्ति०॥ ५॥ त्रिषा भूखने दुख सुख पुद्गल, मूल न दीसे कोही। एक नहीं पिण रहे अनंता, नहीं वसती नहीं रोही॥ मुक्ति०॥ ६॥ तिण नागरीमें वसे धनवंता, चिहुं दिस हुंड्यां चाले। माल खरीद लेवे चिहुं दिसनो, मूल न पाछो घाले॥ मुक्ति०॥ ७॥ शुभ अशुभ तो एक न छोड़े जे जग छोटो मोटो। वितो काल अनंतो व्यापारे, नफो न दिसे टोटो॥ मुक्ति०॥ ८॥ काया नहीं वले अटल अवघेणा, आंख्यां नहीं

पिण देख । धर्म पापतो मूल न दीसे, जोग भोग नहीं एक ॥ मुक्ति० ॥ ६ ॥ डोल नहीं पिण रहे जग फिरता । दान नहीं पिण दायक जावे छे पिण नहीं आवे पाछा, नहीं सेवक नहीं नायक ॥ मुक्ति० ॥ १० ॥ यही पुरमें शिवपुरमें गायो, पायो परम आणंदा । रतनचंद कहे तिण नगरी विना, कटे नहीं दुखका फंदा मुक्ति० ॥ ॥ ११ ॥ एकसठ साल रसाल नगरमें, भरे भाद्रव में गायो। काल अनंत रूल्यो चिहु गतमें, अब तो मारग पायो ॥ मुक्ति० ॥ १२ ॥

॥ इति शिवरमणी रो स्तवन समाप्तम् ॥

दोष विना सोचन कोय। निर्मल संजम शुद्ध प्रणामें कांसुं कहे सी लोय॥ म्हारी निंद्या कोई करे रे॥ १॥ आप तणा गुण कर कर मैला ॥ निर्मल करघौ मोय॥ म्हारी निंद्या कोई करे रे ॥ २॥ निंदक सम उपकार करे कुंण॥ अंतर करने जोय॥ म्हारी निंद्या कोई करे रे ॥ ३॥ विन साबु रोजगार लियां बिन ॥ कर्म मेल देवे धोय ॥ म्हारी निंद्या कोई करे रे ॥ ४॥ रतन जतन कर मन शुद्ध राख्यां सोने काट न होय॥ म्हारी निंद्या कोई करे रे॥ ५॥

॥ इति पदं ॥

—:※:—

❀ रात्री भोजन ❀

(कुंडलिया छन्द)

आंधो भोजन रातरो करे अधरमी जीव, ओछा जीतब कारणे दहै नर्कमें नीव। दहे नर्कमें नीव रींव करसी भव भवमें, पचसी कुंभीमांय जले ज्यु ठूंठा दव में। परमा धामी देवता घणी उड़ासी भीख, रतन कहै तज मानवी सुण सतगुरुकी सीख ॥ १॥ चिड़ि कम्मेड़ी कागला रात चुगण नहीं जाय, नर देह धारी मानवी रात पड़्यां किम खाय। रात पड़्यां किम खाय जाय मारया त्रस प्राणी, कीठ पतंग्या कुन्थवा पड़े भाणे में आणी। लट गजाई सुल सुली इल्लि इन्ड समेत, रतन कहे अग तेहने खावे कर

कर हेत ॥ २ ॥ जलंदर उत्पत हुवे जुंके पडीयां पेट, मुखमें जावे मक्षिका वमन करावे नेठ। वमन करावे नेठ धेठ तजो मनकी धठाई, वाल करे सुर भंग कोढ़ मकड़ी थी थाई। कुपोली सड़ सड़ मरे विच्छु तणो संबध, रतन कहे तज मानवी रात्रि भोजन अन्ध ॥ ३ ॥
रात री भोजन दोष अति देखो वेद पुराण, एक वरसका त्याग में छव मासी पच्चक्खाण। छवमासी पच्चक्खाण आण नर मनमें समता, पामे अमर विमान मिले सुख मनमें गमता। रतनचंद धन मानवी सुण सुण दे छिटकाय, अल्प दिनांके मांय ने अमरा पदमें जाय ॥४॥
कराता भोजन रात रो न्यात जात परिवार, कहरी ज्युं मुखमें लियो मूसो तणो आहार। मूसे तणो आहार छार पड़ो शिर ऊपर, सुगन्ध सरस आहार कीड़ां छायो खायो नर चटको देतां चमकीयो, मुख दियो मुकलाय रतन

कहे छव मासीकी बुद्ध भिष्ट होय जाय ॥ ५ ॥
हुवे घघूने वागल्यां पग ऊंचा शिर हेठ, चम-
चेड़ जुं लटकता, रातूं भर भर पेट रातूं
भर भर पेट मेट नर मनकी ममता । मंस
आहारी जीव कह्या नर चरता, रात्रि भोजन
त्याग दै धन तिके नर नार । रतन कहे राते
भखे, ते कह्या पशु गंवार ॥ ६ ॥ अन्न मांस
सम दाखीयो लोही जुं जलधार, सूर्य अस्त
हूआ पछे जो पीवे नर नार । जो पीवे नर नार
धार शिव मतनी वाणी, मारकंड नामे पुराण
ताही में या विधी आणी । मरे मुदायत मानवी
तो घर सूतक होय जाय, रतन कहे सूर्यों
मतिये अस्त हुवा किम खाय ॥ ७ ॥ मुसल-
मान राते भखे, हिन्दु दिवस प्रमाण । टिकीयो
खावण रातने, तो व्रत रोजा जिम जाण । व्रत
रोजा जिम जाण, खाण यहे अखज बरोबर ।
कर कर जीवांना आहार, जाय उपजे जमके

घर । भो भर विष्टा मुख ठवे, वल वलतां अंगार । रतन कहे तिण कारणे, त्याग करो नर नार ॥ ८ ॥

॥ इति रात्री भोजन कुंडलिया समाप्तम् ॥
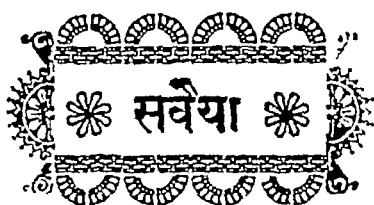
सरल को शठ कहें वक्ता को ढीठ कहें,
विनय करे तासों कहें धन के आधीन है ।
क्षमी को निर्बल कहें दमी को अदत्ती कहें,
मधुर वचन बोले जो तासु कहें दीन हैं ।
धर्मीको दम्भ निस्पृही को गुमानी कहे,
तृष्णा घटावे जाकुं कहे भाग हीन है ।
जहां साधु गुण देखे तिन्होंको लगावे दोष,
ऐसो कुछ दुर्जन को हिरदा ही मलीन है ।

—:❀:—
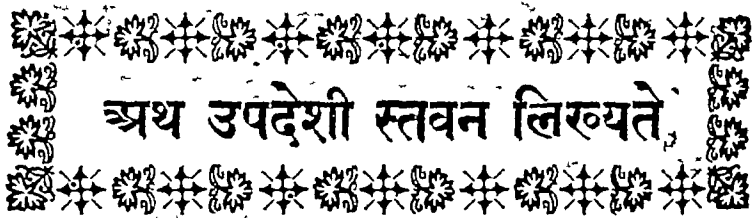
अथ उपदेशी स्तवन लिख्यते,

(राग खंभायची)

मानवको भव पायके मत जाय रे
जीव निराशा ॥ आ टेर ॥

आतम ग्यान अनोपम सागर सतगुरु दीधा दिलासा ॥ म० ॥ १ ॥ तन धन जोवन जगमें पलटे ज्युं पांणी बीच पतासो ॥ म० ॥२॥ हाथी सम घोड़ा चक डोला तजिया महल निवासा ॥ म० ॥ ३ ॥ खीर समुद्रमें पैसने प्यासो रहता होवे हासा ॥ म० ४ ॥ सुखसागर की लहर तजने किम करे जम घर वासा ॥ म० ॥ ५ ॥ रतनचन्द कहे धर्म आराधो ज्युं सफल फले मन आसा ॥ म० ॥ ६ ॥ मानवको भव पायके मत जाय रे जीव निरासा ॥

॥ इति उपदेशी स्तवन समाप्तम् ॥

दयाका स्तवन लिख्यते

दया बिन करणी दुख दानी, दुख दानी भला धूल धानी ॥टेर॥ जल बिन कमल, कमल बिन भंवरो । कूप न सोवे, बिन पाणी ॥ दया० ॥ १ ॥ तिल बिन तैल, चेतन बिन काया, स्याम बिना कैसी पटराणी ॥ दया० ॥ २ ॥ गुण बिन रूप, चँद बिन रजनी । निरधन नर जैसे अ-भीमानी ॥ दया० ॥ ३ ॥ हरखचन्दजी केहवे जन्म अव्यर्था । क्युं नहीं समझे, जिनवांणी ॥ दया बिन करणी दुख दानी ॥ ४ ॥

रागकाफी

स्तवन करमकी गतिको ।

कर्म तणी गति न्यारी रे, कोई पार न पावे ॥ टेर ॥ पुंडरीक तिरियो तीन दिवसमें, कुंडरीक

नर्क सिधावे रे ॥ को० ॥ १ ॥ गुरु वेमुख थयो गोसालो, अंते समकित आवे रे ॥ को० ॥ २ ॥ संजती राय आहेड़े तजतां, जन्म मरण मिटावेरे ॥ को० ॥ ३ ॥ च्यार हत्याकर चोर प्रहारी, देव विमाणे जावेरे ॥ को० ॥ ४ ॥ रतनचंद कर्मन की वारता, अनंता अनंत कहावेरे ॥ को० ॥ ५ ॥

॥ इति पद ॥

श्री जय जिनेंद्राय नमः
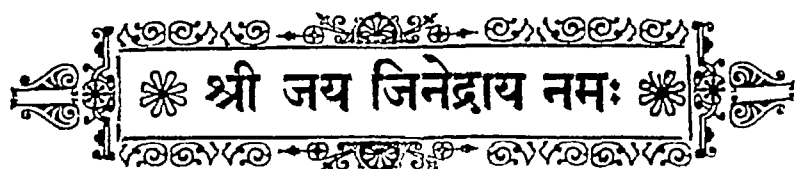
दोहा

श्री गुरुदेव प्रसादसे, संग्रह कीनो सार ।
याको जो निसदिन पढे, उतरे भवजल पार ।१।
श्री जैन धर्मको सार, संग्रह सुश्रावके कियो ।
विक्रमपुर मंझार, ज्ञान तणो आनंद लियो ॥२॥

पानमले अर्पणाकीवी, ये पुस्तक सुखदाय ।
सुद्ध मन से पुस्तक पढो, प्रभु चरणे चितलाय ।३।
जतना पुस्तक राखोये, पढिए चित्त लगाय ।
सुख सम्पत सबही मिले, विघन कोटि मिटजाय ।४।
जैन धर्म प्रसादसे, पूर्ण भयो यह ग्रन्थ ।
ज्ञान दयाको मूल है, धर्म तणो यह पन्थ ॥५॥
अल्प बुद्धि मैं बालहु, विद्वानसे अरदास ।
देख्यां बाच्यां सो लिख्यां, मत कीजो कोई हास ।६।
सूत्र अर्थ जाणु नहीं, जिन आज्ञा अनुसार ।
भूलचूक दृष्टि पड़े, लीजो सज्जन सुधार ॥ ७ ॥
सूत्रने लागे ठबक, ऐसो अर्थ मतमान ।
प्रसिद्ध करता इम वीनवे, तह मेव सत्य जान ।८।
माघ शुक्ल पंचमी तिथी, वार अदीत वखान ।
उन्नीसे गुणियासीये, विक्रम सम्वत जान ॥ ९ ॥

शुभं भवतु:

—:*:—

॥ अन्तिम मङ्गल श्लोक ॥

शिवमस्तु सर्व जगतः
परिहिता निरता भवंतु भुतगणाः
दोष प्रायान्तु नाशं सर्वत्र
सुखी भवतु लोकः ॥

॥ इति श्रावक स्तवन सज्जाय संग्रह ग्रन्थ समाप्तम् ॥

॥ दोहा ॥

पिंगलगण जाणु नहीं, अल्पमती अनुसार;
रची अर्पण करूं जेहने, पंडित लीजो सुधार।

॥ श्रीरस्तु ॥

卐 ॐ 卐

शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीमानोसकुलोद्भवः सुगुणवान्

ग्रन्थालय स्थापको,

न्यायोपार्जित सद्धनेन च सुधी-

र्विद्यालय स्थापकः ।

वास्तव्यो मरुदेश विक्रमपुरे

श्रीजैनधर्मेच्छुकः

सुश्रेष्ठी क्षितिमण्डलें विजयति

श्री भैरुदाना ह्वयः ॥१॥

भवदीयबाल—पानमल सेठिया

पत्र व्यवहार नीचे लिखे हुये पतेसे करें
और पता नागरी व अंगरेजीमें साफ
हरफों में पूरा लिखें ।

पुस्तक मिलनेका पता

❁ अगरचंदजी भैरोदान सेठिया ❁

का

मोहल्ला मरोटीयांका

बीकानेर—राजपूताना ।

Augarchand Bhairodan Sethia.

JAIN LIBRARY.

Mohollа Marotian,

Bikaner, Rajputana

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचन्दजी भैरोदान सेठिया।

का

"श्री जैन विद्यालय"

मोहल्ला मरोटियांरी गवाड़,

वीकानेर-राजपुताना।

SRAWAK STAWAN SANGRAH.

To be had at—

Augarchand Bhairodan

Jain National Seminary.

MOHOLLA MAROTIAN

Bikaner, Rajputana.

पत्र व्यवहार नीचे लिखे पतेसे करें और अपना ठिकाना (पता) नागरी (हिन्दी) अंग्रेजी दोनो अक्षरोंमें साफ साफ पूरा लिखे, ग्रामका नाम पोस्ट ओफिस तथा जिला अंग्रेजीमें साफ हर्फो में लिखे और डाक खर्चके लिये टिकिट पहला भेजे।

इस पुस्तकमें कोई शब्द काना मात्र आदि दृष्टि दोषसे अशुद्ध रह गया हो या सूत्रसे विपरीत आगया हो तो सज्जन सुधारकर वांचे और हमें सूचना करे, जो कि आईंदे शुद्ध छपे।

अगरचन्द भैरोंदान सेठिया
"जैन ग्रन्थालय"
बीकानेर (राजपूताना)

सेठिया जैनग्रन्थालय पुस्तक नं० १५

ॐ

श्रीवीतरागाय नमः

जैन सुबोध स्तवन संग्रह

संग्रहकर्ता—
धर्मचंन्दजी तत्पुत्र भैरोंदानजी तत्पुत्र
जुगराज सेठिया।
बीकानेर निवासी।

JUGRAJ SETHIA,
MOHOLLA MAROTIAN,
BIKANER, *Rajputana*
J B Ry

मूल्य शुभ लाभार्थम्
डाक खरचा -)
प्रति ३०००

卐

वीर संवत् २४४९
विक्रम संवत् १९७९
ई० सन १९२३

अनुक्रमणिका

वीरः सर्वसुरा सुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहित स्वकर्म निचयो वीराय नित्यं नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्त्ति कान्ति निचयःश्रीवीर भद्रं दिश॥
मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमप्रभुः।
मङ्गलं स्थूलिभद्राद्या जैनो धर्म्मोऽस्तु मङ्गलम्।
अरिहंत सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः

अथ जीवकी उत्पत्ति लिख्यते

(हिवे राणी पदमावती ए देशी)

उतपति जोजो जीव आपणी, मन मांहे विमास। गर्भावासे जीवड़ो, वसीयो नव मास ॥ उ० ॥१॥ नारी तणी नाभी तले, जिन वचने जोय फूल तणी जिम नालिका, तिम नाड़ी छै दोय ॥ उ० ॥ २ ॥ तसु तले योनि कही, जीये वर फूल समान । आंब तणी मांजर जिस्यो, तिहां मांस प्रधान ॥ उ० ॥ ३ ॥ रुधिर श्रवे तिण मांस थी, रितु काल सदीव । रुधिर शुक्र योगे करी, तिहां उपजे जीव ॥ उ० ॥ ४ ॥ जे अपावन पवने करी, वासीत दुरगंध । तिण थानक तूं उपनो, हिवे हुवो मद अंध ॥ उ० ॥५॥ नाली वांश तणी परे, भरीये रू घाल । ताती

लोह शीलाक ते, जाले ततकाल ॥ उ० ॥ ६ ॥ तिम महीलानी योनिमें, छै नव लाख जीव । पुरुष प्रसंगते सहु, मरी जाय सदीव ॥ उ० ॥ ७ ॥ उपजे नर नारी मिल्यां, पचेंद्री जेह । तेह तणी संख्या नहीं, तजो कारिज एह ॥ उ० ॥ ८ ॥ नव लक्ष जीव टिके तिहां, उत्कृष्टी वार । जीव जघन्य पणे टिके, एक दोय तीन चार ॥ उ० ॥ ६ ॥ जीव जघन्य तिहां रहे, मुहूरत परिमाण । बारे वरषनी स्थिति तिहां, उत्कृष्टी जांण ॥ उ० ॥ १० ॥ तिण गर्भे कोई जीवड़ो, इम कहे जगदीश । फिर मरी आवे तो रहे वरष चोवीस ॥ उ० ॥ ११ ॥ महिला वर्ष पचावने, थाये निरबीज । पचोत्तर वरसां पछे, थावे पुरुष अबीज ॥ उ० ॥ १२ ॥ जीमणी कुक्षे नर वसे, तिम वामी नार । विच नपुंसक जाणिये, जिन वचने विचार ॥ उ० ॥ १३ ॥ हिवे सामान्य पणे इहां, आयो गर्भा-

वास । सात दिनां उपरी रहे, नरगति नवमास ॥ उ० ॥ १४ ॥ आठ वर्ष तिर्यंच रहे, उत्कृष्टो काल । गर्भा वासे भोगव्यां, इम बहु जंजाल ॥ उ० ॥ १५ ॥ कारमण काया ये करी, लियो पहिलो आहार ॥ शुक्र अने लोही तणो, नहीं झूठ लिगार ॥ उ० ॥ १६ ॥ पर्यापति पूरी नहीं, तिहां विसवा वीस । तिण आहारै तनु थयो, उदारिक अरुमीस ॥ उ० ॥ १७ ॥ पवन आवे उदर थकी, उपजावे अंग । अग्नि करे स्थिर तेहने, जल सरस सुरङ्ग ॥ उ० ॥ १८ ॥ कठिन पणे पृथवी रचे, अवगाहे आकाश । पांचे भूत शरीर में, इम करे प्रकाश ॥ उ० ॥ १९ ॥ वारे मुहूर्त्त ऋतु पछे, विलसे नर नार । गर्भ तणी उत्पति तिहां, नहीं अवर प्रकार ॥ उ० ॥ २० ॥ कलिल हुवे दिन सातमें, अर्बुद दिन सात । अर्बुद थी पेशी वधे, घन मांस कहात ॥ उ० ॥ २१ ॥ मांस तणी चोटी हुवे, अड़तालीश

टंक। प्रथम मास जिनवर कहे, मन मकरो शंक ॥ उ० ॥ २२ ॥ रुधिर (सुथिर) मांस बीजे हुवे, हिवे तीजे मास। कर्म तणे योगे करी, माता मन आश ॥ उ० ॥ २३ ॥ चोथे मासे मातना, परिणामे सहु अंग। हाथ अने पग पांचमें, तिम मस्तक संग ॥ उ० ॥ २४ ॥ पित्त रुधिर छट्ठे पड़े, सातमें इम संच। नव धमणी नस सातसे, पेशी सय पंच ॥ उ० २५ ॥ रोमराय पण सातमें, साढ़ी तीन क्रोड़। उपजे ऊणा केटले, इम आगम जोड़ ॥ उ० ॥ २६ ॥ आठमें मासे नीपनुं, एम सकल शरीर। ऊंध शिर वेदन सहे, जंपे श्री जिनवीर ॥ उ० ॥२७॥ शोणित (लोही) शुक्र संलेषमा, लघुने वड़ि नीत। वात पित्त कफ गर्भ में, थाये इण रीत ॥ उ० ॥ २८॥ मात तणी सूंहटी लग्यो, बालक नो नाल। रस आहार तणो तिहां, आवे ततकाल ॥ उ० ॥ २९ ॥ जननी ले आहार ते, जाए नाड़ो

नोड़ । रोम इन्द्री नख चख वधे, तिम मींजीने हाड ॥ उ० ॥ ३० ॥ सविहुं अंगे उल्लसे, सर्वांग आहार । कवल आहार करे नहीं, गर्भे इस्यो विचार ॥ उ० ॥ ३१ ॥ ते गर्भे किन जीवने, थाय ज्ञान विभंग । अथवा अवधि कहीजिये, तिणे ज्ञान प्रसंग ॥ उ० ॥ ३२ ॥ कटक करी वैक्रिय पणे, जूझी नरके जाय । को जिन वचन सुनी करी, मरी सुर पण थाय ॥ उ० ॥ ३३ ॥ उंधे मुख गोड़ा हिये, सहे तो बहु पोड़ । दृष्टि आगल विहुं हाथ सुं, रहे मुठी भीड़ ॥ उ० ॥ ३४ ॥ नर विण वस्त्र जलादिके, उपजे आधान । अथवा विहुं नारी मिल्या । कह्यो गर्भ विधान ॥ उ० ॥ ३५ ॥ कोई उत्तम चितवें, देखी दुख वास । पुण्य करी तिम निकलुं, न आवुं गर्भा वास ॥ उ० ॥ ३६ ॥ उंठ (साढा तीन) कोड़ी सूई अंगमा, कोई चांपे समकाल । तिण थी गर्भ में अठगुणी, सहे वेदना बाल ॥

उ० ॥ ३७ ॥ माता भूखी भूखीयो, सुखणी सुख थाय । माता सूती ते सुवे, परवश दिन जाय ॥ उ० ॥ ३८ ॥ गर्भ थकी दुख लख गुणु, जनमे जिण वार । जनम थये दुख विसरे, धिग मोह विकार ॥ उ० ॥ ३९ ॥ उपज्यो अशुचि पणे तिहां, मलमूत्र कलेश । पिंड अशुचि करी पूरियो, नहीं शुचि लव लेश ॥ उ० ॥४० ॥ तुरत रुदन करतो थको, जनमे जिण वार । माता पयोधर मुख ठवे, दूध पिये तेवार ॥ उ० ॥ ४१ ॥ दीसे दिन दिन दीप तो, करे रंग अपार । लाड़ कोड़ माता पिता, पूरे सुविचार ॥ उ० ॥ ४२ ॥ छिद्र बारे न्नारी ने, नर ना नव जांण । रात दिवस वेहतां रहे, चेतो चतुर सुजांण ॥ ४३ ॥ सात धातु साते त्वचा, छे सातसे नाड़ । नवसे नाडी पिडमां, तिम तीनसे हाड ॥ उ० ॥ ४४ ॥ संधि एक सो साठ छे, सत्तोतेर सो मम । तिन दोष पेशी पांचसे,

ढांक्यां छे चर्म ॥ उ० ॥४५॥ रुधिर शेर दस देह में, पेसाब सरिष। शेर पांच चरबी तिहां, दोय शेर पुरीष ॥ उ० ॥ ४६ ॥ पित्त टांक चोशठ छे, वीर्य बत्रीस। टांक बत्रीस सलेषमा, जांणे जगदीश ॥ उ० ॥ ४७ ॥ इण परिमाण थकी जदा, ओछो अधिको थाय। व्यापे रोग शरीर में, नवि चले तव काय ॥ उ० ॥ ४८ ॥ पोष्यो पहिले दायके, इम वाध्यो अंग। खान पान भूषण भलां, करे नव नव रंग ॥ उ० ॥ ४९ ॥ हवे बीजे दश के भणे, विद्या विविध प्रकार। तीजे दशके तेह ने, जाग्यो काम विकार ॥ उ० ॥ ५० ॥ जिण थानक तूं उपन्यो, तिण में मन जाय। चौथे दश के धन तणा, करे कोडि उपाय ॥ उ० ॥ ५१ ॥ पहोतो दशके पांचमें, मनमें ससनेह। बेटा बेटी ने पोतरा, परणावे तेह ॥ उ०॥ ५२॥ छट्ठे दशके प्राणियो, चली परवश थाय। जरा आवी योवन गयुं,

तृष्णा तो न जाय ॥ उ० ॥ ५३ ॥ आव्यो दश के सातमें, हवे प्राणी तेह । बल भांग्युं बुढ़ो थयो, नारी न धरे नेह ॥ उ० ॥ ५४ ॥ आठमें दशके डोसलो, खुलीया सहु दांत । कर कंपावे शिर धुणे, करे फोकट बात ॥ उ० ॥ ५५ ॥ नवमें दशके प्राणियो, तन शक्ति न कांय । साले वचन सहु तणा, दिन झूरतां जाय ॥ उ० ॥ ५६ ॥ खाट पड्यो खूखू करे, सूगाली देह । हाल हुकम हाले नहीं, दियो परिजन छेह ॥ उ० ॥ ५७ ॥ आंख गले बे पड मिले, पड़े मुहढे लाल । बेटा बेटीने वहू, न करे संभाल ॥ उ० ॥ ५८ ॥ दशमें दशके आवियो, तव पूरी आय । पुण्य पाप फल भोगवी, प्राणी परभव जाय ॥ उ० ॥ ५९ ॥ दश दृष्टांते दोहिलो, लेही नरभव सार । श्री जिनधर्म समाचरे, ते पामे भवपार ॥ उ० ॥ ६० ॥ तरुण पणे जे तप तपे, पाले निमल शील । ते संसार तरी करी, लहे अवि-

चल लील ॥ उ० ॥ ६१ ॥ कोडी रतन कोडी सटे, कांई गमावे रे गमार । धर्म विना ए जीवने नहीं कोई आधार ॥ उ० ॥ ६२ ॥ काया माया कारमी, कारमो परिवार । तन धन जोबन कारमो, साचो धर्म सार ॥ उ० ॥ ६३ ॥ चवदे राज प्रमाण ए, छे लोक महंत । जनम मरण करी फरसीयो, जीव वार अनंत ॥ उ० ॥ ६४ ॥ आप स्वारथीयो सहु, नहीं केहनो कोय । निज स्वारथ विन पूगतां, सुत पण रिपु होय ॥ उ० ॥ ६५ ॥ जरा न आवे तिहां लगे, जिहां लगे सवल शरीर । धर्म करो जीव तिहां लगे, होई साहस धीर ॥ उ० ॥ ६६ ॥ आरज देश लह्यो हवे, लाधो गुरु संजोग । अंग थकी आलश तजो, करो सुकृत संयोग ॥ उ० ॥ ६७ ॥ श्री नेमिराज तणी परे, चेतो चित्त मांहि । स्वारथ नो सहु कोई सगो, कोई किण रो नांहि ॥ उ० ॥ ६८ ॥ भोग संजोग तजी सहु, थया जे अण-

गार । धन धन तसु मात पिता, धन धन अव-
तार ॥ उ० ॥ ६९ ॥ सुरतरु सुरमणि सारिखो,
सेवो श्री जिनधर्म । जिण थी सुख संपति
वधे, कीजे तेहज कर्म ॥ उ० ॥ ७० ॥ तंदूलि-
व्यालीमें अछे, एहनो अधिकार । तिणथी
उद्धरीने कह्यो, नहीं झूंठ लगार ॥ ब० ॥ ७१ ॥

॥ कलश ॥

इम जैन धर्म विचार सांभली, लहिये
संयम भार ए । वली सिंहनी परे सदा पाले,
नियम निरती चार ए । संसार ना सुख सकल
भोगवी, ते लहे भवपोर ए । श्रीरतनहर्ष सु-
शिष्य रंगे, इम कहे श्री सार ए ॥ उ० ॥ ७२ ॥

॥ इति जीव उत्पत्ति समासम् ॥

—:*—
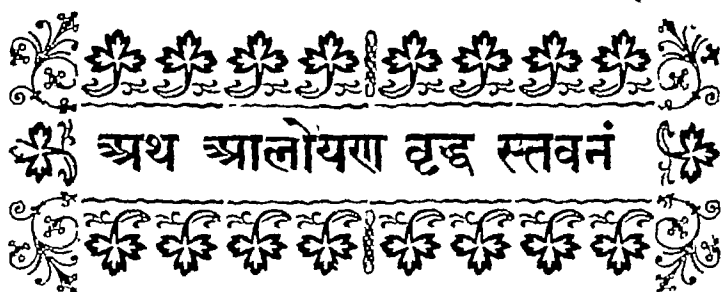
अथ आलोयण वृद्ध स्तवनं

वे कर जोड़ी वीनवुं जी, सुणि स्वामी सुविदीत। कूड़ कपट मूंकी करी जी, बात कहु मुझ वीत ॥ १ ॥ कृपा नाथ मुझ विनती अवधार ॥ आंकणी ॥ तूं समरथ त्रिभुवन धणी जी, मुझ ने तूं भव तार ॥ कृ० ॥ २ ॥ भवसायर भमतां थका जी, दीठा दुख अनंत। भाग्य संयोगे भेटिया जी, भय भजंण भगवंत ॥ कृ० ॥ ३ ॥ जे दुख भांजे आपणा जी, तेहने कहिये दुख। पर दुख भंजण तूं सुण्यो जी, सेवक ने द्यो सुख ॥ कृपा० ॥ ४ ॥ आलोयण लीधां विना जी, जीव रुले संसार। रूपी लक्षमणा महासती जी, एह सुण्यो अधिकार ॥ कृ० ॥ ५ ॥ दूषम-

काले दोहिलो जी, सूधो गुरु संयोग । परामर्थ जाणे नहीं जी, गाडर प्रवाही लोग ॥ कृ० ॥ ६॥ तिण तुझ आगल मुझ तणां जी, पाप आलोउं आज । मांय बाप आगल बोलतां जी, बालक किसी लाज ॥ कृ० ॥ ७ ॥ जिन धर्म सहु कहे भलोजी, थापे अपणी जी बात । सामाचारी जुइ जुइ जी, शंसय पड्यो मिथ्यात ॥ कृ० ॥८॥ जांण अजांणपणे करी जी, बोल्या उत्सूत्र बोल । रतने काग उड़ावता जी, हार्यो जनम निटोल ॥कृ० ॥ ९ ॥ भगवंत भाष्यो ते किहां जी, किहां मुझ करणी एह । गज पाखर खर किम सहे जी, सबल विमासण तेह ॥ कृ० ॥ १० ॥ आप परूंपुं आकरो जी, जांणे लोक महंत । पिण न करूं परमादियो जी, मासाहस दृष्टांत ॥ कृ० ॥ ११ ॥ काल अनंते में लह्या जी, तीन रतन श्रीकार । पिण प्रमादे पाड़ीया जी, किहां जइ करूं पुकार ॥ कृ० ॥ १२ ॥ जांणु

उत्कृष्टी करूं जी, उद्यत करूं विहार । धीरज जीव धरे नहीं जी, पोते बहु संसार ॥ कृ० ॥ १३ ॥ सहज पड़ियो मुझ आकरो जी, न गमे रूड़ी बात । पर निंद्या करता थकां की, जावे दिन ने रात ॥ कृ० ॥ १४ ॥ किरिया करतां दोहिली जी, आलश आणे जीव । धर्म विना धंधे पड्यो जी, नरके करसी रीव ॥ कृ० ॥ १५॥ अणहुंता गुण कोइ कहेजी, तो हरखूं निश दिश । कोइ हित सीख भली दियै जी, तो मन आणुं रीश ॥ कृ० ॥ १६ ॥ वाद भणी विद्या भणीजी, पर रंजन उपदेश । मन संवेग धर्यो नहीं जी, किम संसार तरेस ॥ कृ० ॥ १७ ॥ सूत्र सिद्धान्त वखाणतां जी, सुणतां कर्म विपाक । खिण इक मन मांहे उपजे जी, मुझ मरकट वैराग ॥ कृ० १८ ॥ त्रिविध २ कर उच्चरूं जी, भगवन्त तुम्ह हजुर । वार वार भांजू वली जी, छूटकवारो दूर ॥ कृ० ॥

१६ ॥ आप काज सुख राचतां जी, कीधां आरंभ कोडि। जयणा न करी जीवनी जी, देव दया पर छोड़ी ॥ कृ० ॥ २० ॥ वचन दोष व्यापक कह्यां जी, दाख्या अनर्थदण्ड। कूड़ कपट बहु केलवी जी, व्रत कीधा शत खण्ड ॥ कृ० ॥ २१ ॥ अण दीधो लीजे तृणो जी, तोही अदत्ता दान। ते दूषण लागा घणा जी, गिणतां न आवे ज्ञान ॥ कृ० ॥ २२ ॥ चंचल जीव रहे नहीं जी, राचे रमणी रूप। काम विटंबन क्या कहुं जी, ते तूं जाणे स्वरूप ॥ कृ० ॥ २३ ॥ माया ममतामें पड़्यो जी, कीधो अधिको लोभ। परिग्रह मेल्यो कारमो जी, न चढ़ी संजम शोभ ॥ कृ० ॥ २४ ॥ लागी मुझ ने लालचें जी, रात्री भोजन दोष। मैं मन मूक्यो म्हारो जी, न धर्‌यो धर्म संतोष ॥ कृ० ॥ २५ इण भव परभव दूहव्या जी, जीव चोरासी लाख। ते मुझ मिछामि दुक्कडं जी, भगवंत

तोरी साख ॥ कृ० ॥ २६ ॥ करमादान पन रे कह्यां जी, प्रगट अठारे जी पाप । जे मैं कीधा ते सहु जी, माफ करो माई बाप ॥ कृ० ॥ २७ ॥ मुझ आधार छे एटलो जी, सरदहणा छै शुद्ध । जिन धर्म मीठो जगतमें जी, जिम साकर ने दूध ॥ कृ० ॥ २८ ॥ ऋषभदेव तूं राजियोजी, शत्रुंजय गिरि सिणगार । पाप आलोया सुज तणां जी, कर प्रभु मोरी सार ॥ कृ० ॥ २९ ॥ मर्म एह जिन धर्मना जी, पाप आलोयां जाय । मन सुं मिछामि दुक्कडं जी, देतां दूर पलाय ॥ कृ० ॥ ३० ॥ तूं गति तूं मति तूं धणी जी, तूं साहिब तूं देव । आण धरुं शिर ताहरी जी, भव भव ताहरी सेव ॥ कृ० ॥ ३१ ॥

॥ कलश ॥

इम चढिय शत्रुंजय चरण भेट्या नाभिनंदन जिन तणा, कर जोड़ी आदिजिणन्द आगे

पाप आलोयां आपणा । श्रीपूज्य जिनचंद सूरि सद गुरु प्रथम शिष्य सुजस घणो, गणि सकल-चन्द सुशिस वाचक समय सुन्दरगणि भणे ॥ कृ० ॥ ३२ ॥

॥ इति आलोयणा गर्भित वृद्ध स्तवन समाप्तम् ॥

—:※:—

अजर अमरपद परमेश्वरकुं ध्याईए । सकल पातकहर, विमल केवल धर, जाको वास शिव-पुर, तासो लिव लाईए । नाद विंद रूप रंग पाणीपाद उत्तमंग, आदि अंत मध्य भंग, जाको नहीं पाईए । संघेण संठाण जान, नाहीं कोई अनुमान, ताहिको धरत ध्यान, शिवपुर जाईए ।

भणै मुनि बालचंद सुणहो भविक वृंद॥ अज०॥ १॥ श्री अरिहंतदेव देवकर जाणीए॥ जाको क्रोध नाहि मूर, मानमाया लोभ दूर, कर्म किये चकचूर, जिनमों न आणीए। जाको नमै इन्द्रचन्द, सुरिंद मुनिंद वृंद, नंत गुण है जिणंद त्रिभुवन माणीए। जाकै है अनन्त ज्ञान, देत है मुगति दान, अहनिस ताको ध्यान, मन मांहि आणीए॥ भणै मु०॥ २॥ तरण तारण गुरु, तार भव पारए॥ पांच इन्द्री संवरत, नव-निधि ब्रह्मव्रत, धरत तजत नित, क्रोधादिक चारए। महाव्रत पांच धार, पालै है पंचो आचार, सुमति गुपतिसार, मात जय कारए॥ ऐसे गुणगुरु होइ, षट कर्म पालै जोइ, गोतम उपम सोइ, मुकति दातारए॥ भणै मु०॥ ३॥ जग एक जीव दया, धर्म सुख दाई है,॥ धर्म हीते रिद्धि वृद्धि, धर्म ही सयल सिद्धि, नरदेव नव निद्धि, बहु जीव पाई है। धर्म ही ते देव

लोक, धर्म ही ते सहू थोक, इहलोक परलोकं, धर्म ही सखाई है, तांको नमैं सुरवर, नरवर बहुपर, धर्म ही ते जोइ नर, एक लिव लाइ है ॥ भणै मु० ॥४॥ उठ उठ धर्म कर, सोवै मूढ़ किहां रे ॥ दुत्तर सागरतर, कोइ तट पाइकर, सोवै तहां निन्द भर, फिर आवै उहांरे । संसार सागर मांहि, जाको आदि अन्त नांहि, भरमत जांहि ताहि, पुद्गल जहां रे ॥ कांठो है मानव भव, नोठ नोठ पायो अव, सोवै मत खिण लव, चेत कर इहां रे ॥ भणै मु० ॥ ५ ॥ सुरतरु काट कर, आक बोवै तेहरे ॥ चिंता मणि पाइकर, मूढ़ तांकों परिहर, काच ग्रहै रंग भर, तांसो करै नेह रे । गजपति वेचकर, सोतो मूढ़ लेत खर, पावै नांहि फिर फिर, मुइपरे खेहरे ॥ महा मूढ होत सोइ, काम भोग रत्त होई, हारे है रतन जोइ, मानुषको देह रे ॥ भणै मु० ॥ ६ ॥ उत्तम को संगकर, नीच संग टालके ॥ देखहु

भणै मुनि बालचंद सुणहो भविक वृंद ॥ अज० ॥ १॥ श्री अरिहंतदेव देवकर जाणीए ॥ जाको क्रोध नाहि मूर, मानमाया लोभ दूर, कर्म किये चकचूर, जिनमों न आणीए। जाको नमै इन्द्रचन्द, सुरिंद मुनिंद वृंद, नंत गुण है जिणंद त्रिभुवन माणीए। जाकै है अनन्त ज्ञान, देत है मुगति दान, अहनिस ताको ध्यान, मन मांहि आणीए ॥ भणै मु० ॥ २ ॥ तरण तारण गुरु, तार भव पारए ॥ पांच इन्द्री संवरत, नव-निधि ब्रह्मव्रत, धरत तजत नित, क्रोधादिक चारए। महाव्रत पांच धार, पालै है पंचो आचार, सुमति गुपतिसार, मात जय कारए ॥ ऐसे गुणगुरु होइ, षट कर्म पालै जोइ, गोतम उपम सोइ, मुकति दातारए ॥ भणै मु० ॥ ३ ॥ जग एक जीव दया, धर्म सुख दाई है, ॥ धर्म हीते रिद्धि वृद्धि, धर्म ही सयल सिद्धि, नरदेव नव निद्धि, बहु जीव पाई है। धर्म ही ते देव

लोक, धर्म ही ते सहू थोक, इहलोक परलोकं, धर्म ही सखाई है, तांको नमैं सुरवर, नरवर बहुपर, धर्म ही ते जोइ नर, एक लिव लाइ है॥ भणै मु० ॥४॥ उठ उठ धर्म कर, सोवै मूढ़ किहां रे॥ दुत्तर सागरतर, कोइ तट पाइकर, सोवे तहां निन्द भर, फिर आवै उहांरे। संसार सागर मांहि, जाको आदि अन्त नांहि, भरमत जांहि तांहि, पुद्गल जहां रे॥ कांठो है मानव भव, नीठ नीठ पायो अव, सोवै मत खिण लव, चेत कर इहां रे॥ भणै मु० ॥ ५ ॥ सुरतरु काट कर, आक बोवे तेहरे॥ चिंता मणि पाइकर, मूढ़ तांकों परिहर, काच ग्रहै रंग भर, तांसो करै नेह रे। गजपति वेचकर, सोतो मूढ़ लेत खर, पावै नांहि फिर फिर, मुइपरे खेहरे॥ महा मूढ होत सोइ, काम भोग रत्त होई, हारे है रतन जोइ, मानुपको देह रे॥ भणै मु० ॥ ६ ॥ उत्तम को संगकर, नीच संग टालके॥ देखहु

सागर संग, खारी होत महागंग, नीमवी चंदन संग, चंदन धुबालकै । जातै खीर होत नीर, ताको मिलै जौसुवीर, सोवी विंठ जान खीर. निज गुण गाल कै ॥ पात्र विण तारै बार, टालै रक्त कुं विकार, तुंब भेद भए चार, भिन्न संग चाल कै ॥ भणै मु० ॥ ७ ॥ घड़ी घड़ी मूढ़ तेरो, आयु जल जाए है ॥ कारमो कुटंब एह, काहे कु करत नेह, हारै है मानुष देह, फिर किम पाए है । मात तात घर वार, बेटा वहू परवार, आवे नहीं तोरी लार, जासो मनलाए है ॥ एक हित शीख सुन, धर्म कर एक मन, मानव भवरतन, काहे कुं गमाए है ॥ भणै मु० ॥ ८ ॥ उदमाद कहा भयो, करत न ज्ञान रे ॥ उपज्यो तूं गर्भावास, वस्यो सवानव मास, न कहै उपम जास, दुःख अतिठान रे । ऊंठ कोड सूई होम, चांपे कोई रोम रोम, आठ गुणो प्रति लोम, गर्भ दुःख जानरे ॥ अव तूं

जनम पाय संसारकी लागी वाय, फिर रह्यो क्यों लुभाय, तूं तो है अज्ञान रे॥ भणै मु० ॥ ६॥ जरा दूर जब लग, तब लग जग रे, जरा जब आइ लग. लाल परै मुख मग, दंत गये सभ भग, डगमग पगरे। जरा आए गई बुध, नहीं रही कुछ सुध, रोग लागे बहुविध, जरा परै धिगरे॥ कह्यो कोइ मानै नाहि, दुख धरै मन मांहि जोबनकी दिस जांहि, उठ धर्म लग रे॥ भणै मु० ॥ १०॥ जमको विसास नांहि, मूढ़ तूं सांभल रे॥ काहे भूले देख भाल, चेतो क्यों न प्राणीलाल, ग्रहसी दुर्जन काल, बाल ही गोपाल रे। सुरग पाताल जाइ, उषध भेष-ज खाइ, करै बहु दाइ पाइ, तौहो ग्रहसी कालरे॥ घटत घटत जात, पल घड़ी दिन रात, आउषो गलत भ्रात, करत जंजाल रे॥ भणै मु० ॥११॥ संसार असार एह, सार इक धर्म रे॥ अथिर संसार एह, दीसत प्रभात जेह, सांझ समै

नाहि तेह, काहे पड्यो भर्म रे । मेरो मेरो कहां करै, सोग नहीं कोइ तेरै, जीव एकलो ही फिरे, भुंजै निज कर्म रे ॥ संसार सागर घोर, भ्रमै जीव ठौर ठौर, काहे होत है कठोर, कीधो नाहीं सर्म रें ॥ भणै मु० ॥ १२ ॥ आप सम राखो प्राण, हिंसा दूर टाल कै ॥ हिंसा है अनर्थ खाण, हिंसा तिहां पाप जाण, जीव हिंसा छोड़ प्राण, राग द्वेष गाल कै । हिंसा ही ते रोग सोग, खाण पाण हीण भोग, बहु दुःख सहै लोग, हिंसा ही ते साल कै ॥ स्वयंभूमचक्रव्रत, देखो जमदग्न पुत्त, सातमी नरक-पत्त, हिंसा पंथ चाल कै, ॥ भणै मु० ॥ १३ ॥ अभैदान षटकाय, जीव नित दीजीए ॥ अभैदान वड़ो धर्म, टालै है दुष्कृत कर्म, वो रहै मिथ्यात भर्म, काहे काज कीजीए । देख्यो राख्यो पारापति, मेघरथ नरपति, सींचाणां कुं कहै नृप, मेरो मांस लीजिए ॥ अभैदान दीयो तीन,

चक्रवर्त्ति हुवो जिन, शांतिनाथ दिन दिन, त्रिभुवन पूजीए ॥ भणै मु० ॥ १४ ॥ काहे कुं तूं बोलत है, झूठ निराताल रे ॥ झूंठ भाषा महा दुष्ट, पाप ही को करै पुष्ट, लोक सहु करे खिष्ट, तूं तो हैलवाल रे। झूठा बोलो कहै लोइ, माने न वचन कोइ, तिरजंच होइ सोइ, आगम संभाल रे। देखो वसुराजा भोर, मिसर वचन बोल, सातमी नरक घोर, गयो करि काल रे ॥ भणै मु० ॥ १५ ॥ विमल वचन सत, सहू सुखकार है ॥ विमल वचन भण, सुखदाय सहू मन, जानकि सुनत कन, अमृतकी धार है। सिद्ध जे साधक नर, ताकी विद्या सिद्धकर, संसै विन मुनिवर, सत जगसार है, सत तै पावक जल, महोदधि होत थल, दुठ विष विषधर, विष अपधार, है ॥ भणै मु० ॥ १६ ॥ चोरी कोइ करो मति, चोरी थी विनाश रे ॥ चोरी थाइ राज दण्ड,

नाहि तेह, काहे पड्यो भर्म रे। मेरो मेरो कहां करै, सोग नहीं कोइ तेरै, जीव एकलो ही फिरे, भुंजै निज कर्म रे॥ संसार सागर घोर, भ्रमै जीव ठौर ठौर, काहे होत है कठोर, कीधो नाहीं सर्म रे॥ भणै मु०॥ १२॥ आप सम राखो प्राण, हिंसा दूर टाल कै॥ हिंसा है अनर्थ खाण, हिंसा तिहां पाप जाण, जीव हिंसा छोड़ प्राण, राग द्वेष गाल कै। हिंसा ही ते रोग सोग, खाण पाण हीण भोग, वहु दुःख सहै लोग, हिंसा ही ते साल कै॥ स्वयंभूमचक्रवत, देखो जमदग्न पुत्त, सातमी नरकपत्त, हिंसा पंथ चाल कै, ॥ भणै मु० ॥ १३॥ अभैदान षट्काय, जीव नित दीजीए॥ अभैदान वड़ो धर्म, टालै है दुष्कृत कर्म, वो रहै मिथ्यात भर्म, काहे काज कीजीए। देख्यो राख्यो पारापति, मेघरथ नरपति, सींचाणां कुं कहै नृप, मेरो मांस लीजिए॥ अभैदान दीयो तीन,

चक्रवर्त्ति हुवो जिन, शांतिनाथ दिन दिन, त्रिभुवन पूजोए ॥ भणै मु० ॥ १४ ॥ काहे कुं तूं बोलत है, झूठ निराताल रे ॥ झूंठ भाषा महा दुष्ट, पाप ही को करै पुष्ट, लोक सहु करे खिष्ट, तूं तो हैलवाल रे। झूठा बोलो कहै लोइ, माने न वचन कोइ, तिरजंच होइ सोइ, आगम संभाल रे। देखो वसुराजा भोर, मिसर वचन बोल, सातमी नरक घोर, गयो करि काल रे ॥ भणै मु० ॥ १५ ॥ विमल वचन सत, सहू सुखकार है ॥ विमल वचन भण, सुखदाय सहू मन, जानकि सुनत कन, अमृतकी धार है। सिद्ध जे साधक नर, ताकी विद्या सिद्धकर, संसै विन मुनिवर, सत जगसार है, सत तै पावक जल, महोदधि होत थल, दुठ विष विषधर, विष अपधार, है ॥ भणै मु० ॥ १६ ॥ चोरी कोइ करो मति, चोरी थी विनाश रे ॥ चोरी थाइ राज दण्ड,

मार करै शत खंड, गधै चढ़े शिरमुंड, फरवत तास रे। मार मार करै जन, आरत करत मन, राजजन ततखिन, देत गल पास रे, ॥ देखो तो अभंगसैन, चोर वध पायोजिन कुटुंब सहित तिन, कीयो नरक वास रे ॥ भणै मु० ॥ १७ ॥ पाई ए अमरपद, दत व्रत पालते ॥ देखो तो अंबड़ सीस, संख्या वीस पनतीस, जेठमास एक दीस, पंथ सिर चालते । तृषा लागी परवल, पीयो नाहिं गङ्ग जल, व्रत पाल्यो निरमल, दूषणको टालते ॥ सातसैही कालकर, हुवा महा रिद्धिसुर, साख लाभै इण पर, आगम संभालते ॥ भणै मु० ॥ १८ ॥ मतिकर मतिकर, परनारि संग रे॥ परनारी चोखकर, कटाच्च नयण भर, आपद पावतनर, दीप ज्यौं पतंग रे, च्छिणमात होत सुख, देख भव शत दुख करत विषय मुख॥ सुरतकु भंगरे फिट फिट करे लोइ, अजस कीरति होइ,

रमणी कारज जोई, होत मोटो जंगरे ॥ भणै मु० ॥ १६ ॥ शील व्रत पायो जिन, शिवपुर जाईए॥ शील हीते नमै देव, नरवर सारे सेव, शीलवंत नित्य मेव, देव ही ज्यौं ध्याईए। देखो हो सुदरसन, शील पाल्यो एकमन, शील हीते त्रिभुवन, जस गुण गाइए, शील थी संकट टले, संपद कु आई मिलै, जउ समकित मिलै, तउ कहा पाइए, ॥ भण मु० ॥ २०॥ अतिघणो परिग्रह, दुखही को हेत है ॥ कोई नर नरपति, चलत परत गति, परिग्रह देख मनि, साथ नहीं लेत है। देखो कौन ब्रह्मदत्त, स्वयंभूम चक्रवर्त, सातमी नरक पत, सूत्र साख देत है ॥ माता पिता भाई बन्ध, पाप चढ़ै तोरे कंध, काहे मूढ़ होत अंध, हीये कुछ चेतरे ॥ भणै मु० ॥२१॥ संतोष करत जीव, नंत सुख पाए है ॥ संतोष करत नर, दुख को सागर तर, परम आनंद घर, ततखिण आए है। देखो तो कपोल मुनि,

संतोष करत जिन, पाया है केवल धन, जिन गुण गाए है ॥ जिनवर गणधर, गणवर मुनिवर, परम संतोष कर, शिवपुर जाए है ॥ भणे मु० ॥ २२ ॥ क्रोध है अनर्थ मूल, क्रोध दूर छोडरे ॥ क्रोध ते नरक जाइ, बाघ सिंह साप थाइ, क्रोध ही ते भरमाइ, लाभै कोडाकोडरे । क्रोध ही ते प्रीत जाइ, क्रोध ही ते विष खाइ, क्रोध बहु दुख दाइ, जीव आणे षोडरे ॥ क्रोध की उपनी झाल, जउ तुमे ततकाल, करि रालो आलमाल, पीछा मन मोड़रे. ॥ भणे मु० ॥२३॥ खिमा करो भरपूर, मति करो रीशरे ॥ खिमोही से वैर जाइ, दुशमण लागै पाइ, त्रिभुवन जस थाइ, सही विश्वा वीसरे । देखो गजसुखमाल, स'सार को पायो पार, खिमा करी क्रोध मार, वंदु निस दीसरे॥ रायपरदेशी धन, खिमा करी एकमन, देवलोक पायो तिन, पूरी है जगीसरे ॥ भणे मु० ॥ २४ ॥ काहे कु करत नर, मूठ

अहंकाररे ॥ लक्ष्मी तो नाही थिर, आत जात फिर फिर, जोवन ज्ञी जात खिर, तूंतो है गंवार रे। जहाको करत गर्व सोही विंठ जात सर्व,पावै नाही एह दर्व, सो तो वार वार रे ॥ राव ही ते रंक होइ, रंक ही ते राव जोइ, थिर रहै नाहि कोइ, अथिर संसार रे ॥ भणै मु० ॥ २५ ॥ मत करि मूढ माया, कूड ही कपट रे ॥ माया थी नरक घोर, माया ही ते होत ढोर, माया हीते पावै जोर, दुख होवे घट रे। जो करत पर द्रोह, मंडत कपट मोह, आपकुं सोसण खोह, काहे होत जटरे ॥ हीये कुछ चेत कर, माया मोह पर हर, संसार सागर तर, ते तो पायो तट रे ॥ भणै मु० ॥ २६ ॥ सुख होत लोभ वश, करत करत रे ॥ लोभ ही ते रात दिन, चित मेले धन धन, दुख होत लोभ मन, धरत धरत रे। जोड़े धन रुल रुल, आऊ घटे पल पल, जात तूं अ-जल जल, झरत झरत रे, स्वयंभू प्रमुख भूप,

करै थाजै दोड़ धूप, छोड गए लोभ कूप, भरत भरत रे, ॥ भणौ मु० ॥ २७ ॥ लोभ मूढ कहा करै, देत क्यौं न दाने रे ॥ दाने शिव सुख थाइ, दान थी दालिद्र जाइ, घर नव निध दाइ, माने ए ए रान रे, दान देवो चित लाइ, दाने धन वृद्धि थाइ, जैसे बाडी कूप गाइ, होत वृद्धि मान रे, देखो तौ समुख जिन; प्रति लाभ्यौ महामुनि, कुमर सुबाहु तिन, रूप को निधान रे ॥ भणे-मु० ॥ २८ ॥ वड़ो व्रत व्रत मांहि, शील व्रत जानरे ॥ सागर आगर 'मांहि, स्वयंभु उदधि आंहि, वडो दान दान मांहि, अभय ज्युं दान रे । चंद्र ग्रह गण मांहि ब्रह्मलोक कल्प मांहि बडो ज्ञान ज्ञान मांहि, केवल ज्युं ज्ञानरे ॥ अरि-हंत मुनि मांहि, मनोरमगिरि मांहि, वडो ध्यान ध्यान मांहि, सुकल ज्युं ध्यान रे ॥ भणौ मु० ॥ २९ ॥ भव कोड कृत कर्म, तप ही ते टालीए ॥ तप थी वंछित फल, होत जीव निर्मल, देव रूप

दावानल, कर्म वन बालिए। देखो धन्ना अण-गार, दुःकरत पतकार, छोड के बत्तीस नार, जैन व्रत पालिए॥ सागर तेतीस वर, हुवो अणत्तर सुर, जांकौ गुण रूप जल, आतम पखा-लीए॥ भणौ मु०॥ ३०॥ भाव ही ते होत सिद्ध, भाव ही प्रधान रे॥ बहु विधि व्रत लीध, तप कीध दान दीध, भाव विना नाही सिद्ध, होत फल हाणरे। सुभ भाव भावै जेह, भव-निधि तरै तेह, पायो जे मुकति गेह, भरत राजानरे॥ मोरादेवी माता धन, दुःकरत पसा-विन, शिव पद पायो जिन, ध्याय सुभ ध्यान रे॥ भणौ मु०॥ ३१॥ धर्म है मङ्गल मूल, धर्म हीकुं सेवरे॥ धर्म है कलप वृक्ष, देखो जात परतक्ष, भोगवे ज्युं लोक लक्ष, सुख नित मेव-रे। धर्म के उत्तम फल, जात कुल रूप बल, विकट संकट टल, जात तत खेवरे॥ धर्म ते दुकृत दहै, इन्द्रादिक पद लहै। धर्म शिव सुख

लहै, अरिहंत देवरे ॥ भणै मु० ॥ ३२ ॥
महानन्द सुख कंद, रूपछंद जाणीए ॥ श्रीरूप
जीवगणि कुयर श्रीमलमुनि, रतनसी जस
धणी, त्रिभुवन माणीए । विमल सासन जास,
मुनिसिरी गंगदास, हसत दीखत तास, बतीसी
वखाणीए ॥ बाणवसु रस चंद, दिवाली मंगल
वृंद अहमदाबाद इक, रङ्ग मन आणीए ॥
भणै मुनि बालचंद, सुनहु भविक वृंद, महा-
नन्द सुखकन्द, रूपछन्द, जाणिये ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीबालचन्द कृत उपदेशी बत्तीसी समाप्तम् ॥

॥ सोरठा ॥

॥ क्षमा का ॥

पीड़ें दुष्ट अनेक, मार बांध बहुविध करे ।
धरिये क्षमा विवेक, कोप न कीजे प्रीतमा ॥

॥ निर्लोभीका ॥

धर हिरदे संतोष, करो तपस्या देह सो।
शोच सदा निरदोष, धर्म बड़ो संसारमें॥

॥ सरलताका ॥

कपट न कीजे कोय, चोरनके पुर नामसे॥
सरल स्वभावी होय, ताके घर बहु संपदा॥

॥ मानका ॥

मान महा विष रूप, करे नीच गति जगतमें।
कोमल सदा अनूप, सुख पावे प्राणी सदा॥

॥ लाघव—हलका ॥

परिग्रह चौवीस भेद, त्याग करे मुनिराज जी॥
तृष्णा भाव उछेद, घटती जान घटाईये॥

॥ सत्यका ॥

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज
सांच जवाहर खोल, सत्यवादी जगमें सुखी॥

लहै, अरिहंत देवरे ॥ भणै मु० ॥ ३२ ॥
महानन्द सुख कंद, रूपछंद जाणीए ॥ श्रीरूप
जीवगणि कुयर श्रीमलमुनि, रतनसी जस
घण, त्रिभुवन माणीए । विमल सासन जास,
मुनिसिरो गंगदास, हसत दीखत तास, बतीसी
वखाणीए ॥ बाणवसु रस चंद, दिवाली मंगल
वृंद अहमदाबाद इक, रङ्ग मन आणीए ॥
भणै मुनि बालचंद, सुनहु भविक वृंद, महा-
नन्द सुखकन्द, रूपछन्द, जाणिये ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीबालचन्द कृत उपदेशी बत्तीसी समाप्तम् ॥

॥ सोरठा ॥

॥ क्षमा का ॥

पीड़ें दुष्ट अनेक, मार बांध बहुविध करे ।
धरिये क्षमा विवेक, कोप न कीजे प्रीतमा ॥

कहूं बात अवतन्त, वैशाख लाख तूं जतनकर ।
कहते साधु सन्त, विना भजन आणंद नहीं ॥
नहीं पाया कुछ सार, जेठ गमाया जनम तें ।
धर्म तणे दातार, आत्म गुरु ज्ञानी मिले ॥
जो आये बदरा घोर, ग्रीषम ऋतु आषाढ़ की ।
चित चमकत चहुं ओर, सुमतादामनि दमकती ॥
दिया जनम तें हार, शावण सुन तुं बावरे ।
कहता बारम्बार, अब भी प्राणी चेत ले ॥
चला जमारा खोय, भादों भरम गमाय तूं ।
अब प्राणी मत रोय, सुकल करम कीना नहीं ॥
हे तिरलोकीनाथ, आसोज आश पूरण करो ।
पकड़ो मेरा हाथ, भवसागर में डूबता ॥
लइ शरण तुम आण, कार्तिक कृपा हो गइ ।
अब कीजो परमाण, यह सेवककी विनती ॥
दया धर्मके नाल, मगसर मान रहे तेरा ।
यह सब माया जाल, चमतकार चंचल सही ॥
धनधन तुमारा ज्ञान, पोष परम गुरुदेव जी ।

॥ संयमका ॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करो।
संयम रत्न समार, विषय चोर बहु फिरत है॥

॥ तपस्याका ॥

तप चाहे सुर राय, कर्म शिखरको वज्र है।
द्वादशविध सुखदाय, क्यों न करे शक्ति सम॥

॥ चौथाय—दानका ॥

दान चार परकार, चार संघको दीजिये।
धन विजली उनहार, नर भव लावा लीजिये॥

॥ ब्रह्मचर्य्यका ॥

शील वाड़ नौ राख, ब्रह्म भाव अन्तर लखो।
कर दोनो अभिलाष, कर सफल नर भव सदा॥

॥ बारहमासका सोरठा ॥

समझो चतुर सुजान, चैत चमन दिन च्यारका।
ऐसे निकले प्राण, ज्यु मोती फूटै ओसका॥

पाड़े कलकतो कूण छोडावण जाय ॥ १ ॥ जद वोल्यो जमराज पाप तें कीना भारी, थारी मीठी रहती दृष्टि तकतो पार की नारी । साधु ते निगरन्थ गाम में फिरता देखी, थारे घट में लगती लाय धर्म को होतो धेखी । मूढमति चेत्यो नहीं पाप तणा फल पावसी, अब आयो हमारी फास में किम छूटापो थावसी ॥ २ ॥ जद बोल्यो कर जोड़ बापजी अवके मूको, थे कीधो उपकार बैठो नहीं रह सुं चूको । पांउं मिनखा देह धर्म की करणी करसुं, छोडुं मोह मिथ्यात ध्यान जिनवर को धरसुं । देउं सुपात्र दान साध गुरु सेवुं पुरा, जिण जगने जाणयो फास मोक्ष ने उठीया सुरा । साधु तणी सेवा करूं रहुं तिणारे पास, अब के मूको बापजी रहुं तुमारो दास ॥ ३ ॥

॥ इति नारकी का कुंडलीया समाप्तम् ॥

—:*:—

प्रगट्यो घटमें ज्ञान, तिमत रूप कुमता हरी ॥
प्रभुके भजनमें जान, माघ वसंत अनन्त गुण ।
बधे जगतमें मान, धर्म पंथ साधो भवी ॥
ज्यों पल पल वीती जाय, फागन फगुआ खेल ले ।
फिर पिछे पछताय, रत्न त्याग किरपण बने ॥

अथ नारकी का कुंडलीया लिख्यते

नरक तणा दुख घोर सांभलतां काया धूजे, परभव को डर आण उत्तम केई प्राणी बूजे । क्षेत्र वेदना लार सहेज की लागी लारे, वहां जम की पनरे जात मारदे पांव पसारे । ले संडासो हाथ आण कर लागा भूंवी, दे मुदगल की मार पकड़ कर घाल्यो कुंभी । पाप तणा संचा किया तिण सुं उपज्यो आय, कूका

हुवा घणा, एक न मानी वाय । जनम मरण सूं डरपीयो, चारित्रसु चित लाय ॥ ६ ॥ उच्छव महोच्छव धूम सुं, चारित्र लेवा जाय । वीर जिणंद समोसर्या, धन्नो शीश नमाय ॥ ७ ॥

(देशी कृपाचन्द जीरी लावणी रीचाल)

वैले २ करे पारणो, अरस निरस ए तुछ आहाररे । वीर जिणंद वखाणयो हो, सबमें धन्न धन्नो रिषि अणगारे ॥ टेर ॥ कनक भंडारा छोड्या मुनीसर बत्तीस कामणी छिटकाए, हेजी बत्तीस कामणी छिटकाए । बत्तीस कोड़रा लाया दायजो, तिण पर मुर्च्छा नहीं आये । पंच महाव्रत पच्चख्या मुनिवर, वीर-जिणंद का शिष थाए । हेजी बत्तीस कामणी छिटकाए, अङ्ग इग्यारह उपांग बारे भणीया समकित दृढ़ आये । उड़ावणी हेवां इरजा-सुमति भाषा एषणा जांणो, हवे छवकायारा पीर दया घट आणो । हेवां हाली खेत में करे दाती

॥ दोहा ॥

काकंदी रे बाग में, उनर्या वीर जिणंद ।
नमस्कार पल पल करूं, पामे सुख आणंद ॥१॥
वीर वंदण लोक चालीया, धन्नो आयो पण लार । भगवंत दीधी देसना, भव जीवां हितकार ॥ २ ॥ आठ कर्म री प्रकृति, भिन्न भिन्न भेद वताय । जीव बांधे जीव भोगवे, भगवन्त लेखो समभाय ॥ ३ ॥ त्यागी वैरागी जीवड़ा, व्रत लिया पच्चक्खाण । धन्नो मन में कांपीयो, अथिर संसार ने जाण ॥ ४ ॥ माता पासे आवीयो. आज्ञा दिजै मोय । हुं तो संजम लेव सूं. घर में रहूं नहीं कोय ॥ ५ ॥ जवाव सवाल

हिवां तन थयो पिञ्जररूप के वरणवुं कांहीं,
। हेवां उपयोग तीखे दोष लगावे नाहीं । हेवां
सुकल लेस्या के मांही, कीकी आंख्यां री तारा
चमके । भाख रही नाड़े नाड़े ॥ वी० ॥ ३ ॥
उठतां वैठतां वाजे कडका हाड हाड ए भाख
रहा, ॥ हे० ॥ अणाचार ए बावन टाले, बावीस
परीसह सह रहा । सतरे भेदे संजम पाले,
मुक्ति वाट ए वह राह । हे० ॥ निरवद भाषा
बोले मुनीसर गुण सत्ताईस दीप रहा । उ० ।
हेवे जीवण मरण काया सुं ममता त्यागे, हेवां
सूर वीर मुनिराय हुवातो वैरागे । हेवां अथिर
जाणयो संसारक ममता भागे, हेवां सिद्धशिला
लव लागे । तेज तपस्या शरीर, दमके सुगन्ध
केसर की क्यारे ॥ वी० ॥ ४ ॥ श्रेणिक पूछे
वीर जिणंद ने, आठ कर्म ने सब हरता । हे० ॥
चवदे हजार ए साधु आपके, दुक्कर करणी कुण
करता । वीर जिणंदजी कहे श्रेणिक ने, मुक्त

जूंलाणो, हेवां करे करमां की हाणो । अणुतर वाई वरग तीसरे, धन्नाजी रो इधकार ॥ वीं० ॥ १ ॥ मन वचन काया थिर कीनी, पांचू इन्द्रि गोप धरे । हे० ॥ आठ करमां सु युद्ध मचायो, रात दिवस ए खूब लरे । सेवा भक्ति वीरजिणन्द की वार वार डंडोत करे, आठ करमा ने मार हटाया तपस्या रूपी वाण धरे । उ० । हेवां जनम जरा दुख रोग मरण भय भारे, हेवां छोड दिया घरबार महाव्रत धारे । हेवै दोष रहित ये पाले पांच आचारे, हेवे मुक्ति लेवण विचारे । करणजोग ए भाव जो सचा रित अरत उगर वीहारे ॥ वी० ॥ २ ॥ तीजे दिन ए उठे गोचरी आज्ञा वीर की लेता हैं । हे० ॥ लूखे भूखे सूखे मुनीसर डिग मिग करता वेता हैं, काग कुत्ता वंछे नहीं ऐसो आहार वे लेता है । वेले पारणे अमल तपस्या भाड़ो काय ने देता है, उडा० ॥ हेवां चामसु वींट्यो मांस लोही तो कछू नाहीं ।

रित्र वलीया । हे० । वीजबोधीया कौटबोधीया, मुक्ति मारग ने जावे खडीया । एक भव श्रो बाकी रह गयो, आठ कर्मा ने बांध लिया । हे० । वीर जिणंद वहां हुंडी सिकारी, परषदा में वखांण किया । उ० ॥ हेवां पांच पदांरा गुण जो नित करीजे, हेवां शीघ्र हुवे सब काम, आणन्द वरतीजे । हेवां बांधे तिर्थंकर गोत धर्म में भीजै, हेवां मोटो लाभ उठ लीजै । साता वेदनी भव भव पामे, मुक्ति जावण कीकर त्यारे ॥वी० ॥ ७ ॥ धन पुरुष रसना ने त्यागे, पांच विगे ममता मारे । हे० ॥ काम भोगवे छत्ता छिटकावे, शील संतोष समता धारे । त्यागी वैरागी नहीं स्वादी, वीर वचन हिरदे धारे । हे० । धन पुरुष रसना वस करता, उण पुरुषां की बलिहारे ।उ०। हेवां अनेक पुदगल भख्या, अनंती बारे, हे तुं तिरपत हुवो नहीं जीव के ज्ञान विचारे । हेवां धन पुरुष जो सोगन ले सुध पारे, हेवां भवसा-

उद्यम ऐसे करता । हे० । काकंदी रो धन्नो वासी दुक्कर करणी वे करता, उ० ॥ हेवे जाव जीव लग रसना ने वस कीनी । हेवां अमल लूखो आहार काया सब छोनी, हेवां करे करमा ने चण समता रस पीनी । हेवां मोच्च टिकट कूं लीनी, चवदे हजार साधु विचरे धन धनो तप- स्या धारे ॥ वी० ॥ ५ ॥ दुक्कर करणी करे धन्नो जी, किसे ठिकाणे ये जासी । हे० ॥ वीर कहे सुण श्रेणिक राजन, स्वार्थसिद्ध वासो थासी महाविदेह में फेर उपजसो, रिद्धि संपदा नहु पा सी । हे० । साधु पणो ले करणी करसी, फेर ध- न्नो मुक्ति जासी ॥ उ० ॥ हेवां मगधदेशना भूपति उठकर आवे, हेवां तीन प्रदच्चिणा देके शीस नमावे । हेवां लुल वंदे पाय घणो हरषावे, हेवां रिषिजीरा गुण गावे । इक्कीस बोलां कर वीर वखाण्या, अनेक गुण का भंडारे ॥ ६ ॥ मन वचन कायाए वलीया, ज्ञान दरशण चा-

अथ श्री हरकेसी मुनिनी सज्झाय

निचकुल आय उपना रे, पूर्व कर्म विपाक । सूत्र मांहि गूंथिया रे, वीतराग भरी ज्यारी साख रे ॥ तपसी हरकेशी ॥ १ ॥ अथिर संसार तज नीसर्या रे, दे संजमनी नीव । महीने महीने पारणो जी, मांड दियो जाव जीव रे ॥ त० ॥ २ ॥ इंद्रिय जीति वश आतमा रे, पाले पंच आचार । संजति हुआ सुहावणा रे, राख तीन गुपतिनो लाज रे ॥ त० ॥ ६ ॥ तप कर काया शोषवो रे, सायर जेम गंभीर । बैठी ज्यां-री नासिका रे, कोयला जैसो शरीर रे ॥त० ॥४ ॥ जीर्ण पहेर्यां कपड़ा रे, मुरछा नहीं लिगार । हुं बलिहारी साधुनी रे, तपसी परम पार रे ॥

गर तिरजारे । पल पल गुण करी जै वारां पुण्य वधे बड़ा विस्तारे॥ वी० ॥८॥ पांचूं इन्द्रिय पल पल पोखे, चेतन भूल है तुझ मांही । हे० ॥ जतन जाबता करतां करतां काया थिर रहसी नाहीं, तिबर ममता शरीर उपरां कर्म जाड़ामैं करूं कहीं । हे० । नटको नसरमो निरलज होतो मोह कर्म छूटे नाहीं । उ०॥ हेवां धिग धिग फिट फिट के जीया तोने । हे तूं रुल्यो अनंतो काल सुध नहीं मोने, हे तूं नरक निगोदना दुख सहा तो नहीं जाणे । हे तुं वीर वचन सुण काने । नानु शीश नमोवे वांने एसा भाव कद आवे म्हारे ॥ वीर जिणंद ॥ ६ ॥

॥ इति धन्नाजी री लावणी समाप्तम् ॥

(चतुर नर ज्ञाने विचारी ने चेतजो रे लाल ए देशी)

चतुर नर ज्ञाने विचारी ने धारजो रे लाल। करो मुक्तिनो उपाय रे सुजाण नर, ज्ञाने विचारीने धारजो रे लाल ॥ ए आंकडी ॥ क्रोध मान माया तजो रे लाल, लोभ करो सब दूर रे सुजाण नर ॥ ईण च्यारां ने परिहरो रे लाल, तो सुख पावो भरपूर रे सुजाण नर, ज्ञाने विचारी ने धारजो रे लाल ॥ १ ॥ पक्षपात मोह मद तजो रे लाल, करो सद्दहणा शुद्ध रे सुजाणनर। संवर धारी आश्रव तजो रे लाल, तो हुवे निर्मल बुद्ध रे सुजाण नर ॥ ज्ञाने० ॥

त० ॥ ५ ॥ तंदुकरुंषनो वासीयो रे, हुओ देवता लार । गामाणुगाम विचरंता रे, पहूंता अयोध्या मझार रे ॥ त० ॥ ६ ॥ पुत्री अयोध्या रायनी रे, जक्ष पूजण जाय । मुनिने देखी थुकियो रे, देव मूंढो दियो कुमलाय रे ॥ त० ॥७॥ राजा आय पाय पड्यो रे, कहे देव मोने परणाय । तब कुंवरी परणावतां रे, हथलेवो गयो छोडाय रे ॥ त० ॥ ८ ॥ उठ्या मास खमणाने पारणे रे, ब्राह्मण दीनो दान । पंचवर्ण वूठा तिहां रे । गुण देखी रह्यां असमान रे ॥ त० ॥ ९ ॥ श्रावकना वृत आदर्यां रे, पुरी आई परतीत । हरकेशी मुक्ति गया रे, राखी जिन धर्म सुं प्रीत रे ॥ त० ॥ १० ॥

॥ इयि श्री हरकेशी जी साधु नी सज्झाय समाप्तम् ॥

सुं रे लाल, पर जिनके हितकार रे सुजाण नर
जुगराज इम विनवे रे लाल, शिख सतगुरु नी
धार रे सुजाण नर ॥ ज्ञाने० ॥ ८ ॥ वीकाणो
रलीयमणो रे लाल, वरते सदा आनंद रे सु-
जाण नर । साल उन्नीसे गुनीयासीये रे लाल
गाई आ ढाल रसाल रे सुजाण नर ज्ञाने विचारी
ने धारजो रे लाल ॥ ज्ञाने० ॥ ९ ॥

॥ इति उपदेशी ढाल समाप्तम् ॥

॥ श्री मच्चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः ॥

॥ दोहा ॥

ेवलज्ञानी को सदा, वंदु बेकर जोड ।
ुरु मुखसे धारण करो, अपनी भीदको छोड। १ ।
जेन वचन तहमेव सत्य, समभाव नहीं ताण ।
तनासुं वांचो सही, एह प्रभुकी वाण ॥ २ ॥
ोथी जतने राखजो, तेल अग्नि सुं दूर ।
ूर्ख हाथ मत दीजीये, जोखम खाय जरूर ॥ ३ ॥
णजो गुणजो वांचजो, हितकर दीजो दान ।
ोथी द्यो सुविनीतको, ज्युं पावो सन्मान ॥ ४ ॥

२ ॥ बारे भेदे तपस्या करो रे लाल, करो कर्म चकचूर रे सुजाण नर । पांचुं इंद्रिय वश करो रे लाल, तो हुवो सच्चा शूर रे सुजाणनर ॥ ज्ञाने० ॥ ३ सुगुरुनी संगत करोरे लाल, तजो कुगुरुनो संग रे सुजाण नर । आज्ञा सहित करणी करो रे लाल, तो धर्म सच्चो रङ्ग रे सुजाण नर ॥ ज्ञाने० ॥ ४ ॥ मन वच काया वश करो रे लाल, राखो निर्मल चित्त रे सुजाण नर ॥ शुद्ध भावना भावजो रे लाल, नेम चितार नित रे सुजाण नर ॥ ज्ञाने ॥ ५ ॥ तीन मनोरथ चिंतवो रो लाल, तजो कुव्यसन सात रे सुजाण नर । भाव चारित्र हृदय भावजोरे लाल, साधो मुक्ति रो पंथ रे सुजाण नर ॥ ज्ञाने० ॥ ६ ॥ निन्दा म करो पारकी रे लाल, निज अवगुण को जोय रे सुजाण नर । शुद्ध समकीत हिये धारजो रे लाल, लाग्या दोष आलोय रे सुजाण नर ॥ ज्ञाने० ॥ ७॥ शिखामण जोड़ी जुगत-

अगरचंद भैरोंदान सेठिया
श्रीजैन ग्रन्थालय में छपी हुई पुस्तकें—

७ ज्ञान थोकड़ा तीजा भाग २४ ठाणा आदि का थोकड़ा
८ ज्ञान थोकड़ा चौथा भाग सात नय, चार निक्षेपा का थोकड़ा
१२ श्रावक स्तवन संग्रह भाग २
१३ ,, भाग ३
१४ सामायिक नित्य नियम
१५ सुबोध स्तवन संग्रह
१६ पच्चीस बोलका थोकड़ा विस्तार सहित
१७ सामायिक तथा मंगलिक दोहा
१८ आलोयणा संग्रह
१९ ज्ञान बहोत्तरी तथा व्यवहार समकित का ६७ बोल
२० ज्ञानमाला
२१ विविध ढाल संग्रह
२२ आहारका १०६ दोष तथा बावनाचार
२३ लघु दंडक का थोकड़ा
२४ पांच सुमति तीन गुप्तिका थोकड़ा
२५ दशवैकालिक सूत्र मूलपत्राकार हलकी और बढीया कागजमें छपरही है।
२६ उत्तराध्ययन सूत्र मूल ,, ,,
२७ वीर थुई (सूयगडांग अ० ६) ,,
२८ नमिराय (उत्तराध्ययन अ० ९) ,,

दोहा—

पिङ्गल गण जाणु नहीं, अल्पमति अनुसार ।
रची अर्पण करु ज्येष्ठ ने, पंडित लेजो सुधार ॥ १ ॥
दग्ध अक्षर दूरे करो, शुद्ध अक्षर मुज लीध ।
देवगुरु प्रसादसे, सुबोध स्तवन कीध ॥ २ ॥
जतने पुस्तक राखिये, पढ़िये चित्त लगाय ।
सुख सम्पत्ति सब ही मिले, विघ्न कोइ मिट जाय ॥ ३ ॥
कल्प बुद्धि मैं बाल हूं, विद्वानसे अरदास ।
ग्रन्थे वांच्या सो लिख्या, मत कीजो कोइ हास ॥ ४ ॥
सूत्र अर्थ जाणु नहीं, जिन आज्ञा अनुसार ।
भूल चूक दृष्टि पड़े, लीजो बुद्धिवान् सुधार ॥ ५ ॥
सूत्रसे विपरीत दिसे, ऐसो अर्थ मत मान ।
प्रसिद्ध कर्त्ता इम विनवे, तहमेव सत्य जान ॥ ६ ॥

विनीत—
जुगराज सेठिया
बीकानेर (राजपूताना)

अन्तिम मङ्गल श्लोक

शिवमस्तु सर्व जगतः, परहित निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ॥

॥ इति श्री जैन सुबोध स्तवन संग्रह समाप्तम् ॥

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! ॥ शुभं भवतु ॥

अगरचंद भैरोंदान सेठिया
श्रीजैन ग्रन्थालय में छपी हुई पुस्तकें—

७ ज्ञान थोकड़ा तीजा भाग २४ ठाणा आदि का थोकड़ा
८ ज्ञान थोकड़ा चौथा भाग सात नय, चार निक्षेपा का थोकड़ा
१२ श्रावक स्तवन संग्रह भाग २
१३ „ भाग ३
१४ सामायिक नित्य नियम
१५ सुबोध स्तवन संग्रह
१६ पच्चीस बोलका थोकड़ा विस्तार सहित
१७ सामायिक तथा मंगलिक दोहा
१८ आलोयणा संग्रह
१९ ज्ञान बहोत्तरी तथा व्यवहार समकित का ६७ बोल
२० ज्ञानमाला
२१ विविध ढाल संग्रह
२२ आहारका १०६ दोष तथा वाचनाचार
२३ लघु दंडक का थोकड़ा
२४ पांच सुमति तीन गुप्तिका थोकड़ा
२५ दशवैकालिक सूत्र मूलपत्राकार हलकी और बढीया कागजमें छपरही है।
२६ उत्तराध्ययन सूत्र मूल „ „
२७ वीर थुई (सूयगडांग अ० ६) „
२८ नमिराय (उत्तराध्ययन अ० ९) „

पुस्तक मिलनेका पता—

अगरचन्दजी भैरोंदान सेठिया।

का

जैन ग्रन्थालय, जैन विद्यालय तथा कन्या पाठशाला।

मोहल्ला मरोटियों का

बीकानेर—राजपूताना।

Sree Jain Subodh Stawan Sa

To be had at—

AUGARCHAND BHAIRODAN SETHIA

(1) The Jain Library,

(2) The Jain National Seminary,

(3) The Jain National Girls Institute,

Moholla Marotian,

BIKANER, Rajputana.